उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास-दृष्टि

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

मल्लावज्झला रामय्या

एम० ए०, एम० फिल०

1998

अध्यक्ष :

आचार्य वै. वेंकटरमण राव

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (तेलुगु), पी-हेच० डी०

हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद–५०० ०४६. (आन्ध्र प्रदेश)

निर्देशक :

डॉ. वी. कृष्ण, एम० ए०, पी-हेच० डी०

प्राध्यापक

हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद–५०० ०४६. (आन्ध्र प्रदेश)

M.RAMAIAH
Research Scholar
Department of Hindi
University of Hyderabad
Central University P.O
HYDERABAD - 500 046

CERTIFICATE

This is to certify that I, M. RAMAIAH, have carried out the Research embodied in the present thesis entitled '*UPANYASKAR VRINDAVANLAL VARMA KI ITIHAS DRISHTI*' for the full period prescribed under the Ph.D. Ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any University.

M. Ramaiah
Signature

Station: Hyderabad

Dated : 11-6-98

11/6/98
RESEARCH SUPERVISOR

11/6/98
HEAD
DEPARTMENT OF HINDI

Prof. ... Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

K.K. Rangamani 18/6/98
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES

DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad.
Hyderabad-500 134

पूज्य गुरुवर

स्वर्गीय डॉ० सी०एच० रामुलु जी

की

पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित

वृन्दावनलाल वर्मा जी ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की है पर गुण और परिणाम दोनों ही दृष्टियों से उनके ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यासों से श्रेष्ठ ही नहीं विशिष्ट और अलग पहचान रखते हैं । हिन्दी साहित्य जगत् में वर्मा जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नवीनधारा को सफलतापूर्वक प्रवाहित किया है और हिन्दी साहित्य को अमूल्य कृतियाँ प्रदान कर उसके एक बड़े अभाव की पूर्ति की है । वर्मा जी मुख्यत: मध्य भारत और बुंदेलखंड की वीरांगनाओं एवं वीर पुरूषों को अद्भुत एवं जीवन्त रूप में चित्रित किया है जिनमें उन्हें ऐतिहासिक वातावरण-निर्माण, तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक, राजनीतिक परि - स्थितियों एवं राष्ट्रीय भावनाओं के उपयोग में निश्चय ही सफलता मिली है । उनके उपन्यासों में आए ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण की शैली यथार्थवाद है और उनके प्रगाढ़ अध्ययन का परिचायक है । उनके उपन्यासों में आए सभी प्रमुख पात्रों का चरित्र आदर्शवादी है । वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास-दृष्टि किसी संग्रही पुरातत्व-वेत्ता की या किसी परंपरा भंजर रोमांटिक की नहीं थी । उन्होंने राजा महाराजाओं के जीवन और युद्धों के विवरण मात्र को इतिहास नहीं समझा । उन्होंने अतीत को वर्तमान से पूर्णत: विच्छिन्न और निरपेक्ष

नहीं समझा । उनकी सशक्त धारणा थी कि वर्तमान अतीत का ही फल है । वर्तमान को परखने या सुधारने के लिए अतीत का अध्ययन आवश्यक है । वर्मा जी की इतिहास दृष्टि अतीत की बन्दी नहीं है, न वह वर्तमान में ही सीमित है । वे अतीत को वर्तमान की प्रासंगिकता में देखते हैं । उनके उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के पीछे भी वर्तमान की करुणा की पुकार है ।

वृन्दावनलाल वर्मा का रचनाकाल लगभग चालीस वर्षों का रहा है । उनकी रचनाओं का काल-पट विशद है, वह उत्तर वैदिक-काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक फैला हुआ है । इन रचनाओं में भारत के मध्ययुगीन इतिहास की अभिव्यक्ति हुई है । वृन्दावन-लाल वर्मा भारतीय संस्कृति के प्रेमी, आस्थावान कलाकार हैं । वे दृष्टिकोण में सतर्क और संतुलित हैं । इतिहास उन्हें उत्तेजित नहीं करता, गम्भीरतापूर्वक सोचने-विचारने को विवश करता है । इतिहास को वर्तमान के लिए अपनाने पर भी, वे इतिहास के प्रति न्याय बरतना नहीं भूलते । वे उपन्यास में जीवन सत्य को प्रस्तुत करते समय, उसके बाह्य-शरीर इतिहास को विश्वसनीय, प्रमाणिक बनाते हैं ।

वर्मा जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जिन पात्रों को उभारा है उनमें अधिकांश साधारण कोटि के हैं और अपने चरित्रबल और परिश्रम से ऊँचे उठे है । इस दृष्टि से भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा वर्मा जी के उपन्यासों में हुई ।

" उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास-दृष्टि " इस पूरे शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

प्रथम अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप विश्लेषण करते हुए उसका इतिहास के साथ सम्बन्ध निर्धारित किया गया है । और ऐतिहासिक उपन्यासों का महत्व एवं विशिष्टता निरूपित की गयी हैं । ऐतिहासिक उपन्यास जो इतिहास एवं उपन्यास के योग से बना है । इतिहास उपन्यासकार के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है वह उस सामग्री को इस योग्य बनायें कि वह वर्तमान युवा पीढ़ी को मनोरंजन, प्रकाश, स्फूर्ति व गति दे सके और भविष्य की संचित निधि बनी रहे ।

द्वितीय अध्याय में वर्मा जी के व्यक्तित्व विश्लेषण उनकी बाल्यावस्था एवं युवावस्था की प्रवृत्तियाँ तथा जीवन संबंधी उनके अनुभवों को एक क्रम में गुम्फित कर उनके व्यक्तित्व विकास के अध्ययन

प्रस्तुत किया गया है । वर्मा जी के सृजन चेतना पर, साहित्य सृजन के क्रम में, व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों और चिन्तन धाराओं पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है ।

तृतीय अध्याय में वर्मा जी के उपन्यास का सामाजिक और ऐतिहासिक कोटियों में वर्गीकरण कर प्रत्येक उपन्यास का कथानक देते हुए उनका सविस्तार विश्लेषण किया गया है । स्वतंत्रता के पूर्व रचे गये उपन्यासों एवं स्वतंत्रता के पश्चात् रचे गये उपन्यासों को कथावस्तु के अनुशीलन व परिशीलन आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों के इतिहास स्रोत और प्रेरक तत्व पर विश्लेषण किया गया है । ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि में उपन्यास की पूर्ण समर्थता, पात्रों का चरित्र-चित्रण में सक्षमता तथा उनके माध्यम से समसामयिक राजनीतिक चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

पांचवे अध्याय में वर्मा जी के उपन्यासों की इतिहास-दृष्टि पर विश्लेषण किया गया है । ऐतिहासिक वातावरण को सजीव रूप देने में उनकी समता करने योग्य कोई दूसरा उपन्यासकार नहीं है ।

उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भौगोलिक ज्ञान की पूर्णता तथा ऐतिहासिक सामग्री की सत्यता दोनों देखने को मिलती है । वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास को केवल अतीत के रूप में नहीं देखा है बल्कि उसे वर्तमान की आँखों से देखा है ।

अंत में " उपसंहार " में इन सभी विवेचनों, व्याख्याओं आदि का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वृन्दावनलाल वर्मा जी की विशेषताओं और उपलब्धियों और उनकी इतिहास-दृष्टि को रेखांकित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय " उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास - दृष्टि " स्व• गुरुवर डॉ• सी•एच• रामुलु जी के सफल निर्देशन में चुना गया । शोध के तीन अध्यायों तक मेरे सहस्र उलझनों को सुलझाने का दायित्व उन्हीं के वश की बात थी । उनके निर्देशन में शोध के संबंध में किसी प्रकार की कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा । यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है कि मुझे ऐसे गुरु मिले थे । उनका वात्सल्य प्रेम मुझे सदैव मिलता रहा । लेकिन अकस्मात् कालचक्र ने अपने से छीन लिया । यह मेरी जिन्दगी के लिये बडी दु:खद घटना है ।

अब ऐसी मेरी स्थिति थी कि शोध करूँ या न करूँ । ऐसे वक्त मुझे गुरुवर डॉ॰ वी॰ कृष्ण ने अपने निर्देशन से संभाल लिया । शोध के समाप्ति तक उनका सुचारु निर्देशन और उनके समाधान हमेशा मिलते रहे। उनके बिना मैं यह शोध कार्य संपन्न नहीं कर सकता । उनकी छत्र-छाया में काम करना गर्व की बात महसूस करता हूँ । उनके द्वारा प्राप्त स्नेहपूर्ण निर्देशन के प्रति मैं अत्यंत आभारी एवं ऋणी हूँ ।

विभागाध्यक्ष आचार्य वै॰ वेंकटरमण राव जी की प्रेरणा से मैं यह शोध कार्य पूरा कर चुका हूँ । उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के इंदिरागांधी स्मारक पुस्तकालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सिटी सेन्ट्रल पुस्तकालय (हैदराबाद) स्टेट सेन्ट्रल पुस्तकालय के प्रत्येक सदस्यों के प्रति मैं विशेष आभारी हूँ जिनसे शोध कार्य को सफल बनाने में सहयोग प्राप्त हुआ ।

इस कार्य को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में मेरे परिवार के सदस्यों का बहुत बड़ा योगदान रहा । मेरे माता-पिता, भाई-बहिन, विशेषकर मेरी पत्नी श्रीमती अपर्णा का योगदान मिलता रहा ।

यदि उनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन न होता तो मेरे लिये यह शोध कार्य करना कठिन होता था । उनको आत्मीयता के प्रति प्रेम पूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ । इस शोध कार्य संपन्न होने में पोनूर जिला परिषद हाईस्कूल के प्राचार्य एवं शिक्षक गण के प्रोत्साहन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ । मेरे मित्र श्याम राव, जे· प्रसन्न सिंह, लक्ष्मण और घनश्याम के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने अन्त में आवश्यक मदद की । प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जिन लोगों की सहायता मिली है उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

हैदराबाद　　　　　　　　मल्लावज्झला रामय्या

तिथि : 11-6-98

क्र॰सं॰	विषयानुक्रमणिका	पृ॰सं॰

1· ऐतिहासिक उपन्यास : स्वरूप - विश्लेषण 1

1·1· इतिहास शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ 2

1·2· इतिहास का स्वरूप एवं उसकी व्याख्या 3

1·3· साहित्य और इतिहास का पारस्परिक सम्बन्ध 5

1·4· इतिहास के उपकरण एवं उसकी रचना पद्धति 8

1·5· इतिहास : विज्ञान अथवा कला 11

1·6· ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास 14

1·7· ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा 17

1·8· ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटियाँ 22

1·8·1· प्रेम प्रधान और घटना प्रधान उपन्यास 25

1·8·2· इतिहास प्रधान उपन्यास 26

1·8·3· राजनीतिक और राष्ट्र-प्रेम प्रधान 26

1·8·4· समस्या प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास 26

1·8·5· संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास 26

1·8·6· मनोवैज्ञानिक विचारपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास 27

क्र·सं·	विषयानुक्रमणिका	पृ·स·

1·8·6·1·	शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास	28
1·8·6·2·	मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास	28
1·8·6·3·	काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास	28
1·8·6·4·	स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास	29
1·9·	ऐतिहासिक उपन्यास की विशिष्टतायें	30

2· वृन्दावन लाल वर्मा – व्यक्तित्व विश्लेषण

2·1·	व्यक्तित्व-विश्लेषण की आवश्यकता	34
2·2·	वंश परिचय	37
2·3·	जन्म और शिक्षा	39
2·4·	प्रभाव और प्रेरणा	42
2·5·	जन्म भूमि से प्रेम	45
2·6·	शौक और व्यसन (रूचियाँ व अभिरूचियाँ)	47
2·7·	प्रथा-विरोधी	50

क्र·स·	विषयानुक्रमणिका	पृ·सं·

2·8· धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण 52

2·9· राजनीति और समाज से संबंध 53

2·10· साहित्यिक रूचि 63

3· वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण और कथावस्तु का अनुशीलन

3·1· वर्मा जी के उपन्यासों का वर्गीकरण 75

3·2· स्वतंत्रता के पूर्व उपन्यास 76

3·2·1· गढ़कुण्डार 77

3·2·2· विराटा की पद्मिनी 84

3·2·3· मुसा हिबजू 93

3·2·4· झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई 99

3·2·5· कचनार 108

3·3· स्वतंत्रता के पश्चात उपन्यास 118

3·3·1· माधवजी सिंधिया 118

3·3·2· टूटे काँटे 130

3·3·3· मृगनयनी 142

3·3·4· अहिल्याबाई 152

क्र॰सं॰	विषयानुक्रमणिका	पृ॰स॰

3·3·5· भुवन विक्रम 162

3·3·6· महारानी दुर्गावती 172

3·3·7· रामगढ़ की रानी 183

3·3·8· सोती आग 192

4· वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास स्रोत और प्रेरक तत्व

4·1· ऐतिहासिक वातावरण का सृजन 205

4·2· अतीत के झरोखे से वर्तमान में 206

4·3· इतिहास - राजनीति और जन साधारण 209

4·4· ऐतिहासिक विकास में वर्मा की आस्था 215

4·5· प्रेरणास्रोत - राजदर्शी और रोमांस 217

4·6· वर्मा को रोमांस - स्फूर्ति 219

4·6·1· स्फूर्ति तत्व मानव के अन्तर में 220

4·6·2· मानव का अंतरंग और प्रकृति 222

क्र॰सं॰	विषयानुक्रमणिका	पृ॰सं॰

4·7· प्रकृति और बुन्देलखण्ड 226

4·8· बुन्देल खण्ड और उत्सव प्रियता 227

4·9· प्रणय 229

4·10· युद्ध और प्रेम 230

5· वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास :

इतिहास-दृष्टि

5·1· भाषा और इतिहास के सह संबंध 236

5·2· समय और संस्कृति 238

5·3· इतिहास : एक अविस्मृत सत्य 239

5·4· रोमांस : उपन्यास का प्राण तत्व 246

5·5· इतिहास और पात्र - परिकल्पना 249

5·6· साहित्य और समाज का इतिहास 252

5·7· मानवता का आविष्कार 255

उपसंहार : वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास-दृष्टि उपलब्धियाँ और सीमाएँ 263

पृष्ठ संख्या

परिशिष्ट

(क)	आधार ग्रन्थ	280
(ख)	संदर्भ व सहायक ग्रन्थ	
	(i) हिन्दी	283
	(ii) अंग्रेजी	296
(ग)	पत्र-पत्रिकाएँ	297
(घ)	कोश ग्रन्थ	298

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक उपन्यास : स्वरूप - विश्लेषण

1. ऐतिहासिक उपन्यास : स्वरूप - विश्लेषण

1.1. इतिहास शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ

1.2. इतिहास का स्वरूप एवं उसकी व्याख्या

1.3. साहित्य और इतिहास का पारस्परिक संबंध

1.4. इतिहास के उपकरण एवं उसकी रचना पद्धति

1.5. इतिहास : विज्ञान अथवा कला

1.6. ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास

1.7. ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा

1.8. ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटियाँ

- 1.8.1. प्रेम प्रधान और घटना प्रधान उपन्यास
- 1.8.2. इतिहास प्रधान उपन्यास
- 1.8.3. राजनीतिक और राष्ट्र प्रेम प्रधान
- 1.8.4. समस्या प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास
- 1.8.5. संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास
- 1.8.6. मनोवैज्ञानिक विचारपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास
  - 1.8.6.1. शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास
  - 1.8.6.2. मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास
  - 1.8.6.3. काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास
  - 1.8.6.4. स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास

1.9. ऐतिहासिक उपन्यास की विशिष्टतायें

प्रथम अध्याय
****

ऐतिहासिक उपन्यास: स्वरूप विश्लेषण
****

परिचय:---

ऐतिहासिक उपन्यास किसी भी राष्ट्र, भाषा और साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। केवल इसलिए नहीं कि इनसे हमारी मानसिक रंजन प्रवृत्ति तृप्त होती है, अपितु इसलिए भी कि इनके द्वारा पाठक अतीत के इतिहास की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों की सरस अनुभूति प्राप्त करके परोक्ष सत्य से अवगत होता है। इतना होने पर भी ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की नहीं, अपितु साहित्य की निधि है।

इतिहास को आधार बनाकर साहित्यकार मानव जीवन के सत्य का सरस और रोचक अभिव्यक्ति से उद्घाटन करता हुआ उपन्यास कला के एक विशिष्ट स्वरूप का विकास करता है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास के सृजन से साहित्य कोष की श्रीवृद्धि होती है। सर्वप्रथम इतिहास के स्वरूप पर विहंगम दृष्टि डालना अपेक्षित हो जाता है क्योंकि ऐतिहासिक सत्य का अनुशीलन करता हुआ भी अपने मूल में साहित्य के रस का लक्ष्य रखता है।

|:| इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ :---

"इतिहास" शब्द की व्युत्पत्ति किंचित् कौतूहलोत्पादक है। यह शब्द तीन शब्दों इति, ह, आस के संयोग से बना है ,जिसका अर्थ है यह इस प्रकार हुआ। अत: "इतिहास" शब्द का सामान्य अर्थ हुआ "विगत घटनाओं का वृत्तान्त।" अंग्रेज़ी में "इतिहास" के लिए "हिस्टरी" शब्द का प्रयोग होता है जो ग्रीक शब्द "इस्तोरिया" (ESTORIA) का अंग्रेज़ीकरण है। ग्रीक भाषा में इस्तोरिया का अर्थ है। "गवेषणा" या गवेषणा से प्राप्त जानकारी।

किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में "इतिहास" शब्द का प्रयोग केवल उसके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में नहीं हुआ है। महा भारतकार के आदर्शानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से समन्वित पूर्ववृत्त और कथा ही इतिहास है। कौटिल्य ने तो स्पष्ट कहा है कि पुराण,इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सब इतिहास हैं। विष्णुपुराणकार ने इतिहास की विषय वस्तु की ओर संकेत करते हुए लिखा है ---

"आर्षादि बहुव्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भूत धर्मयुत्।।"

अर्थात् जिसमें आर्ष चरितों, कथाओं आदि की व्याख्या हो, जो देव और ऋषियों के चरित्र पर आधारित तथा भविष्य एवं भूत के धर्म से युक्त हो, वही इतिहास है।

2 इतिहास का स्वरूप एवं उसकी व्याख्या :--

इतिहास क्या है? शाब्दिक दृष्टि से इतिहास का अर्थ "ऐसा ही हुआ या ऐसा ही था।" इस आधार पर अतीत के किसी भी सत्य को इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। अतीत के गहन अंधकार में जो कुछ छिपा है, उस सत्य को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना इतिहासकार के लिए कठिन है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अतीत में जो कुछ देखता है अथवा खोजता है। उसमें उसकी व्यक्तिगत रुचि के फलस्वरूप उस युग की सामूहिक चेतना उसके बौद्धिक विकास एवं उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

इतिहास का अर्थ केवल घटनाओं का विवरण मात्र प्रस्तुत कर देना नहीं है। इतिहास में हमें भूतकालीन घटनाओं के दर्शन ही नहीं होते अपितु उन घटनाओं की परिस्थितियों और परिणामों का अध्ययन करना अपेक्षित हो जाता है। यहाँ इतिहास मनुष्य को अतीत के परिणामों से अवगत कराता है और भविष्य में अतीत की भूलों को सुधारने का संकेत भी देता है।

डॉ॰गोपाल दामोदर तामसकर के मतानुसार ---" इतिहास भविष्य निर्माण करने में विशेष सहायता प्रदान करता है।"(1)

इसलिए इतिहास अतीत को जीवित रखने का एकमात्र साधन है जिसमें मानव - जीवन के ज्ञान का भण्डार निहित रहता है।

डॉ॰राजेन्द्र प्रसाद इतिहास को नीरस घटनाओं की कहानी नहीं बताते वरन् ऐसा   शास्त्र बताते हैं ""----

"जो हमें मानवीय समाज और संस्थाओं के जन्म का पूरा ज्ञान कराता है।"﴾2﴿

इस दृष्टि से इतिहास मानव के विकास की कहानी है जो आदि से अन्त तक रोचक है।

सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ॰ राधाकुमुद मुखर्जी ने कहा है ---
"इतिहास किसी देश अथवा मनुष्यों के भूतकालीन का वर्णन करता है, वर्तमान अथवा भविष्य का नहीं जो हो चुका है, या आगे होना चाहिए।

इतिहास बीती हुई बातों का सच्चा ब्यौरा देता है। लेकिन गये बीते भूतकाल का ब्यौरा होने पर भी इतिहास का महत्व और उसकी शिक्षा वर्तमान काल की समस्याओं या भविष्य की गतिविधि के लिये किसी तरह कम नहीं है।

इस प्रकार इतिहास अतीत की घटनाओं का ब्यौरा होकर भी वह वर्तमान के लिये एक प्रेरक शक्ति है, जो मानव की प्रगति एवं उन्नति के लिये महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं की समस्त विशेषताओं को सूत्रबद्ध करते हुए यह कहा जा सकता है कि इतिहास वह संचित ज्ञान राशि है, जिसमें मानवीय स्वभाव तथा चेतना कर्म तथा स्वप्नों का सब कालों ﴾अतीत, वर्तमान तथा भविष्य﴿ के लिए समावेश होता है। अत: इतिहास किसी देश के ज्ञान का वह, संगम - स्थल है, जिसमें वहाँ की जनता, राजवंश - परम्पराओं का राजनैतिक विकास सामाजिक, आर्थिक संस्थायें, उसके धर्म, दर्शन संस्कृति एवं रुचि का स्वरूप दृष्टि-

गोचर होता है। इतिहास को केवल राष्ट्र एवं काल में बद्ध करना उचित नहीं है, उसका क्षेत्र सम्पूर्ण जगत है। वह विभिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का समन्वय है, जिसका प्रधान अंग राजनीति रहा है। अत: यह सत्य है कि इतिहास बीती हुई राजनीति है तथा राजनीति वर्तमान इतिहास है।

निष्कर्ष:----

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इतिहास न विज्ञान है, न मात्र घटनाओं का संकलन, न महान पुरूषों की कहानीमात्र ही है। अपितु वह निरन्तर मानवीय सत्यों की खोज है जो मनुष्य के अतीतकालीन, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। प्रत्येक इतिहासकार अपने युग की सामूहिक चेतना, बौद्धिक विकास एवं सामाजिक परिस्थितियों के द्वारा प्रभावित होता है। इतिहास - लेखक कल्पना जगत में भी विचरण करता है। अनुमानित सत्य का भी आश्रय लेता है। भारत के प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए इतिहासकारों ने अनुमान का भी सहारा लिया है और यह अनुमानित सत्यवेश - भूषा, मूर्तियों, सिक्को, शिला लेख, चित्रकला आदि के आधार पर विकसित हुआ है।

39 साहित्य और इतिहास का पारस्परिक संबंध:---

साहित्य और इतिहास दोनों सम्पूरक हैं। मानव जीवन के लिये ये गाड़ी के दोनों पहियों के समान हैं। दोनों जीवन के अपरिहार्य अंग है। एक मात्र साहित्य अथवा इतिहास हमें अतीत का सुन्दर चित्र दिखाने में असमर्थ है। दोनों का ही सामंजस्य रसानुभूति में सहायक होता है। इतिहास चिरन्तन सत्य की खोज है उसका पोषक

है, वह अन्धकार के गर्भ में छिपे हुए अतीत के रहस्यों को खोलकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इन रहस्यों एवं सत्यों को साहित्यकार अपनी कल्पना से शिवं एवं सुन्दरम् का रूप प्रदान कर देता है, जिसके कारण साहित्य की सृष्टि होती है।

इतिहास मानव सभ्यता के सुख - दु:ख की कहानी है तो साहित्य भी। सच्चे इतिहास में जहाँ हमें अतीत की घटनाओं की सुसज्जित पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वहाँ हमें मानव - जीवन की सभ्यताओं के भग्नावशेष भी मिलते हैं। साहित्य पाठक का उस अतीत से ऐसा तादात्म्य स्थापित करता है कि पाठक आत्मविस्मृत हो उठता है।

साहित्यकार का सम्बन्ध - इतिहास की सम्पूर्णता से नहीं होता अपितु इतिहास के काल घटना और पात्र विशेष से होता है। इतिहासकार का संबंध इतिहास की सम्पूर्णता से होता है, उस काल विशेष का सम्पूर्ण वर्णन उसे अपेक्षित हैं।

"इतिहासकार अपने उपकरणों के द्वारा जो सृष्टि करता है,वह देशकाल की घटना और संस्कृति के उत्तरोत्तर कृत्रिम परिवर्तनों की यथार्थ सूची अर्थात् इतिहास होता है।"(3)

इतिहासकार रसास्वादन की चिन्ता नहीं करता वह तो घटनाओं का सत्य विवरण देना चाहता है। यदि साहित्यकार की रचना पाठक

को रसानुभूति कराने में सफल नहीं हो सकती तो उसे साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। साहित्यकार इतिहास की घटनाओं चरित्रों को आधार बनाकर ऐसे ऐतिहासिक साहित्य की रचना करता है जो समाज का प्रतिनिधि हो, जो युग - युग तक मानव के हितों की रक्षा करता हो। उसमें पतनोन्मुख मानवजीवन की रक्षा करने की भी सामर्थ्य हो और जो उसे कल्याणकारी मार्ग दिखाता हो यथा "गीता" "रामायण" " महाभारत" देश - काल की सीमाओं से पार होकर प्रत्येक युग में मनुष्य का पथ - निर्माण करते रहेंगे। यद्यपि उनके पात्र व घटना इतिहास से लिये गये हैं।

इस प्रकार इतिहास यदि मानव - समाज की बाह्य परिस्थितियों एवं घटनाओं का लेखा है तो साहित्य का इतिहास उसकी आंतरिक भावनाओं और विचार धाराओं का आख्यान है।

इतिहास हमारे राष्ट्र की जीवनी है और साहित्य उसकी आत्मकथा। एक में हम कार्यों एवं व्यावहारिक सफलताओं की कहानी पढ़ते हैं, दूसरे में हम उसके मानसिक तथा नैतिक उत्थान की कहानी का अध्ययन करते हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि साहित्य और इतिहास का संबंध अटूट है। अन्तर केवल यह है कि इतिहास देशकाल व घटना का नग्नरूप प्रस्तुत करता है तो साहित्य में किसी विशेष अंश को लेकर

कुछ ऐसे रमणीय ढंग से प्रस्तुत करता है कि पाठक रसोन्मत्त हो उठता है। सारांशत: साहित्य भावात्मक सत्य पर अधिक बल देता है, इतिहास कटु सत्य का चित्रण करता है।

1.4 इतिहास के उपकरण एवं उसकी रचना - पद्धति :----

कोई भी इतिहास, चाहे वह इतिहास वृत्तात्मक हो अथवा सांस्कृतिक, अपने प्राप्तव्य साधन-स्रोतों तथा ऐतिहासिक प्रमाणों से परिसीमित है, और उन्हीं के आधार पर इतिहासकार इतिहास लिखने का प्रयत्न करता है। इतिहास की संरचना में अनेक वस्तुओं का योग रहता है, जो कालभेदानुसार बदलते रहते हैं। इतिहास के विकास के साथ उसके साधनों का भी विकास होता रहता है। मानव का प्रारम्भिक इतिहास उसके द्वारा प्रयुक्त हथियारों, गृह-अवशेषों तथा समाधि - स्थानों, गुफा - चित्रों उत्कीर्ण चित्रों तथा मूर्तियों द्वारा ही जाना जा सकता है, क्योंकि उस काल की प्राय: यहीं वस्तुएँ हमें उपलब्ध होती हैं। सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के युग में भौतिक अवशेषों, स्मारकों तथा चित्रों के अतिरिक्त लिखित प्रमाण - सामग्री भी उपलब्ध होती है।

इतिहास जटिलता एवं विविधता में विकसित होता है, अत: मानवीय इतिहास की साक्ष्य - सामग्री भी विविध प्रकार के भौतिक अवशेषों के रूप में - जैसे वास्तु, शिल्प, चित्र, शिलालेख, ताम्रपट्ट,

मुद्रा, अभिलेख आदि भी मिलते हैं। जिनके प्रतीकों, चिह्नों, मुद्रा-लेखों, तोल, मान, बनावट और धातु के द्वारा इतिहास विषयक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार इतिहास की संरचना में साहित्य अभिलेख, मुद्रा, कला, शिल्प, स्मारक, दानपत्र आदि अनेक सामग्रियों का योग रहता है।

इतिहासकार की इतिहास रचना पद्धति के दो प्रधान अंग होते हैं - प्रथम, उपलब्ध सामग्री का अध्ययन, परीक्षण एवं निष्कर्ष निकालना तथा द्वितीय, उस उपलब्ध सामग्री की व्याख्या एवं उसके आधार पर स्थापित घटनाओं का धारावाहिक विवरण प्रस्तुत करना। पहली प्रक्रिया एक सीमा तक यान्त्रिक होती है और विज्ञान की कोटि में आती है, किन्तु दूसरी में संगति एवं सम्भावनाबद्ध कल्पना का स्थान प्रधान होता है। प्रस्तुत सामग्री का अध्ययन एवं परीक्षण करते समय इतिहासकार की दृष्टि एक विशुद्ध वैज्ञानिक की होती है - प्रस्तुत सामग्री विश्वसनीय है या नहीं, जिन साधारण तथ्यों की स्थापना की गयी है, वे न्याय संगत हैं या नहीं, निकले हुए निष्कर्ष सत्य है या नहीं, आदि बातों को वह एक वैज्ञानिक की दृष्टि से जाँचता है, किन्तु इतिहास के इन प्राप्त उपकरणों एवं सामग्रियों से तथ्यों और निष्कर्षों का संग्रह स्वयं में इतिहास नहीं होता ।

इतिहास तब बनता है जब इतिहासकार इन उपकरणों से प्राप्त तथ्यों के बीच की अज्ञात कड़ियों को जोड़ देता है। इसके लिए इतिहासकार के पास मौलिक प्रतिभा एवं संतुलित कल्पना शक्ति का होना आवश्यक है। तथ्यों के बीच की श्रृंखला को सम्बद्ध करने के लिए उसे ऐसी उद्भावना करनी पड़ती है, जो कार्य - कारण - परम्परा से बाधित तथा संगति एवं सम्भावना के अनुकूल हो। थोड़े से ज्ञात तथ्यों से सम्पूर्ण इतिहास की परिकल्पना, संश्लेषण - शक्ति द्वारा सम्भव है। और यह संश्लेषण बिना विश्लेषण के सम्भव नहीं। विश्लेषण - संश्लेषण की यह क्रिया अज्ञात तथ्यों में सम्भाव्य निष्कर्षों का आरोप करती है।"§4§

इतिहासकार की यह "संश्लिष्ट - सम्भावना" साहित्यकार की "यथार्थ कल्पना" के अत्यन्त निकट होती है। अन्तर दोनों में केवल यह होता है कि इतिहासकार की "संश्लिष्ट सम्भावना ज्ञात तथा निकाले गये निष्कर्षों से इतनी आबद्ध होती है कि उसे मौलिक उद्भावना करने का अधिकार ही नहीं होता, जबकि साहित्यकार मौलिक उद्भावना करने में स्वतन्त्र होता है। इतिहासकार की इस "संश्लिष्ट सम्भाव्यता" या "इतिहास मूलक कल्पना" कह सकते हैं। यह "संश्लिष्ट सम्भावना " या"इतिहास कल्पना" इतिहास में भिन्न-भिन्न मान्यताओं को जन्म देती है और इतिहास के स्वरूपों का निर्धारण करती है।

1.5 इतिहास : विज्ञान अथवा कला :---

सन् 1902 में जॉन बैगनेल बरी (1861-1927 ई.) ने कैम्ब्रिज में उद्घाटन - भाषण देते हुए बड़ी दृढ़ता के साथ यह घोषणा की कि "इतिहास एक विज्ञान है, उससे न कुछ कम, न कुछ अधिक।"(5)

इसी भाषण में उन्होंने यह विचार भी व्यक्त किया कि "जब तक इतिहास कला के रूप में मान्य रहा, सत्यता तथा शुद्धता के सिद्धान्त खरे नहीं उतर सके।--- मैं आपको स्मरण दिला सकता हूँ कि इतिहास साहित्य की एक शाखा नहीं है।"

ऑक्सफ़ोर्ड के प्रोफ़ेसर यार्क पावेल ने भी इतिहास के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा व्यक्त की और कहा कि "नवीन इतिहास ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखा गया है जो यह विश्वास करते हैं कि इतिहास शुद्ध साहित्य का अंग नहीं है और न सर्वथा ललित, शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक विवरण है, वरन् विज्ञान की एक शाखा है और अन्य विज्ञानों की भाँति 19 वीं शताब्दी की देन है।

दूसरे वर्ग के साहित्यिक इतिहासकारों का कथन था कि इतिहास विज्ञान हो या न हो, वह कला अवश्य है। विज्ञान अन्वेषण तथा अनुसंधान द्वारा अधिक से अधिक इतिहास का कंकाल ही प्रस्तुत कर सकता है, उसमें प्राण- प्रतिष्ठा करने तथा सजीव बनाने के लिए साहित्यकार की कल्पना आवश्यक है। वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए

मनुष्य बहुत ही जटिल, आध्यात्मिक और चित्र विचित्र है और व्यक्ति के जीवन - इतिहास से हजारों - लाखों व्यक्तियों के जीवन - इतिहास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इतिहास वस्तुत: प्राप्तव्य तथ्यों के आधार पर अधिकांशत: अपूर्ण अनुमान का विषय है और यह उन बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का वर्णन करता है जिन्हें किसी विश्लेषण के अधीनस्थ नहीं किया जा सकता और न उस विश्लेषण को उचित अर्थ में विज्ञान ही कहा जा सकता है।

इतिहास में विज्ञान का तत्व प्रधान रहे या कला का, यह विषय-वस्तु तथा इतिहासकार की रुचि पर निर्भर करता है। प्रारम्भिक मानव-इतिहास अथवा प्राक् इतिहास के विश्लेषण में व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक तत्व का सर्वाधिक योग है। वैयक्तिक कार्य - व्यापारों के विश्लेषण की अपेक्षा जन-समूह के कार्य - व्यापारों के विश्लेषण में इस तत्व का अधिक महत्व है, यद्यपि व्यक्ति के अध्ययन में भी एक सीमा तक विज्ञान का तत्व है अन्यथा मनोविज्ञान क्यों होता? और इसके विपरीत, जन-समूह के अध्ययन में भी मूल्य - तत्व है- नहीं तो देशभक्ति, राजभक्ति और आत्म बलिदान का अस्तित्व कहाँ रहता? ये चीज़ें जटिल हैं और इनको सुलझाना सहज कार्य नहीं है, फिर भी इतिहास की प्रक्रिया को समझाने के लिए दोनों तत्वों को मस्तिष्क में रखना आवश्यक है। वास्तव में इतिहास, इतिहासकार की बोध-शक्ति की कल्पनान्तमक प्रक्रिया है, जो स्थिरता को जीवन तथा अर्थ

प्रदान करती है। क्योंकि विगत जीवन को समझने का यही एक मार्ग है और इतिहास हमारे लिए ऐसे अतीत जीवन का अभिलेखन करता है जो मानव द्वारा किया गया है।

अत: इसका मूल तत्व ऐसी वास्तविक घटनाओं तथा उनकी बहुस्तरीय विविधता में सन्निहित है जो एक बार इस वास्तविक जगत् में घट चुकी हैं। इतिहासकार का कार्य उनका वर्णन करना है, उनको पुनर्निर्मित करना है। ऐसा करने के लिए उसमें कलाकार का गुण होना आवश्यक है। ऐतिहासिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया, वास्तव में, कवि या उपन्यासकार की रचना - प्रक्रिया से तत्वत: भिन्न नहीं होती, सिवाय इसके कि उसकी (इतिहासकार की) कल्पना सचेतन रूप से सत्य के अधीनस्थ रहती है। वह साक्ष्यों एवं प्रमाणों का उल्लंघन नहीं कर सकता और न उनके विरुद्ध जा सकता है। इतिहासकार का कार्य एक संयमी का कार्य है, एक शोधक की वृत्ति है।

इस संदर्भ में यह एक महत्वपूर्ण बात है कि अन्तर्दृष्टीय अवबोधन अथवा कल्पनात्मक अन्तर्प्रवेश की पद्धति सर्वदा से ही महान् इतिहास-कारों की अपनी पद्धति रही है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक पद्धतियों एवं उपलब्धियों से समन्वित होने के बावजूद भी इतिहास शुद्ध विज्ञान नहीं है, वरन् कला से समन्वित एक विशिष्ट ज्ञान-प्रक्रिया है।

6 ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास :---

भारतवर्ष में महापुरुषों के चरित्र में पौराणिकता को जोड़ देने की विशेष प्रवृत्ति रही है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा आदि में दैवी शक्ति का आरोप करके उन्हें पौराणिक बना दिया गया है। इसी प्रकार इतिहास प्रसिद्ध पात्रों में काल्पनिक रोमांस की सृष्टि कर उन्हें कथानायक बनाकर ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना हुई। जैसे- विक्रमादित्य, रत्नसेन, पद्मावती आदि। कर्मफल की प्राप्ति में दुर्भाग्य, सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य में अपूर्व शक्ति के भण्डार होने के दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों, पात्रों की सदा कल्पना के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया। ऐसे ऐतिहासिक काव्य, कल्पना एवं घटना के अद्भुत संगम हैं। गद्य के विकास के साथ उपन्यास हिन्दी जगत में आया।

ऐतिहासिक उपन्यास जो इतिहास एवं उपन्यास के योग से बना है -- इतिहास उपन्यास - ऐतिहासिक उपन्यास। अर्थात् जिस उपन्यास में इतिहास मिश्रित हो वह ऐतिहासिक उपन्यास माना जायेगा। कोई भी कृति ऐतिहासिक उपन्यास तभी मानी जायेगी जबकि वह इतिहास के दर्शन, करा सकने में समर्थ हो। इससे यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक वातावरण ऐतिहासिक उपन्यास का प्राणतत्व है। यदि अपनी मनोरम कल्पना शक्ति के बल पर उपन्यासकार उपन्यास में

ऐतिहासिक वातवरण की अभिवृद्धि कर लेता है तो वह प्रभावशाली ऐतिहासिक उपन्यास होगा। ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत काल की घटनाओं, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं, वातावरण, देशकाल आदि के समन्वय को कल्पना का परिधान पहनाकर प्रस्तुत करता है, क्योंकि यह नितान्त सत्य है कि उपन्यास इतिहास नहीं है। औपन्यासिक पात्रों के निर्माण में कल्पना काम करती है, पर पात्रों के चरित्र विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों के चरित्र में हम तत्कालीन समाज की सारी विशेषतायें जान लेते हैं। उस युग की विचारधारा, आदर्श और प्रचलित रीति - नीति के कारण मनुष्यों के व्यक्तिगत जीवन की गति, किस प्रकार एक विशेष परिस्थिति में पड़कर क्रमश: विकसित होती है, यह हमें ऐतिहासिक उपन्यासों से ज्ञात हो सकता है।

प्राचीन में कुछ अच्छा था और कुछ बुरा। बुरे के हम शिकार हुए। अच्छे ने हमें सर्वनाश से बचा लिया। क्या वर्तमान और भविष्य के लिये हम प्राचीन से कुछ ले सकते हैं, प्राचीन की गलतियों से बच सकते हैं? वर्तमान का हर क्षण भूत और भविष्य में परिवर्तित होता रहता है।

इतिहास और भूगोल की परम्पराओं से वर्तमान की समस्याओं को लेकर प्राचीन में रम जाएँ और उपन्यास के रूप में जनता के सामने अपनी बातें रख दें।

१ वर्मा जी इतिहास को उपन्यासकार का प्रेरक बताते हैं। इतिहास उपन्यासकार के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है वह उस सामग्री को इस योग्य बनायें कि वह वर्तमान युवा पीढ़ी को मनोरंजन, प्रकाश, स्फूर्ति व गति दे सके और भविष्य की संचित निधि बनी रहे।

ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप निर्माण में देशकाल का चित्रण यदि आवश्यक है तो उसमें रसात्मकता का होना भी अनिवार्य है। उसमें इतिहास के संयोग से एक विशेष प्रकार का रस संचरित होना आवश्यक है। उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने से एक विशेष रस संचरित हो जाता है । उपन्यासकार एकमात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं। सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास की उस विशेष गंध और स्वाद से ही एक मात्र संतुष्ट न हो और उसमें से अखण्ड इतिहास को निकालने लगे तो वह साग के बीच में साबित जीरा, धनिया, हल्दी और सरसों ढूँढेगा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ऐतिहासिक रस की अवतारणा पर बल दिया है। ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक सत्य की रक्षा पूर्ण रूप से करे या न करे उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं। यदि ऐतिहासिक उपन्यासकार इस कार्य में सफल हुआ है तो वह सच्चा ऐतिहासिक उपन्यासकार कहा जायेगा।

इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप देशकाल, पात्र, इतिहास, रस आदि तत्वों पर निर्भर करता है। इन सबके योग में कल्पना का विशेष महत्व है। ऐतिहासिक उपन्यास अपनी बिम्बात्मक शैली में कला - प्रयोग की दृष्टि से एकदम भिन्न हैं।

1.7 ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा :---

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है। जिनमें कुछ निम्नलिखित है ---

ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना व सत्य पर बल देते हुए डॉ॰हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं --

साधारणत: ऐसे उपन्यास जिनमें अतीतकालीन पत्र, वातावरण और घटनाओं के ज्ञात तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाकर रखने का प्रयास होता है, वही ऐतिहासिक उपन्यास कहे जाते हैं। (6)

द्विवेदी जी ने यह स्पष्ट किया है कि ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक तथ्य को साधन बनाकर उसे रसमय बनाने के लिए कल्पना के व्याख्यान का सहारा लेता है।

ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यास की भाँति मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों और उनकी समस्याओं की कहानी है।

डॉ॰"शशिभूषण सिंहल की इस परिभाषा में ऐतिहासिक उपन्यास को मनुष्य के पारस्परिक संबंधों व समस्याओं का लेखा - जोखा कहा गया है। इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों की जिम्मेदारी द्विगुणित होती है, उनके लिए इतिहास के प्रति सच्चाई और कला के प्रति निष्ठा रखना नितान्त आवश्यक है। "(7)

इस परिभाषा में इतिहास व कला का उपन्यासकार किस प्रकार सामंजस्य करे यह स्पष्ट किया गया है। वह ऐतिहासिक सत्य का गला न घोट दे। उसे कला के प्रतिनिष्ठा रखनी चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषायें दी हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं ---

ओवेन विस्तर के अनुसार" कोई भी कथा जो एक युग को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करे, ऐतिहासिक है।"(8)

जान बुचन ने ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी है --"ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें लेखक अपने युग से भिन्न किसी युग के जीवन का पुनर्निर्माण तथा वातावरण की पुन: स्थापना करने में प्रयत्नशील हो। "

जान बुचन ऐतिहासिक उपन्यास में तत्कालीन वातावरण का चित्रण एवं जीवन के अतीत क्षणों के पुनर्निर्माण पर बल देते हैं।

अर्नेस्ट ई॰लेजी के अनुसार "ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी घटनाएँ पूर्ववर्ती काल में प्रस्तुत की गई हों।"[7]

अर्नेस्ट लेजी ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध अतीतकालीन घटनाओं से जोड़ते हैं। उन्हीं घटनाओं का प्रस्तुतीकरण उपन्यास में होता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐतिहासिक उपन्यास में कथानक,पात्र और वातावरण का प्रमुख स्थान है, किन्तु इनका जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करना भी आवश्यक है। उपन्यासकार कथानक में इतिहास के तथ्यों को कल्पना के रंग में रंगकर जीवन बना दे। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक तथ्य, वातावरण तथा कल्पना का मिला जुला परिणाम है।

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास का प्रयोग किस रूप में हो? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। साहित्यकारों का एक वर्ग इस पक्ष में है कि इतिहास में परिवर्तन कर उपन्यास लिखना चाहिये। आचार्य चतुरसेन शास्त्री इसी पक्ष में हैं। शास्त्री जी ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास खोजना ठीक नहीं समझते। वे उपन्यास में इतिहास रस की अवधारणा आवश्यक मानते हैं। यह कहा जा सकता है कि "ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहले ऐतिहासिक विशेष सत्यों को जानना चाहिये। परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता क्योंकि ऐतिहासिक विशेष, सत्यों का ज्ञान कभी पूरा नहीं हो सकता। उनमें गवेषणा करनेवाले विद्वानों के द्वारा नई - नई जानकारी होते रहने से निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास की, चिर सत्य के आधार पर जिसमें गवेषणा की कोई गुंजाइश नहीं, रचना करे।

इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखनेवाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु वह केवल इतिहास लिखनेवाले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं। चाहे तो केवल युद्धों की मारकाट, राजनीतिक चालों की दौड़ - धूप, किसी प्रेम कहानी से जोड़कर उपन्यास को घटना प्रदान कर दे, चाहे तो मनोविज्ञान के विश्लेषण की सहायता से कल्पना रचित घटनाओं को पूर्ण विश्वसनीय बना दे। चाहे तो मनोविज्ञान के

विश्लेषण की सहायता से कल्पना रचित घटनाओं को पूर्ण विश्वसनीय बना दे। परन्तु यह प्रयास सत्य और सुन्दर की परिधि में ही बन्द रहता है। जब तक वह शिवं के योग में कल्पना को न दौड़ाये, उसका परिश्रम उतना सराहनीय नहीं हो सकता। ऐतिहासिक उपन्यास से पाठक को और लेखक के समाज को प्रेरणा मिलनी चाहिये।

इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों के साथ अनुमान का प्रश्रय लेकर इतिहास रचता है। इतिहास को सौन्दर्यमय बनाने के लिए वह अनुमान पर आश्रित है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त कल्पना एवं व्याख्या का आश्रय लेता है। वह ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना का परिधान पहनाकर आकर्षक बना सकता है। इतिहासकार अनुमान का सहारा ले सकता है, वह कल्पना की परिधि में प्रविष्ट नहीं हो सकता।

"इतिहासकार निर्माण नहीं कर सकता खोज भले ही कर ले, अन्वेषक होने के कारण इतिहासकार का दृष्टिकोण प वैज्ञानिक कहा जाता है।" (10)

इतिहास राष्ट्र को प्रधानता देता है, व्यक्ति को नहीं। जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार समष्टि प्रस्तुत करता है। इसी में वह राष्ट्र के दर्शन करता है। वह व्यक्ति को राष्ट्र का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करता है। "इतिहासकार व्यक्ति का केवल उतना ही अंश ग्रहण करता है,

जो राष्ट्र व जाति के उत्थान - पतन से सम्बन्धित है। व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है।"§।।§

इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना में इतिहास-प्रमुख प्रवृत्तियों का सहज भाव ग्रहण करता है और अपनी प्रतिभा तथा रुचि के अनुरूप उसका आवश्यकानुकूल प्रयोग करता है। इतिहास मुख्यत: उसके लिए रस-सृष्टि के निर्माण में सहायक हैं। उपन्यासकार इतिहास के आधार पर वृत्त तथा कथ्य को प्रामाणिकता प्रदान कर देता है। वह उपन्यास को पूर्ण ऐतिहासिक रूप में रंजित करके उसे वर्तमान के लिए ग्रहण योग्य बनाता है और कथ्य को सम्बन्धित युग की सीमाओं से उठाकर चिरंतन और सार्वकालिक मानवीय सत्य का रूप प्रदान करने का प्रयास करता है।

1.5 ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटियाँ :---

ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप तथा उद्देश्य, उनकी सीमाओं और संभावनाओं, उसकी प्रेरणाओं, प्रवृत्तियों की समीक्षा करते हुये अनेक आलोचकों एवं कृतिकारों ने अपने - अपने विभिन्न मत और विभिन्न विचार अभिव्यक्त किये हैं। जिनके मूल में उनकी निजी प्रेरक जीवन - दृष्टि हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना, घटना पात्र और वातावरण आदि महत्वपूर्ण तत्व है जिनके योग से ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि होती हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टियों से किया गया है। कोई वर्गीकरण कथानक पर आधारित है तो कोई इतिहास-प्रयोग पर, कोई पात्रों के आधार पर किया जाता है।

उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों और वातावरण की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों का एक वर्गीकरण, किया जा सकता है, जो इस प्रकार है -- 1. घटना प्रधान 2. चरित्र प्रधान

3. वातावरण प्रधान।

घटना प्रधान उपन्यासों में कथानक का महत्व अधिक होता है। इन उपन्यासों में घटना की प्रधानता रहती है। ऐतिहासिक घटना के कौतूहलपूर्ण सृजन में ही इन उपन्यासों का लक्ष्य निहित है।

चरित्र प्रधान उपन्यासों में घटनाओं में घटनायें गौण और पात्र प्रधान रहते हैं। चरित्र की प्रधानता के कारण कभी - कभी इनका कथानक शिथिल हो जाता है। पात्रों के चरित्र को विभिन्न क्रिया कलापों एवं घटनाओं के मध्य विकसित करना इन ऐतिहासिक उपन्यासों की विशेषता है।

वातावरण प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के चित्रण में सजग रहता है, वह तत्कालीन वातावरण को उपन्यास में प्रधानता देता है।

इस प्रकार का वर्गीकरण सामान्य है और ऐतिहासिक उपन्यासों के ऐतिहासिक और औपन्यासिक तत्वों से इनका कोई विशेष संबंध नहीं जुड़ पाता। यह वर्गीकरण विविध ऐतिहासिक उपन्यासों के स्वरूप को स्पष्ट करने में भी समर्थ सिद्ध नहीं हो पाता।

डॉ॰गोपीनाथ तिवारी ने इतिहास-प्रयोग पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, तिवारी जी ऐतिहासिक उपन्यासों की "दो कोटियाँ स्वीकार करते हैं।"(12)
1॰ इतिहास-आच्छादित 2॰इतिहास प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास।

इतिहास आच्छादित उपन्यास में डॉ॰तिवारी मानते हैं कि जिनमें इतिहास की प्रधानता रहती है। इन उपन्यासों को हम शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास भी कह सकते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास "झाँसी की रानी" इसी कोटि का है।

इतिहास प्रधान उपन्यास उन्हें कहते हैं "जहाँ इतिहास के साथ-साथ कल्पना का पुट भी रहता है। किन्तु इतिहास की बहुलता रहती है।"(13) शिवनारायण श्री वास्तव ने भी इतिहास प्रधान उपन्यासों की कोटि को स्वीकार किया है।

इस प्रकार विषय और कल्पना को ध्यान में रखकर हिन्दी में नाना प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये हैं। कोई इतिहास प्रधान है तो कोई कल्पना प्रधान, तथा कोई इतिहास और कल्पना का सामंजस्य उपस्थित करनेवाला है।

कल्पना प्रधान उपन्यास में जिनमें इतिहास और ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा कर कल्पना का अत्यधिक प्रयोग होता है।

कुछ कल्पना प्रधान उपन्यास में गिने चुने इतिहास प्रसिद्ध पात्र तो होते हैं, परन्तु घटनायें लेखक की सृष्टि होती है। "मृगनयनी" इसी प्रकार का उपन्यास हैं।

कुछ ऐतिहासिक उपन्यास ऐसे भी होते हैं, जिनमें देशकाल, वातावरण तथा एक दो पात्र ऐतिहासिक होते हैं, किन्तु सभी घटनायें और, अधिकांश पात्र कल्पित होते हैं, जैसे यशपालकृत "अमिता"।

कुछ कल्पनाप्रधान उपन्यासों में केवल वातावरण ही ऐतिहासिक होता है किन्तु पात्र तथा घटनायें कल्पित होती हैं। यशपाल "दिव्या" इसी कोटि में आता है। कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में "यह" एक सफल प्रयोग है।

विषय के प्रतिपादन के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों का निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण किया जा सकता है?

1.8.1. <u>प्रेम प्रधान और घटना प्रधान</u> :—

ऐसे उपन्यासों में कुछ पात्र ऐतिहासिक अवश्य होते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों का प्राय: कम प्रयोग होता है। घटनाओं का चमत्कार इन उपन्यासों में बहुत अधिक पाया जाता है। ऐसे उपन्यास हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल में लिखे गये हैं जैसे "रजिया बेगम"।

1.8.2. इतिहास प्रधान उपन्यास :---

ऐसे उपन्यासों में इतिहास प्रधान रहता है। ऐतिहासिक तथ्यों की उपन्यासकार रक्षा करता है। उपन्यास में नीरवता दूर करने के लिये उपन्यासकार यत्र-तत्र कल्पना का पुट देकर कथा को मनोरंजक बना देता है। मिश्रबन्धु की "पुदयमित्र" "गुरूदत्त का "बहती रेती" आदि ऐतिहासिक उपन्यास इसके उदाहरण हैं।

1.8.3. राजनीतिक और राष्ट्रप्रेम प्रधान:---

ऐसे उपन्यासों में स्वदेश प्रेम और राष्ट्र उद्धार की भावनाओं का चित्रण राजनीति के परिवेश में किया जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों में, राहुल सांकृत्यायन का "जययौधेय" "सिंह सेनापति" का नाम लिया जा सकता है।

1.8.4. समस्या प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास :---

वर्तमान समाज एवं सामाजिक समस्याओं को लक्ष्य में रखकर जब इतिहास की नवीन व्याख्या की जाती है तब ऐसे उपन्यासों की सृष्टि होती हैं। यशपाल कृत "दिव्या" समस्याप्रधान उपन्यास है।

1.8.5. संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास :---

ऐसे उपन्यासों में संस्कृति एवं परम्परागत मान्यताओं का वर्तमान सामाजिक हित में चित्रण किया जाता है। इन उपन्यासों में

ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं को प्रस्तुत न करके उपन्यासकार का ध्यान जनश्रुतियों पर आधारित घटनाओं के वर्णन पर ही अधिक रहता है, और तत्कालीन लोकरुचि एवं आचार - विचार का विशेष ध्यान रखा जाता है। डॉ॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की "बाणभट्ट"की आत्मकथा" और "चारुचन्द्र लेख" इस कोटि की अनुपम रचनायें हैं।

1·8·6· मनोवैज्ञानिक विचारपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास:--

ऐसे उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में पात्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। जैसे रांघेय राघव का "मुर्दों का टीला" इस श्रेणी में लिया जा सकता है।

ऐतिहासिक उपन्यासों का सर्वाधिक उपयुक्त वर्गीकरण डॉ॰गोविन्द ने प्रस्तुत किया है, जिसमें शिल्पविधि एवं रचनातन्त्र के साथ - साथ इतिहास के साथ उपन्यास का सम्बन्ध आदि बातों पर ध्यान दिया गया है। यह वर्गीकरण इतिहास प्रयोग की पद्धति पर आधारित है। और साहित्यक गुण शिल्पविधि में तत्वों तथा वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध सूत्रों कल्पना - प्रयोग आदि को अपने में समन्वित करता है। इस दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यासों के चार भेद किये जा सकते हैं --

1· शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 2· मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास

3· काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास 4· स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास।

1.8.6.1. शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास :--

इन उपन्यासों में कथानक , पात्र, घटनायें इतिहास में ग्रहण किये जाते हैं। इनका वातावरण भी ऐतिहासिक होता है इन्हें हम शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रख सकते हैं।

1.8.6.2. मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास :--

मिश्र ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार अपनी सुविधा के लिये वास्तविक तथा कल्पित पात्रों एवं ऐतिहासिक तथा कल्पित घटनाओं का सम्मिश्रण कर उपन्यास की रचना करता है। इस कोटि में चतुरसेन शास्त्री कृत "वैशाली का नगरवधू" जैसे उपन्यास आते हैं।

1.8.6.3. काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास :--

यदि उपन्यासकार मूल कथानक इतिहास से ग्रहण करता है, और कल्पनाप्रधान पात्रों का चयन कर उनका ऐतिहासिक कथानक पर आरोप करें अथवा ऐतिहासिक पात्रों को नूतन परिस्थितियों परीक्षाओं में ले जाकर नितान्त कल्पित, साहसिक कार्यों से सम्बन्ध कर उनकी प्रतिक्रियाओं का चित्रण करें तो ऐसे उपन्यास को काल्पनिक, ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रख सकते हैं। जैसे राहुल सांकृत्यान का "सिंह सेनापति" तथा "जय यौधेय"।

1.5.1.4. स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास:--

स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र और कथानक दोनों ही काल्पनिक होते है। समस्त पात्र काल्पनिक एवं ऐतिहासिक होते हुए भी अपना क्रिया - कलाप किसी प्रख्यात देशकाल और वातावरण में ही करते हैं। इस प्रकार के उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण के उपयुक्त चित्र पर ही निर्भर करते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यासों की उक्त सभी कोटियों और श्रेणियों में एक मूलभूत समानता स्पष्ट होती है।

ऐतिहासिक उपन्यास में उपन्यासकार का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास से अवश्य रहते है। इतिहास उसके कथ्य की केन्द्र बिन्दु होती है जिसे वह अपनी कल्पनाशील प्रवृत्ति से अपनी रुचि के अनुकूल विकसित करके ऐतिहासिक वातावरण का पुनर्निर्माण करता हुआ मानवीय सत्य का शिव और सुन्दर रूप में उद्घाटन करता है। महान ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीतकालीन सभ्यता तथा इतिहास के तथ्य से संतुष्ट न होकर संस्कृति की भी अभिव्यक्त करना है, जिससे उस युग की आत्मा को समझने में सुविधा भरी सुरुचि जग सके। इस प्रकार सभी प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास , इतिहास का आश्रय ग्रहण करते हैं। यह दूसरी बात है कि कहीं इतिहास का शुद्ध रूप उपन्यास का मूलाधार और प्रेरणास्रोत रहे और कहीं कल्पना अथवा वातावरण

की सजीवता लेकर व्यंजित हुआ हो। किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि इतिहास की मूलचेतना से अनुप्राणित रहती है।

1.4 ऐतिहासिक उपन्यास की विशिष्टतायें :--

जिस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास एक सशक्त एवं मानव जीवन का व्यापक चित्रण करने में समर्थ विधा है उसी प्रकार उपन्यास जगत में ऐतिहासिक उपन्यास का अपना गौरव है, अपनी विशिष्टतायें हैं। ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के व्यापक पटल से मानवीय जीवन की संवेदनाओं और प्रवृत्तियों को जागृत करके मानसिक तुष्टि ही नहीं करता अपितु मानव के लिये एक आलोक बिन्दु के रूप में भी स्थित रहता है।

ऐतिहासिक उपन्यास कलाकृतियों का वह रूप है, जिसमें विभिन्न कलाओं का संगम होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों का प्रस्तुतीकरण कल्पना के संयोग से उपन्यास कला के आधार पर किया जाता है। ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति उपन्यासकार की गहन आस्था या निष्ठा होती है। इस ऐतिहासिक सत्य को प्रस्तुत करने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार विशिष्ट पद्धति स्वीकार करता है। इतना ही नहीं ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत की पुनर्सर्जना करता है। अतीत को प्रस्तुत करने के लिये वह ऐतिहासिक उपन्यास

में जनजीवन के विभिन्न पक्षों के आलोक में जीवन के सत्य का उद्घाटन करता है। ऐतिहासिक उपन्यास का ध्यान तथ्य एवं घटनाओं के साथ - साथ उनकी नाटकीय पुनसर्जना पर भी रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास में किसी काल विशेष के वातावरण के परिप्रेक्ष्य में अतीत कोपुन: जीवित करने का प्रयास किया जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार का उद्देश्य वर्तमान के संदर्भ में अतीत को साकार करना होता है। इस प्रयत्न में ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्य की रक्षा करते हुए भी कल्पना चित्र - तत्र सहारा लेता है। इसका कारण यह है कि उसके लिए तथ्य साध्य नहीं साधन होते हैं जिनके भीतर निहित इतिहास की भाववृत्ति को चित्रित करना ही उसका लक्ष्य होता है। इस कार्य में वह कल्पना का विशेष सहारा लेता है।

समीक्षा :---

ऐतिहासिक उपन्यासकार जिस युग का चित्रण करता है उस युग के जीवन का यथातथ्य रूप में वर्णन करने का प्रयास करता है। इस प्रयत्न में यदि अतीत की वास्तविक घटनाओं को वह उपन्यास का आधार बनाता है तो यह उसके लिये विशेष गौरव की बात है किन्तु यदि वह वास्तविक घटनाओं और पात्रों का आधार न लेकर कल्पित घटनाओं एवं पात्रों को माध्यम से ऐसा करता है और फिर भी

इतिहास की मूलचेतना की रक्षा कर पाता है तो भी वह उच्चकोटि का उपन्यास कहा जा सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास का प्रयोग दो प्रकार से होता है -- प्रथम अवस्था में उपन्यासकार केवल इतिहास से सामग्री ग्रहण करता है। द्वितीय अवस्था में इतिहास से केवल सामग्री ही नहीं अपितु उपन्यास के लिये एक सुदृढ़ कथानक का भी चयन करता है। फिर उसे अपनी सृजन शक्ति एवं अनूठी कल्पना शक्ति के द्वारा सुगठित बनाकर उसमें प्राण संचार करता है।

अंत में निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के युग और जीवन की विविधता सूक्ष्मता को व्यापक तथा प्रभावशाली ढंग से व्यंजित करने की श्रेष्ठतम पद्धति है। यह एक ऐसी शक्तिशाली योजनाबद्ध एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है जो सामान्य उपन्यासों से अधिक शक्ति वहन करती है। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के साथ रचनात्मक की प्रवृत्ति इसे शुद्ध इतिहास से पृथक करके व्यापकता तथा रुचि का परिष्करण किया जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास में कलाकार कल्पना पर नियंत्रण करता हुआ ऐतिहासिक संभावना को पुष्ट करता है और इतिहास के अन्तर्गत जीवन-शक्ति का संचार करके ऐतिहासिकता की सुरक्षा करने का दायित्व निर्वाह करता है। अत: ऐतिहासिक उपन्यास कला की अपनी निजी विशेषता है जो साहित्य को गौरव प्रदान करती है।

****

सहायक ग्रन्थ- सूची
****

1• डॉ•गोपाल दामोदर तामसकर - मराठों का उत्थान -पतन पृ-3-4•

2• डॉ•राजेन्द्र प्रसाद, साहित्य शिक्षा और संस्कृति पृ" 119-120•

3• डॉ•जगदीश प्रसाद जोशी - प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ-58•

4• डॉ• जगदीश प्रसाद जोशी-प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ-3•

5• जे•बी•बरि• द साइन्स ऑफ हिस्टरी पृ-210•

6• डॉ•गोविन्द [सम्पादक] ऐतिहासिक उपन्यास - प्रकृति स्वरूप में प्रस्तुत हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास क्या है? लेख से उद्धृत - पृ-7•

7• डॉ• गोपीनाथ तिवारी - ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार पृ-9•

8• वोन विस्तर - द वैरेजिनुनस टू द रीडर पृ-12•

9• अर्नेस्ट इ लैजी - अमेरिकन हिस्टारिकल नावेल पृ-5•

10• डा• जगदीश चन्द्र जोशी - प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक,पृ-16•

11• डॉ• शशिभूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा,पृ-26•

12• डॉ• गोपीनाथ तिवारी - ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार की भूमिका से उद्धृत पृ-2•

13• डॉ•गोविन्द - ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप पृ-126•

****

द्वितीय अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा - व्यक्तित्व विश्लेषण

2· वृन्दावनलाल वर्मा - व्यक्तित्व विश्लेषण

2·1· व्यक्तित्व - विश्लेषण की आवश्यकता

2·2· वंश परिचय

2·3· जन्म और शिक्षा

2·4· प्रभाव और प्रेरणा

2·5· जन्म भूमि से प्रेम

2·6· शौक और व्यसन (रुचियाँ व अभिरुचियाँ)

2·7· प्रथा - विरोधी

2·8· धर्म - सम्बन्धी दृष्टिकोण

2·9· राजनीति और समाज से सम्बन्ध

2·10· साहित्य और रुचि

द्वितीय अध्याय

वृन्दावन लालवर्मा-व्यक्तित्व-- विश्लेषण

व्यक्तित्व - विश्लेषण की आवश्यकता :---

साहित्यकार का व्यक्तित्व और कृतित्व परस्पर सापेक्ष होता है। साहित्य में साहित्यकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। साहित्यकार की जीवनी, उसका व्यक्तित्व और जीवन - दर्शन सभी परस्पर अनुस्यूत होते हैं। इन सबका साहित्य - साधन में महत्वपूर्ण योग होता है। नाना प्रकार की स्वस्थ - अस्वस्थ परम्पराएँ संस्कार और चिंतन - धाराएँ तथा विभिन्न परिस्थितियाँ व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं जिनका प्रतिफलन साहित्यकार की कृति में अवश्य होता है। इसलिए किसी साहित्यकार की कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व उसके क्रियात्मक जीवन, उसके मानसिक संकल्प - विकल्प तथा स्वभाव आदि का अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है। व्यक्ति स्वयं एक सम्पूर्ण इकाई नहीं हुआ करता बल्कि वह तो समाज का एक अंग मात्र होता है। समाज रूपी शरीर से उसका सम्बन्ध शरीरावयवों की तरह ही होता है। उसके सम्मिलन से समाज में पूर्णता आती है और

समाज से जीवन विकास की सुविधा प्राप्त कर वह {व्यक्ति} प्राणवान सचेतन बना रहता है। अपने व्यक्तित्व का स्वयं निर्माण करना व्यक्ति के बूते से बाहर की बात होती है। उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है सामाजिक परिवेश, आस-पास के वातावरण से। अत: आलोच्य विषय- वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास का"साहित्य " के सम्यक् अध्ययन के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है कि वर्मा जी की जीवनी, उनके व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला जाय, साथ ही उन विशिष्ट साहित्यकारों, परम्पराओं , लोक -विश्वासों, तत्वों व स्थित परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला जाय जिनके बीच उनका जीवन विकसित हुआ है, उनमें विचारधारायें उद्बुद्ध - उत्पन्न हुई हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उनकी औपन्यासिक कृतियों के प्रेरणा - स्रोत रहे हैं। वर्मा जी के जीवन - काल में समाज , धर्म , अर्थ, राजनीति - सभी क्षेत्रों में महान से महानतर परिवर्तन हुए हैं और उन परिवर्तनों से वे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे हैं। साहित्य के प्रति अनुराग देश के प्रति अटूट भक्ति वीर पुरूषों के प्रति श्रद्धा भावना आदि बातें उन्हें वंश - परम्परा से मिली हैं। शेष उन्होंने अपने चतुर्दिक विस्तीर्ण परिवेश से ग्रहण किया है। किसी भी जागरूक साहित्यकार का साहित्य परिवेश की परिधि से पुष्ट होता है। परम्परा और संस्कार उसे गति और शक्ति देते हैं तथा प्रेरणास्रोत प्रभावित करते हैं। आज का हमारा जीवन अथवा युग न जाने कितनी

राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के उथल - पुथल जीवन मूल्यों के प्रति अनास्था, आर्थिक शोषण विफलताओं और कुंठाओं की घटन में

वह न जाने कितनी पुरानी - नयी परम्पराओं और मान्यताओं का बोझ बनता है, वर्माजी का साहित्य सृजन काल ऐसे ही न जाने कितनी राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतनाओं के उथल - पुथल और संघर्षों में ब - डूब रहा है। स्वभावत: उनका साहित्य इन चेतनाओं और प्रवृत्तियों से अप्रभावित कैसे रहता? उस समय देश में एक ओर महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ और महादेव गोविन्द रानाडे के व्यक्तित्व और चरित्र, पुनर्जागरण, सामाजिक उत्थान तथा आत्मबोध का मंगल शंख फूंक रहे थे तो दूसरी ओर दादा भाई नौरोजी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी के आत्म त्याग और आदर्श देश को स्वाधीनता के लिए ललकार रहे थे। भगतसिंह, नेताजी ,सुभाष चन्द्र बोस के नि:स्वार्थ प्राणोत्सर्ग खूनी क्रान्ति की लपट पैदा कर रहे थे। सन् 1947 में देश स्वाधीन तो हुआ पर दो खंड होकर अंग - विच्छेद कर। परिणामत: देश में वह भीषण रक्तपात, नर-संहार हुआ जिसकी प्यास गाँधीजी की शहादत से बूझी। स्वाधीनता की प्राप्ति तथा महात्मा गाँधी के बलिदान के पश्चात् देश औद्योगिक विकास और आर्थिक स्वाधीनता के लिए पंचवर्षीय योजनाओं, सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से निरन्तर

जूझता हुआ उन्नति के पथ पर अग्रसर रहा है पर इस बीच पाकिस्तान और चीन के विश्वासघात उनके बर्बर आक्रमणों का जवाब देने में इसकी जन और धन एक अजीब आर्थिक घुटन, राजनीतिक, विघटन, सामाजिक विश्रृंखलता और सांस्कृतिक अंधानुकरण में पीड़ित है।

2.2 वंश – परिचय :---

वर्मा जी का वंश जाति से कायस्थ होकर भी कर्म से बराबर क्षत्रिय रहा। उनके ﴾वर्मा जी﴿ पूर्व पुरुष महाराज छत्रसाल के सैनिक थे। उनके प्रपितामह आनन्दराय मराठों के दीवान और फौजदार थे। वे सन् 1857 में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के झंडे के नीचे अंग्रेज़ों से लड़े थे। उनके पुत्र कन्हैया लाल विद्रोह – दमन के पश्चात् अंग्रेज़ों के बंदी बने थे। लेकिन पूर्वजों की यह परम्परा उन्हीं तक आकर समाप्त हो गई। उनके पुत्र अयोध्या प्रसा ﴾वर्मा जी के पिता﴿ और बिहारी लाल तथा स्वयं वर्मा जी उस परम्परागत कड़ी को आगे नहीं बढ़ा सके। वर्माजी को अपने पूर्वजों की शौर्य – कहानियाँ दादी – परदादी से बचपन में सुनने को मिली थी।

वर्मा जी के प्रपितामह दीवान आनन्द राव को कविता करने का शौक था। वर्मा जी को उनकी कविताएँ बचपन में पढ़ने को मिली थी। चाचा बिहारीलाल साहित्य प्रेमी थे और नाटक, उपन्यास पढ़ने और खेलने में उनकी रुचि थी। उनके अधूरे नाटक "राम वनवास" को वर्मा जी ने सन् 1905 में पूरा किया। उन्हीं के साथ प्रारम्भ में

वर्मा जी को कई नाटकों का रंगमंच पर अभिनय देखने का अवसर मिला था और उनमें नाटकों के प्रति रुचि जगी थी। वे[वेर्मा जी के चाचा] प्रतिमाह नाटक और उपन्यास की कुछ पुस्तकें खरीद कर लाया करते थे। वर्मा जी भी समय निकाल कर उन्हें अवश्य पढ़ लिया करते थे। चाचा के साथ ललितपुर में रहते हुए वर्मा जी में पुस्तकें पढ़ने का ऐसा शौक उत्पन्न हुआ जिसने अन्त तक उनका कभी साथ नहीं छोड़ा।

वर्मा जी के पिता झाँसी तहसील के दफ्तर में तीस रुपया मासिक पर रजिस्ट्रार कानूनगो थे, बाद में उनका तबादला झाँसी से गरौठा हो गया। चाचा बिहारीलाल झाँसी में ही पन्द्रह रुपया मासिक पर किसी छोटी - सी सरकारी नौकरी पर थे, बाद पाँच रुपये की तरक्की के साथ उनका तबादला झाँसी जिले की दूसरी तहसील में हुआ। वर्मा जी की प्रारम्भिक शिक्षा इन्हीं के साथ रहकर पूरी हुई। इनके निधनोपरान्त आठवीं कक्षा से वर्मा जी बोर्डिंग में रहने लगे।

वर्मा जी के दो भाई और कई बहनें। वर्मा जी के सुपुत्र सत्यदेव वर्मा बी•ए; एल•एल• बी• कर इनकी कृतियों के प्रकाशन का भार संभाले हुए हैं। वर्मा जी की शादी ।।,।2• वर्ष की अवस्था में हुई थी। उनकी पत्नी सरयू देवी उनके जीवन की, उनके घर की दीप्ति और शोभा थी, रक्षा करनेवाली देवी, हिम्मत में असाधारण और सेवा करने में अद्वितीय।

2.3. जन्म और शिक्षा :---

वर्मा जी का जन्म 9 जनवरी, 1882 अर्थात् पौष शुक्ल अष्टमी संवत् 1945 के दिन मंऊ रानीपूर में हुआ था लेकिन परिवार पिता के साथ झाँसी में ही रहता था। उनके विद्या गुरु झाँसी की पाठशाला के हेडमास्टर स्वर्गीय श्री विद्याधर दीक्षित थे। वर्मा जी का शिक्षारंभ उन्हीं की पाठशाला में हुआ। वर्मा जी के पिता का तबादला झाँसी से गरौंठा हो जाने पर उनके परिवार को झाँसी छोड़ मऊ जाना पड़ा। वर्मा जी भी मऊ आ गए। कुछ दिनों बाद दीक्षित जी का तबादला झाँसी हो गया। उनको झाँसी से मऊ आने बीच की अवधि में वर्माजी को पांडे की पाठशाला में शिक्षोपार्जन हेतु जाना पड़ा। उस पाठशाला से उनका संबंध यद्यपि कुछ दिनों का ही रहा पर उन्हीं कुछ दिनों में उन्हें उस पांडे के संबंध में विचित्र अनुभव हुआ।

"भयंकर था वह पांडे। चमड़े की डोरियों का एक विशालकाय चाबक उसके हाथ में रहा करता था। बात - बात में वह कहा करता था -"चमडी उधेड़ दूँगा।" उनके सामने जाते ही मुझे कॉंपने लगती थी। ज्यों - त्यों करके पाठशाला का समय काटता था।" ҇1҇

पाठशाला की शिक्षा समाप्त कर वर्माजी ने चाचा के साथ ललितपूर रहकर वहाँ के जिला स्कूल से मिडिल की
इसके बाद वे झाँसी चले आये कारण इससे आगे पढ़ने की व्यवस्था वहाँ नहीं थी। उन्होंने मेट्रिक की परीक्षा वहीं के मैक्डानल हाईस्कूल से पास की।

उनके पिता उच्च शिक्षा के विरोधी थे, दूसरे परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कमानेवाले एक उनके पिता और उन पर आश्रित अनेक अत: वे उनकी पढाई वहीं समाप्त कर उन्हें किसी सरकारी दफ्तर में किसी पद पर बैठा देना चाहते थे। वर्मा जी की भी आगे पढने की आकांक्षा भी थोड़ी ही थी। बचपन से ही उनका विचार पहलवान और लेखक बनने तथा चुपचाप बम पिस्तौल के मार्ग पर चलने का था। अत: छोटी - मोटी नौकरी कर लेने से विचार मार्ग में कोई व्यवधान उपस्थित होता न देखा, पिता की इच्छा से सहमत हो, वे झाँसी के सब रजिस्ट्रार के कार्यालय में बारह रुपये मासिक वेतन पर सिर्फ तीन सप्ताह के लिए स्थानापन्न मुहर्रिर हुए। तीन सप्ताह की इस मुंशीगीरी में उन्हें पचास - पचपन रुपये हकदस्तूर के और नौ रुपये वेतन के मिले। सरकारी दफ्तरों में फैली हकदस्तूर की प्रथा से उन्हें बेहद घृणा हुई। उन्होंने लिखा है -- "जब घर पहुँचा दिमाग में एक तूफ़ान था। तो क्रान्तिकारी मुंशीजी बनकर रिश्वत लेने लगा। और जीवन भर यही करता रहेगा।-------- आत्म भर्त्सना का ठिकाना न रहा।"﴾2﴿ परिणामत: भविष्य में फिर कभी रिश्वत नहीं लेने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। कुछ दिनों बाद उन्हें जंगल मुहकमें के दफ्तर में पचीस रुपये मासिक वेतन की बाबूगीरी मिली। लगभग सात महीने वे इस दफ्तर में रहे। सन् 1909 में स्वेच्छापूर्वक इस नौकरी को छोड़ उन्होंने पुन: आगे की शिक्षा प्राप्ति

का कार्यारम्भ किया और ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज से बी॰ए॰ तथा आगरा से एल॰एल॰बी॰की परीक्षाएं पास कीं। एक बार एल॰एल॰बी॰ की प्रथमा में अनुत्तीर्ण होने पर उनके मन- मस्तिष्क में भीषण प्रतिक्रिया हुई थी और उन्होंने तत्क्षण संकल्प किया था - एल॰एल॰बी॰ और इतिहास से एम॰ए॰ दोनों साथ - साथ करने का और ऐसा कर किसी कॉलेज में अध्यापन कार्य करने का। उन्होंने स्वयं लिखा है --" वकालत की परीक्षा पास कर भी वकालत न करूँगा, किसी कॉलेज में अध्यापकी करूँगा, फिर किसी दिन जब उतने पैसे जोड़ लूँगा इंग्लैण्ड जाकर इतिहास में डाक्टरी पास करूँगा और हिन्दी में ऐसा लिखूँगा कि हाँ ------।﴾3﴿

अपने संकल्पनानुसार उन्होंने एम॰ए॰ में नाम भी लिखाया था पर माँ के आकस्मिक निधन से उनका मन पढ़ने में कम लगने लगा था। किसी तरह तैयारी कर वे सिर्फ एल॰एल॰बी॰की प्रथमा की परीक्षा में ही सम्मिलित हो सके थे, यह सोचकर और मन को समझाकर कि एम॰ए॰ पास हो गये और कहीं कानून में फेल हो गये तो बुरा होगा। इतिहास का अध्ययन घर बैठे जीवन भर करते रहना, वकालत करो और घर की देखभाल, किसी कॉलेज या स्कूल में अध्यापकी की तो झाँसी में रहना दुर्लभ हो जायगा। इंग्लैण्ड जाकर डॉक्टरेट की उपाधि हासिल करने की उनकी कामना उसी क्षण समाप्त हो गई। एल॰एल॰बी॰ की दोनों परीक्षाएं पास कर उन्होंने 16 अगस्त 1916 से झाँसी में रहकर वकालत करना शुरू किया।

2.5 प्रभाव और प्रेरणा :---

वर्मा जी के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका व्याप्त और गहरा प्रभाव उनके मन मस्तिष्क पर पड़ा है और उनसे उन्हें प्रेरणाएँ मिली हैं। उन घटनाओं में से कुछ इस प्रकार हैं ---

चार वर्ष की अवस्था में एक रात वर्मा जी ने सोते समय ताक में रखे माँ के पैसों में से दो मोटे पैसे चुरा लिये और सो गये। उस रात उन्होंने भयंकर स्वप्न देखा -- "सपने में देखा कि मऊ रानीपुर से झाँसी स्टेशन पर आये तो माँ न जाने कहाँ डिब्बे से सामान उतारा गया। सामान में एक बोरी भी निकली। उसे खोला तो उसमें माँ की लाश के टुकड़े भरे हुए थे। मैं चीख पड़ा और बेतरह सिसक सिसक कर रोया। माँ ने तुरन्त जगाकर चिपटा लिया। मैंने जब अच्छी तरह से देख लिया कि माँ जीवित हैं और मुझे दुलार - पुचकार रही है, तब कुछ धैर्य बंधा। उन्होंने इसी क्षण माँ के सम्मुख प्रतिज्ञा की -"माँ कभी तुम्हारी चोरी नहीं करूँगा। तुम्हारे पैसे चुराये थे इसलिए तुम्हारा वैसा बुरा हाल देखा।"﴾4﴿

ललितपुर में अपने चाचा के साथ रहते हुए उन्होंने एक बार अपनी चाची को चाचा को फटकारते सुना--"तनखाह कम है तो ऊपर से क्यों नहीं लेते? जॅट साहब के अहलमद होते हुए भूखों क्यों मरते हो?" इसके उत्तर में उनके चाचा ने जो कुछ कहा-"मैं रिश्वत नहीं ले सकता।

रिश्वत लेने और चोरी करने में कोई भेद नहीं।"﴾5﴿ वह उनके मन-मस्तिष्क में सदा-सदा के लिए बैठ गया।

वर्मा जी जब जंगल मुहकमे के दफ्तर में नौकरी करते थे, छुटपन से ही कुछ-न-कुछ पढ़ते रहने की आदत से लाचार वे घर से पुस्तकें लाकर दफ्तर में पढ़ने लगे थे। परिणामत: एक दिन दफ्तर के बड़े बाबू को उन्हें टोकना पड़ा था--"भैया, दफ्तर काम करने के लिए है। पुस्तकें घर पर पढ़ा करो।" आक्षेप सही था। इससे वर्मा जी के कर्तव्य - बुद्धि में सजगता आई। उस दिन से वे फिर कभी दफ्तर में पुस्तकें नहीं ले गये और प्रायश्चितस्वरूप एक सप्ताह तक दफ्तर का काम खड़े - खड़े करने का निश्चय कर उसे पूरा किया, साथ ही, दफ्तर की कलम - स्याही से निजी पत्र लिखना भी बिल्कुल बन्द कर दिया।

वर्मा जी ﴾जब वे मैक्डानल हाई स्कूल के छात्र थे﴿ ने इतिहास की एक पुस्तक में पढ़ा कि जब महमूद गजनवी ने खैबर दर्रे से भारत पर आक्रमण किया था तब मुकाबले के लिये धक्कर - जो उस युग में हिन्दू थे - जा डटे थे। पलक मारने में जितना समय लगता है उतने में ही अधनंगे धक्कारों ने महमूद के तीन - चार हज़ार कवचबन्द सवारमय घोड़ों को चीर डाला था। इस तथ्य ने उन्हें आश्चर्य चकित, विस्मय विमुग्ध कर दिया कारण इससे पूर्व उन्होंने मार्सडन के इतिहास में पढ़ा था कि गरम मुल्क वालों से हार जाते है। इस तथ्य विभिन्नता का कारण अंग्रेज लेखकों का फरेब ही है -- ऐसा उनकी समझ में आया।

उनके मन में तत्काल प्रश्न उठा-- आखिर हिन्दुओं की हार क्यों हुई? यह देश गुलाम कैसे बना? हिन्दुओं का कारण उनकी समझ में आया- पारस्परिक वैमनस्य, आपसी कलह और फूट, राजाओं की विलास - प्रियता और उन्हें युद्ध में जनता का सहयोग नहीं मिलना।

उन्होंने उसी क्षण लिखना प्रारम्भ कर दिया। बीस-बाईस पृष्ठ लिखा भी, फिर भी रह गया कारण इस बीच प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास लेखक वाल्टर स्कॉट के दो उपन्यासों "आइवेन्हो" और "टेलिस्मैन" के अध्ययन ने उनकी इच्छा गति की दिशा को न केवल बदल दिया वरन् उसे निश्चित भी कर दिया। उसी समय अच्छी तैयारी के बाद ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का विचार उनके मन में बद्धमूलक हो गया। टॉड का "राजस्थान" पढ़ने पर उनके मन में राजस्थान के प्रसंगों पर लिखने का विचार उठा परंतु यह सोचकर कि इतिहास संबंधी भूगोल का निरीक्षण किये बिना ऐतिहासिक उपन्यास नहीं लिखना चाहिए। उन्हें अपने विचार का शमन करना पड़ा। पुन: एक बार उनके मन में लक्ष्मीबाई पर लिखने की इच्छा जगी। परन्तु ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में ऐसा करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं हुआ। तात्पर्य यह कि इस समय क्या लिखा जाय क्या नहीं - इसके बीच उनका चित्र भ्रमता रहा।

इसी समय सन् 1905 में वर्मा जी (जब वे नवें वर्ग के छात्र थे) अपने एक पंजाबी मित्र के यहाँ विवाह में सम्मिलित हुए। उस पंजाबी मित्र के यहाँ आए मेहमानों के मुँह से बुन्देलखण्ड और बुन्देलखंडी दरिद्रता के साथ उनकी निन्दा ठठोली के रूप में सुन वर्मा जी के कलेजे में छुरिया-सी छिद गई। अपनी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड और उसके निवासियों के संबंध में उनकी विचारधारणा को उससे गहरी ठेस लगी। वे सोचने को विवश हुए--"जिस भूमि ने मेरे माता - पिता को जन्म दिया, जहाँ लक्ष्मीबाई का पराक्रम प्रकट हुआ, जिस भूखण्ड में चन्देले और उनके बाद छत्रसाल हुए वह कमबख्त! जहाँ के आदमियों का आल्हा सब जगह गया जाता है, जिन्होंने औरंगजेब के और फिर अंग्रेजों के दाँत खट्टे किये वे मरियल-रुडियल। और जानवरों से गये बीते। दिन रात पसीना बहाकर जो अकालों से लड़ते रहते हैं वे इनके मज़ाक की चीज़।" (6) उनके जी में उस समय ऐसी आग लगी जो कभी नहीं बूझी। उस दिन से उनका मन बुंन्देलखंड की एक - एक कंकड़ी, एक - एक बूँद, एक - एक पत्ती और कली में रमने लगा।

2.5 जन्मभूमि से प्रेम :--

वर्मा जी का बुन्देलखण्ड से संबंध पीढ़ियों का था। उससे उनकी आत्मा का रागात्मक सम्बंध था। वे वहीं जन्मे पले और विकसित हुए थे। वे वहाँ की धरती के कण - कण से परिचित थे। उस पहाड़ी भूमि के हर पहलू में उन्हें जीवन शक्ति दिखाई पड़ती थी ।

उस प्रदेश पर उन्हें नाज था। उसी प्रदेश की हित रक्षा के प्रयत्न में उनके परदादा आनन्द राय ने अंग्रेजों की गोली खाई थी। वे §वर्माजी§ बुन्देलखंडी पहले थे बाद में कुछ और। उन्हें इस बात का नाज था कि वे उस बुन्देलखंड के तैलिया पत्थर हैं जिस पर बड़े - बड़े भूकम्पों तक का असर नहीं होता। बुन्देलखंड के इतिहास के प्रति विशेषाकर्षण और रुचि उनमें बचपन से ही थी यही कारण है कि विदेशी इतिहासकारों के भारत के संबंध में मन्तव्यों और पंजाबी मित्र के मेहमानों की बुन्देलखंड और बुन्देलखंडी के संबंध में विचारधारणा की जान-सुन तथा वाल्टर स्कॉट के सभी उपन्यासों को पढ़ चुकने के बाद उनके मन में बराबर जोश के साथ यही भाव - विचार उठता था कि मैं कब बुन्देलखंड की सच्ची घटनाओं पर स्कॉट जैसा लिख उसे भारत का रत्न कहलवा पाऊँगा? उन्हें उस दरिद्र खंड की विभूति का ज्ञान था। वे अच्छी तरह जानते थे कि फटेहाल, अर्थाभाव की स्थिति में वहाँ के लोग मस्ती में फागें और राछरे गाते हैं, झीलें, नदियों और नालों के किनारे नाचते हैं और नाचते - नाचते कल्पना की रंगीन दुनियाँ में आत्म - विस्मृत हो जाते हैं। उनके § वर्मा जी§ उपन्यासों में बुन्देलखंड का जो सहज - स्वाभाविक सजीव पर मोहाकर्षक रूप वर्णित हुआ है उसके पीछे उनके उसी भाव विचार और ज्ञान की प्रेरणा तथा शक्ति निहित है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से उसे सचमुच में अजर - अमर बना दिया है।

2.6 शौक और व्यसन :--

वर्मा जी को बचपन से ही डंड - बैठक, प्राणायाम ,कुश्ती लड़ने, लाठी चलाने, शिकार खेलने, तैरने, घूमने, घुड़सवारी करने, फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट आदि खेलने का शौक था। शौक केवल मनबहलाव के लिए नहीं वरन् शारीरिक बल - बुद्धि के लिए भी। बचपन में ही उनमें पहलवान बनने की धुन सवार हो गई थी। इन सबके अतिरिक्त उन्हें सिगरेट, बीड़ी, पान, तम्बाकू, हुक्के आदि के सेवन का भी शौक जागा था पर वे इनके कभी गुलाम नहीं हो सके थे। इनमें से किसी एक की भी संगति का निर्वाह उन्होंने जीवन-पर्यन्त नहीं किया। था। इनका शौक उनमें जागा था संगति के प्रभाव से जो कभी व्यसन के रूप में परिवर्तित नहीं हो सका। व्यसन यदि उन्हें था तो केवल प्रकृति - निरीक्षण, भ्रमण, शिकार, व्यायाम, सितार - वादन, अध्ययन और प्रणयन का। इन सबका निर्वाह उन्होंने अपने जीवन में आद्यन्त किया। प्रकृति - निरीक्षण, शिकार और भ्रमण का व्यसन उन्हें कुछ ऐसा था कि अवकाश मिलने पर वे स्वयं को रोक नहीं पाते थे - कभी ऐतिहासिक स्थानों को देखने के बहाने जाते थे तो कभी शिकार खेलने अथवा झीलों, पहाड़ों, नदियों आदि की रमणीयता को देखने के बहाने। वे कभी अकेले लगातार घंटों बैठे नदियों का बहना देखते रह जाते थे तो कभी प्रकृति की मुस्कुराहट को देखने में लीन-तल्लीन मस्त हो जाते है थे। घुमक्कड़ी, भ्रमण - वृत्ति के संबंध में स्वयं लिखा है---

"मैं डाँगों, पहाड़ों और नदियों में इतना घूमा हूँ कि घटनाएँ कभी भूल नहीं सकता हूँ। अनेक घटनाओं की तो मुझको तारीखें तक याद है।----- कभी - कभी तो बरसात में तेज बहते हुए नालों में होकर घूमता हूँ। घंटो भीगा रहा परन्तु मुझको उससे हानि कभी नहीं हुई।"[7] यही कारण है कि उनकी कृतियों में शिकार, युद्ध, प्रकृति आदि के वर्णनों में सूक्ष्मता और प्राणमयता के दर्शन होते हैं। ऐसे स्थलों पर उन्होंने स्वत: अनुभूत ज्ञान का उपयोग किया है।

आद्यन्त जीवन में शारीरिक बल - वृद्धि और चारित्रिक दृढ़ता बनाये रखने के लिए वर्मा जी ने व्यायाम को सबसे उत्तम और प्रधान साधन के रूप में स्वीकार किया था। जीवन में ओज, शक्ति और तेज बनाये रखने की चिन्ता उन्हें जीवन - पर्यन्त बनी रही। इस संबंध में उनका विचार था --"जीवन में ओज, तेज और शक्ति ने विदा ले ली तो फिर जीवन में रखा ही क्या है? कुश्ती और व्यायाम से गठित, बलिष्ठ शरीरवाले वर्माजी को, इसी कारण छव सेर दूध और आधा से: जलेबी एक समय में एक बार में खा-पीकर पचा जाने में कठिनाई नहीं होती थी।"[8]

लाठी चलाने और उसके वार से स्वयं को बचा लेने की कला में भी वे पारंगत थे। शिकारी भी अव्वल दर्जे के ही थे। बिना शिकार किये उनके पेट का अन्न जैसे पचता ही नहीं था। मैथलीशरण गुप्त ने साहित्य संसद के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण देते हुए उनके संबंध

में कहा था --"जब देखो तब कहीं जंगल में, नदी, नालें, पर्वतों, पहाड़ों में बन्दूक लिये घूमता रहता है। उसे शेर चीते का डर नहीं। कहता है -"जब कोई चीता आयेगा तो देखा जायेगा।"§१§ शिकार के सिल-सिले में एक बार एक बनैल सुअर ने उनकी पिंडली पर आघात किया था, एक बार कान के पास उन्हें ऐसी चोट लग गई थी कि जीने के लाले पड़ गये थे फिर भी उन्होंने कभी शिकार करना नहीं छोड़ा, साहसपूर्वक खेलते ही रहे। यह उनके जीवन का व्यसन बन गया था।

वर्मा जी संगीत कला, चित्रकला और मूर्तिकला के भी गहरे प्रेमी थे। कुशल संगीतज्ञ और संगीतप्रेमी होने की वजह से कभी - कभी तो वे लगातार घंटों सितार बजाते रह जाते थे और उसके मोहक - मादक प्रभाव में इतने लीन-तल्लीन, आत्म विभोर हो जाते थे कि खाना-पीना भूल जाते थे। अपने सूक्ष्म संगीत ज्ञान और कौशल का उपयोग उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों -"मृगनयनी" और "माधवजी सिंधिया" में किया है। "मृगनयनी" का बैजनाथ गायक और संगीतज्ञ है तथा "माधव जी सिंधिया" की गन्ना बेगम सितार वादन की कला में दक्ष।

अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए वर्मा जी ने दो साधनों को अपनाया था- एक भ्रमण और दूसरा पुस्तकों का अध्ययन । पुस्तकें पढ़ने का व्यसन उन्हें बचपन से ही था। जब वे ललितपुर जिला स्कूल के छात्र थे और चाचा के साथ रहते थे नाटक और उपन्यास की पुस्तकें रात्रि

के सन्नाटे में सबके सो जाने पर पढ़ा करते थे। उन्हें अधिक प्रभाव डालनेवाली पुस्तकों में से कुछ इस प्रकार है - भारतेन्दु के नाटक -- "भारत दुर्दशा" और "नीलदे की" वाल्टर स्कॉट के उपन्यास - "आइवेन्हो" और "टेलिस्मैन" इण्डिया एण्ड व व्हाड इट कैन तीच अस" टॉड का राजस्थान, "थियोसोफिकल समाज" से सम्बद्ध ए.पी. सिनेट की एक पुस्तक "औकल्ट वर्ल्ड"
चार्लेस डार्विन की "ओरिजिन ऑफ स्पेसीज" वकील की इंग्लैण्ड में सभ्यता का इतिहास , नर विज्ञान
समाज विज्ञान और मनोविज्ञान की पुस्तकें आदि। इनके अतिरिक्त

वर्मा जी ने कुछ पुस्तकें पढ़ी थी जो इस प्रकार हैं -- चन्द्रकान्ता, रामायण, महाभारत, जर्मन कवि गेते के "फास्ट" का अंग्रेज़ी अनुवाद, शकुन्तला, मुद्राराक्षस, गुलिवर्स ट्रैवल्स, अरेबियन नाइट्स आलिफ लैला, "रॉबिन्स क्रूसोरिज डेविड्स की "बुद्धिस्ट इण्डिया" इत्यादि।

7. प्रथा - विरोधी।--------

वर्मा जी स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। प्राचीन दकियानूस विचारों, अंधपरम्पराओं, आस्थाओं, मान्यताओं, रूढ़ियों का अंधभक्त बनकर रहना वे नापसंद करते थे। तर्क-बुद्धि से संगत जँचनेवाली परम्परा अथवा प्रथा ही उन्हें विशेष रूप से मान्य होती थी। यही कारण है कि होली के अवसर पर की जानेवाली हुल्लड़बाजी, वीभत्स प्रदर्शन

से उन्हें बचपन में ही घृणा ,नफ़रत हो गई थी। उन्होंने स्वयं लिखा है --"होली के अवसर पर समाज के अनेक व्यक्तियों की दमित, कुंठित वासनाएं खुले मैदान में आ जाती हैं। दूसरों का बाहर रखा सामान चुराकर होली के ढेर में डालने की प्रथा थी। मैं शामिल नहीं होता था,साथियों को गाँव से बाहर जंगल की ओर ले जाता था और वहाँ से लकड़ी कंडा बीन बानकर लाता था।" एक बार ससुराल में उनका मुँह हरे रंग के पोत दिया गया था -- जो उन्हें बेहद खटका था और चार वर्षों तक ससुराल नहीं गये थे।

इसी तरह हिन्दू - समाज में प्रचलित पाँव छुअव्वल प्रथा भी उन्हें नापसन्द थी। वे इतना ही जानते - मानते थे कि "माता - पिता और जिसे गुरु मानें उनके सिवा किसी के पैर नहीं छूना चाहिए।"[10] समाज में प्रचलित दहेज - प्रथा भी उन्हें भली प्रतीत नहीं होती थी। कारणवशात् उन्होंने अपने इकलौते पुत्र सत्यदेव जी की शादी में कुछ भी नहीं लिया था।

हिन्दू समाज में दृढ़ता से पैठी छुआ-छूत , अस्पृश्यता की भावना को समाज के हित में बाधक समझ उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही खाने - पीने और छुआछूत की जाति वाली दीवारें तोड़ दी थी।

2.8 धर्म - सम्बन्धी दृष्टिकोण :---

वर्मा जी का परिवार सनातनधर्मी था। नित्य रात्रि में उनके यहाँ तुलसीकृत "रामचरित मानस" का पाठ होता था। सन् 1906 से पूर्व वर्मा जी भी घोर सनातन धर्मी थे। "हनुमान चालीसा" के पाठ पर उनकी पूरी आस्था थी। एक बार सन् 1904 में उन्होंने यौन वासना से बचने के लिये "हनुमान-चालीसा" का नियमपूर्वक पाठ करना शुरू किया था और उन्हें सफलता भी मिली थी। इसी तरह सातवीं कक्षा में गणित की परीक्षा में पास होने के लिये उन्होंने "महावीर स्वामी रक्षा करेंगे-- ऐसा विश्वास मन में धारण कर "हनुमानचालीसा" का नियमपूर्वक नित्य दो बार पाठ करना शुरू किया था।"(1) इसी तरह देवी - देवताओं के आपद्काल में स्मरण पर भी उनका विश्वास था तभी तो वे अपनी बीमार माँ को देखने के लिये झाँसी से गरौठा जाते समय मार्ग में रास्ते भर माँ के स्वास्थ्य के लिये देवी-देवताओं का स्मरण करते गये। लेकिन सन् 1906 से उनका धर्म - सम्बन्धी विचार में आकस्मिक परिवर्तन आया। इस समय उन्हें आर्य समाज के एक बड़े उपदेशक के 6,7 व्याख्यान सुनना तथा "सत्यार्थ प्रकाश" का अध्ययन करने का अवसर मिला। इनसे आर्य समाज के प्रति न केवल आस्था जगी बल्कि वे घोर आर्य समाजी ही बन गये थे। बड़े दिन की छुट्टियों में गरौठा पहुँच उन्होंने अपने इस परिवर्तन से अवगत तो कराया ही, साथ ही, उनके कुछ विश्वासों की नुकताचीनी करने

से भी बाज नहीं आये। माँ को उनका यह परिवर्तन बुरा नहीं लगा, लेकिन उन्होंने उन्हें सहिष्णु बनने की सलाह अवश्य दी जो उनके (वर्मा जी के) मन-प्राणों में सदा-सदा के लिये घर कर गई।

इसी तरह कुछ कालोपरान्त चार्ल्स डार्विन, वकिल, स्पेंसर, मार्क्स, एक्टन, बुकैशियों, दान्तें, विक्टर ह्यूगो आदि की पुस्तकें पढ़ वे उनके सामूहिक प्रभाव से पूर्णत: नास्तिक हो गये। उन्होंने स्वयं लिखा है --"विश्व का रचयिता कोई शायद है इतना भरोसा तो था, परन्तु देवी - देवताओं पर से विश्वास उठ गया। मन में एक ताजगी आई जिसने शायद ही कभी मेरा साथ छोड़ा हो।"(12)

2.9 राजनीति और समाज से सम्बन्ध:--

विद्यार्थी जीवन से वर्मा जी को राजनीतिक हलचलें छूती रहीं। जब वे झाँसी के मैकडानल हाई स्कूल में मैट्रिक के छात्र थे और बोर्डिंग में रहते थे, उनका संबंध बंगाल के एक लाहिड़ी से हो गया था। दोनों क्रान्तिकारी थे और बंगाल - विभाजन का व्यापक प्रभाव उन पर पड़ा था। बंग - भंग की सरकारी घोषणा के विरोध में हुए जन-आन्दोलन के परिणामस्वरूप लाला लाजपतराय, सूफी अम्बा प्रसाद और सरदार अजितसिंह की हुई गिरफ्तारी का समाचार सुन वर्मा जी दहक उठे थे। इससे पूर्व पश्चिम के भारी भरकम रूस की पूर्व के छोटे से जापान के साथ युद्ध में हुई पराजय के समाचार से उन्हें काफी

प्रसन्नता हुई थी। उनके मन में उसी दिन यह विश्वास पक्का हो गया था। कि निर्बल भी प्रयत्न करने पर सबल बन सकता है। अपने विचार को परिपक्व बनाने के उद्देश्य से उन्होंने उसी समय से प्रयाग समाचार, श्री वेंकटेश्वर समाचार, बंगवासी, श्री बालमुकुन्द गुप्त सम्पादित "स्वदेशी" और "बायकार" में वर्माजी का विश्वास था अत: उन्होंने परीक्षा की समाप्ति के बाद स्वाधीनता: प्राप्ति और शोषणों के संहार के लिए बम-पिस्तौल का मार्ग अपनाने का निश्चय किया।"(13)

अंग्रेज़ जाति से घृणा तो उन्हें उस दिन हो गई थी। जिस दिन उन्होंने पाँचवीं - छठवीं कक्षा में, ई॰मार्सडन कृत "भारत का इतिहास" पढ़ा था और प्रतिकार भावना से प्रेरित उन्होंने उसी दिन से व्यायाम की मात्रा बढ़ा दी थी। यह सोचकर कि शायद कभी किसी दिन, किसी अंग्रेज़ से मुकाबला हो गया तो बिना चित किये न रहूँगा। जब के ग्वालियर विक्टोरिया कॉलेज के छात्र थे, उनका "सेनापति ऊदल" नाटक सरकारी आक्षेप के कारण जब्त हो गया। इस नाटक की रचना का उद्देश्य था-"देश द्रोहियों को किसी प्रकार समाप्त कर देने से पाप नहीं लगता है।"परिणामत: वर्मा जी सरकार के कोपभाजन बने। उन्हें कुछ दिनों पुलिस की निगरानी में रहना पड़ा। इससे उनके मन में शासन के खिलाफ वर्तमान घृणा में वृद्धि हुई। सन्1913 में वर्मा जी (जब वे एल॰एल॰बी॰के छात्र थे) "सरस्वती के सहकारी

सम्पादक और कानपुर से निकलनेवाले पत्र "प्रताप" के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आये और "प्रताप" के संवाददाता बने। उन्होंने पं॰बदरीनाथ भट्ट श्री मन्नन द्विवेदी के साथ मिलकर "गोल-माल कारिणी सभा" का निर्माण किया और तीनों छद्म नाम से हास्य व्यंग्य - पूर्ण निबन्ध लिखने लगे। जो मन में आता था तीनों लिख डालते थे, उन्हें किसी का डर नहीं था, किसी की परवाह नहीं थी। वे शायद ही किसी को छोड़ते थे।

सन् 1916 में वकालत प्रारम्भ करने के साथ - साथ वर्मा जी के लिए सक्रिय राजनीति का द्वार खुल गया। राजनीति और जन सेवा कार्य के प्रति उनकी रुचि बढ़ने लगी। इसी समय उन्हें लखनऊ में हुए कांग्रेस अधिवेशन में आये बड़े - बड़े कांग्रेसियों के दर्शन का मौका मिला। सन् 1918 में जब झाँसी में "इनफ्लूएन्जा" का भीषण रूप प्रकट हुआ। वर्मा जी ने उससे पीड़ित जनों की सेवा तो की ही, साथ ही मृतकों की लाश ढोने तथा दाह कर्म करनेवाले स्वयं सेवकों में भी वे सम्मिलित हुए। उस समय के अपने उत्साह की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है-- "वंदेमातरम्" कहते - कहते लाश ढोते थे। "राम नाम सत्य है" की अपेक्षा उससे अधिक स्फूर्ति मिलती थी। अप्रैल 1919 में हुए "जलियाँवाला काण्ड" के भीषण प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने पीड़ित भारतीयों की संवेदना में अपने उत्साही ओजस्वी वकील मित्र बाबू राज नारायण सक्सेना के सहयोग से शहर में हड़ताल करायी, बाज़ार

बन्द करवाने के लिए बाज़ार - बाज़ार गलेबाजी करते फिरे। इसी समय लीडर के सम्पादक तथा लिबरल पार्टी [नरम दल] के सक्रिय और सशक्त सदस्य श्री सी·आइ·चिंतामणि झाँसी से यू·पी·की विधान - सभा की सदस्यता के लिए उम्मीदवार खड़े हुए। गाँधीजी इस चुनाव के होने देने के पक्ष में नहीं थे कारण सन् 1920 में कलकत्ते में हुए विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने स्कूल - कॉलेजों की पढ़ाई छोड़ने के साथ ही कौंसलों के बहिष्कार का प्रस्ताव भी स्वीकृत किया था। शौकत अली चाहते थे। --"और चाहे जिसको वोट दो लेकिन चिंतामणि को मत दो।" तात्पर्य कि कांग्रेस चिंतामणि के विरुद्ध थी, फिर भी, वर्मा जी और उनके साथियों की तत्परता दौड़ - धूप और सच्ची लगन से चिंतामणि को सफलता मिल गई और वे मन्त्री हो गये। महीनों चिंतामणि जी के लिए घूमने - फिरने , दौड़ - धूप करने के बाद वर्मा जी का मन शान्त जीवन से ऊबने लगा अत: उन्होंने अपने जिले में बेगार बन्द करवादेने के उद्देश्य से जिले के प्रमुख स्थानों पर जा-जाकर सभाएँ करना और व्याख्यान देना शुरू किया।

सन् 1922-23 में सरकार "प्राचीन स्मारक रक्षा विधान" के अनुसार देवगढ़ के जैन मन्दिरों को अपने अधिकार में करना चाहती थी। वर्मा जी ने अखिल दिगम्बर जैन महासभा की ओर से कानूनी कार्रवाई की और सरकार के इस प्रयत्न को रोकने में सफल हुए। क्रान्तिकारी

चन्द्रशेखर आजाद की सहायता भी वे कभी - कभी कर दिया करते थे। झाँसी कांग्रेस कार्यकर्ताओं के अनुरोध करने पर वे झाँसी से स्थापित "अमन-सभा" में सम्मिलित हुए पर उसका नाम बदलकर "शान्ति सभा-" रखा और उसके उद्देश्यों से यह जुड़वाया कि कानूनी उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति हमारा ध्येय है। झाँसी के कलक्टर को उनकी बात को मानना पड़ा। झाँसी जिले में सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ सन् 1924 में हुआ था। उससे वर्मा जी का संबंध उसी वर्ष से था। काम तीन - चार वर्ष लस्टम - पस्टम चला। सन् 1928 में सजीवता के प्रेरक, लेख और वाणी के धनी गणेशशंकर विद्यार्थी हिन्दू-मुस्लिम दंगे में मुसलमानों की रक्षा करते हुए एक मुसलमान के हाथों मारे गये। उनका प्रबल - सबल व्यक्तित्व और जिस आन पर उन्होंने बलिदान किया था, वर्मा जी को दत्तचित्त होकर कुछ करने के लिए बाध्य करने लगा। वर्मा जी सन् 1936-1948 के अप्रैल तक झाँसी जिला बोर्ड के अध्यक्ष रहे। इस अवधि में उन्हें अपनी प्रबन्ध शक्ति के प्रदर्शन का अवसर मिला। इस पद पर रहते हुए उन्होंने भ्रष्टाचार का दमन बड़ी सावधानी के साथ किया। सन् 1943 में घायल बीमार सिपाहियों के लिए 6 छटाँक के लगभग वर्मा जी ने खून अपने शरीर से दिया। सन् 1947 में झाँसी में हिन्दू - मुस्लिम तनाव बड़े जोरों में उपस्थित हुआ। एक दिन समाचार फैला कि एक वयोवृद्ध हिन्दू के सगे - सम्बन्धियों के साथ सरहद पर मुसलमानों ने बुरा बर्ताव किया है।

इससे हिन्दुओं में प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी। योजना बनी और निश्चय हुआ कि झाँसी को मुसलमानों से रहित कर दिया जाय। योजना कार्यान्वित होने के नियत समय से कुछ पहले वर्मा जी को इसका पता चला और व उन्होंने उस महान् कुकृत्य को होने नहीं दिया। जिससे सैकड़ों निर्दोषों के प्राण बचे साथ ही झाँसी से हिन्दू - मुस्लिम तनाव भी तिरोहित हो गया। सन् 1951 में वर्मा जी पार्लियमेंट की सदस्यता के लिये उम्मीदवार बने। उन्होंने स्वयं लिखा-- "अब चला चुनाव का दंगल। मेरे ऊपर इतनी गोलियाँ बरसाई गई कि मेरे पुरखे तक चौंक पड़े होंगे। मेरे अकेले श्री खेर नहीं थे, और भी थे। चुनाव के दिनों में मानव - प्रकृति की नीचे से नीचे की वह ऊपर आ जाती है और कुछ भी वह कहलायें या करा डाले थोड़ा है। हमारे देश में चुनाव का तो अभी यही हाल है। सिद्धान्तों की बातें कम होती हैं, कीचड़ अधिक उछाला जाता है। फिर भी मुझे और मेरे समर्थकों को आशा थी।"(14) मतदान जनवरी 1952 में हुआ। वर्मा जी हार गये और उनकी जमानत जब्त हो गई। इससे उनके मन में प्रतिक्रिया हुई-- "सक्रिय राजनीति तुम्हारा क्षेत्र नहीं है, तुम्हारा क्षेत्र दूसरा है उसी पर पिल पड़ो, उसीमें लगे रहो, उसी के द्वारा देश और समाज की सेवा करने का प्रयत्न करो। मेरे मन में बार-बार उभरता है।"(15) वर्माजी जिला को-ऑपरेटिव बैंक के संचालक कई वर्षों से थे अत: नई अन्तरिम जिला परिषद का निर्माण हुआ, वे उनके सदस्य हुए।

अपनी सत्तरवीं वर्षगांठ (9, जनवरी 1958) की रात वर्माजी के मन में अपनी संस्कृति के संबंध में बनी धारणाएँ उभरीं। वे धारणाएँ इस प्रकार थीं ---

1• प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामंजस्य कैसे हो? अहंकार और विद्वेष के त्याग के प्रयत्न द्वारा।

2• विज्ञान और आध्यात्म का समन्वय कैसे हो? कारण और कर्म के अटूट संबंध को ध्यान में रखा जावे, अंधविश्वासों को छोड़ा जावे, पराविद्या और योगाभ्यास द्वारा दोनों का समन्वय किया जावे। एक - दूसरे के दृष्टिकोण समझते रहने के अभ्यास से विज्ञान की उन्नति के के साथ ही भौतिक जगत में शान्ति रखी जा सकती है।

3• श्रद्धा और विश्वास की अपरिहार्य जरूरत है। साथ ही अंधविश्वासों से बचने की भी।

4• प्रकृति से तादात्म्य और परमात्मा के प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा का संयोग।

5• तन और मन को स्वस्थ रखा जाय। दूसरों को नोंचने - खसोटने की वृत्ति छोड़ी जाय। प्रसन्नचित्त रहे और सफलता विफलता के क्षणों में संतुलित बना रहे।

6• निर्भयता, पुरुषार्थ और द्वेषहीनता (अहिंसा) का सहयोग रखे !

7• कोई लाभ हो तो "फूला न समावे" कोई हानि हो तो उससे अपने को कुपल न जाने दे। क्रोध पर काबू रखने का प्रयत्न बहुत आवश्यक है।

"सिर मुड़ाकर" किसी लाभ के पीछे पड़ना, दु:ख को न्योता देना है - बेतुकी आकांक्षा सफल होती ही बहुत कम है, निराशा आ टूटती है, "मुड़े सिर पर ओले पड़ते हैं, क्रोध मति -विभ्रम, बुद्धि विनाश न जाने कितने भूत आ चढ़ते हैं।"

26 जनवरी 1958 {गणतंत्र दिवस} के दिन वर्मा जी को कुछ ही लोगों में उत्साह ओज और उमंग दिखाई पड़ीं। अधिकांश उन्हें रीति-रिवाज़ का निभाव-सा करते दिखाई पड़े थे। इससे उस समय उनके मन में बहुत सी बातें उठी थी। उन्होंने स्वयं लिखा है --"लगन की कमी, कर्तव्य - पालन के प्रति तत्परता की कमी, भ्रष्टता, परशोषण, अनैतिकता, एक दूसरे को न समझने की प्रवृत्ति, असहिष्णुता, अहंकार, अनुशासनहीनता, फैशनपरस्ती इत्यादि का फैलाव - सा दीखता है। परन्तु साथ ही, पौरुष और निर्भयता, स्वच्छ रहने की भावना, जीवन के ऊपर पड़ रहे दबावों का मुकाबला करने की धुन , स्त्रियों में स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भर बनने की ओर सजगता, साहस और जीवन के प्रति रसिकता, ये तत्व भी बढ रहे हैं। खर्चे बढ रहे हैं, कैसे उनसे निबटा जाय यह समस्या है। उस समय उनकी समझ में जो कुछ आया उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है --"विकास गति रोके नहीं रुक सकती, प्रकृति का नियम जो ठहरा। इस गति को शक्ति देना हम सबका कर्तव्य है। किसी युग में दस कदम आगे और किसी युग में नौ कदम पीछे। दूसरे युग में इन दोनों की खिचड़ी।

ऐसा दिखाई पड़ता है। दस की गिनती को बढ़ाना और नौ की गिनती को कम करना, विचारकों, राजदर्शियों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, कलाकारों इत्यादि का ध्येय होना चाहिए। नाम चाहे राजनैतिक दल या शासन का कुछ हो प्रयत्न अनवरत होते रहना चाहिए कि----

1. हर एक व्यक्ति को पेट भर खाने के लिये मिले। उसे अपने परिश्रम का पूरा पुरस्कार प्राप्त करने में असमर्थ और अशक्त हो जाय तब उसके भरण - पोषण का प्रबंध किसी ऐसी योजना के अन्तर्गत हो जो उसे अपने घर सुलभ हो जाय।
2. हर एक के लिए रहने के स्थान की सुविधा हो।
3. ओढ़ने - पहनने के लिए किसी भी कपड़े की कमी न रहे।
4. सब स्वस्थ और स्वच्छ जीवन बिता सकें।
5. हर एक के लिए कम से कम इतनी शिक्षा का प्रबन्ध हो कि वह अपनी भाषा में लिख सके और सहजगम्य पुस्तकें पढ़ सके।
6. हर एक को इतना अवकाश मिलता रहे कि वह अपने समय को स्वस्थ मनोरंजन या किसी कला के अनुशीलन में लगा सके।
7. बच्चों के विकास और अनुशासन पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।
8. हर व्यक्ति को, जो जिस योग्य हो, काम मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. समाज का ढर्रा ऐसा बनाना और चलाना चाहिए कि हम धर्म, सिद्धान्त, विचार और कर्म, एक दूसरों को क्षति पहुँचाने बिना चलायें चलेंम मित्रता के साथ एक होकर रह सकें।

10. व्यक्तियों के शरीर को प्रबल और कष्ट-सहिष्णु एवं मन को संयमी बनाये रखने की योजनाएँ कार्यान्वित हों।

पहले क्या किया जाय राजदर्शियों और कार्यकर्ताओं को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए अनुपात का भी। प्राथमिकता और अनुपात का ठीक बोध न होने के कारण देश को भारी हानि पहुँचाने का संकट रहता है।

सन् 1962 ई॰ में भारत पर हुए चीन के आक्रमण का समाचार सुन उन्हें दुःख हुआ। वे भी अन्यों की तरह रक्त बैंक में अपना रक्त देने गये। उस समय उनकी उम्र 73 वर्ष थी, अतः उनका रक्त नहीं लिया गया। सन् 1964 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया। घर - घर में स्त्री-पुरुष बाल और युवा युद्ध के समाचारों के लिए उत्सुक दिखाई पड़ने लगे। वे हर प्रकार से राष्ट्रीय संकट में स्वयं को झोंकने के लिए तैयार थे। वर्मा जी भी समाचारों को उत्सुकता पूर्वक पढ़ते थे। जनता में व्याप्त उत्साह की लहर से प्रभावित उन्होंने उस लहर को "अमर-ज्योति" उपन्यास में स्थान दे अपना हृदय भार हल्का किया।

सन् 1967 के अक्तूबर महीने में वर्मा जी को रूस जाने का निमंत्रण मिला। खर्च रूस और भारत दोनों की सरकारों को उठाना था और उन्हें [वर्मा जी] की सांस्कृतिक प्रतिनिधि आदान-प्रदान के अन्तर्गत जाना था। 10 अक्तूबर, 1967 के दिन उन्होंने झाँसी से रूस की यात्रा प्रारम्भ की और एक महीने से अधिक के लम्बे भ्रमण के बाद 19 नवम्बर को वहाँ से झाँसी के लिए प्रस्थान किया। इस तरह आद्यन्त वर्मा जी में सक्रियता बनी रही।

2.10 साहित्य की ओर रुचि:---

उनकी रुचि न केवल साहित्यिक कृतियों के सृजन में ही नहीं थी अपितु एक अच्छे उत्तम पाठक के रूप में अन्यों की रचनाएं पढ़ने में भी थी। यही कारण है कि कभी - कभी तो वे एक ही वर्ष में कई पुस्तकें लिख डालते थे। उनके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ सन् 1904 ई॰ में हुआ जब वे आठवीं कक्षा के छात्र थे। सर्वप्रथम उन्होंने "नारान्तक वध" नाटक लिखा और घर की एक अटारी में धोतियों और चादरों के पर्दे बनाकर खेला भी। सन् 1905 में उन्होंने तीन नाटक और लिखे। पाँचवी - छठवीं कक्षा में उन्हें विदेशी इतिहासकार ई॰मार्सडन लिखित "भारत का इतिहास" पढ़ने को मिला था। उसमें वर्णित तथ्यों से उनके बचपन में दादी परदादी से सुनी भारत के शौर्य की कहानियों से पड़े संस्कार को धक्का लगा था। इतिहास के अध्ययन की रुचि उनमें उसी समय

से जगी थी। नवीं कक्षा में इतिहास की एक पुस्तक के अध्ययन से उनके उस धक्के को थोड़ी - सी सान्त्वना मिली थी। कारण पहले में भारतीयों के शौर्य की निन्दा की गई थी और इसमें प्रशंसा। विचार की इस प्रकार की भिन्नता से उनमें सही बात जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसी समय उन्हें

नाम की पुस्तक पढ़ने को मिली। इससे प्रेरणा ग्रहण कर और प्रेरित होकर वे भारत का सही इतिहास लिख डालने के एक अधकचरे नतीजे पर पहुँच गये, बीस-बाइस पृष्ठ धुन में आकर लिख भी डालें पर आगे नहीं लिख पायें। इसी समय उन्हें सर वाल्टर स्कॉट के दो उपन्यास- "आइवेन्हो" और "टेलिस्मैन" पढ़ने को मिले। इसने उनकी इच्छा-गति की दिशा को निश्चित कर दिया-- "अच्छी तैयारी के बाद ऐतिहासिक उपन्यास लिखूँगा।" उनके मन में यह धारण बैठ गई कि इतिहास सम्बन्धी भूगोल का निरीक्षण किये बिना ऐतिहासिक उपन्यास नहीं लिखना चाहिए। यह घटना सन् 1905 की है। वर्मा जी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "गढ़कुंडार" सन् 1927 ई॰ में प्रकाश में आया। बीच का समय तैयारी में गुजर गया। उन्हें सच्ची बातें लिखनी थी अत: उसके लिए उन्हें काफ़ी परिश्रम करना पड़ा। इस बीच (सन् 1905 - 1926 ई॰तक) उनका नाटकों, निबन्धों और कहानियों केलिखने का क्रम जारी रहा। इन दोनों वर्षों (सन् 1905-1927 ई) का वर्मा जी के साहित्यिक जीवन में बड़ा महत्व है।

सन् 1927 में उनके चार उपन्यास - तीन सामाजिक ﴾लगन, संगम और प्रत्यागत﴿ और एक ऐतिहासिक ﴾गढ़कुंडार﴿ प्रकाश में आये। इसके बाद सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखने का जो तांता उनके जीवन में बंधा वह अन्त तक नहीं टूटा। नाटकों, कहानियों और निबन्धों को लिखने का भी इस बीच जारी रहा। सर वाल्टर स्कॉट से उन्हें ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का क्रम भी इस बीच जारी रहा। सर वाल्टर स्कॉट से उन्हें ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली। परन्तु उन्होंने उनके उपन्यासों के शिल्पादि की हू-ब-हू नकल नहीं की। उन्होंने स्वयं लिखा है -"मैं स्कॉट के दोनों से बचना चाहता था। लम्बे - लम्बे वर्णन, केवल राजाओं और सामन्तों के सद्गुणों का केन्द्र मानना और बनाना छोटी या नीची श्रेणी के जन की उपेक्षा"।﴾16﴿

तात्पर्य यह कि इतिहास के प्रति उनकी रुचि जगी। विदेशी इतिहासकारों ने और ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का भाव-विचार उत्पन्न किया। , परिणामत: वे पूर्णरूपेण ऐतिहासिक उपन्यासकार बन गये, अपने परिश्रम सच्ची लगन और धुन के बल से। उन्होंने जिस-जिस क्षेत्र को अपने उपन्यासों के लिए ग्रहण किया है उस क्षेत्र में जाकर और वहाँ कुछ दिनों निवास कर वहाँ का गहरा अध्ययन किया- कुछ स्वयं देखा है, कुछ दूसरों से सुना है। उसके कण-कण से परिचय प्राप्त कर ही उन्होंने उसका उपयोग अपने उपन्यासों में किया है।

वर्मा जी केवल ऐतिहासिक उपन्यासकार ही नहीं है, सामाजिक उपन्यासकार नाटककार, निबन्धकार, कहानीकार भी हैं। लेकिन प्रसिद्ध उन्हें ऐतिहासिक उपन्यासों की बदौलत ही मिली है। अपने इस प्रकार के उपन्यासों को उन्होंने वाल्टर स्कॉट के दोषों से बचाने का भरसक प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

उनकी कृतियाँ हिन्दी साहित्य भण्डार की अमूल्य निधि है। वर्मा जी को, उनकी कृतियों पर, भारत - सरकार राज्य (शिक्षा मंत्रालय), उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश राज्य के साहित्य पुरस्कार तथा हरजीमल डालमियाँ साहित्यकार संसद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी (उत्तर प्रदेश) और नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सर्वोत्तम पुरस्कार के साथ - साथ सोवियत नेहरू पुरस्कार भी भेंट किये गये हैं। उन्हें "मृगनयनी" कृति पर उ सबसे अधिक पुरस्कार मिले हैं --
श्री हरजीमल डालमियाँ पुरस्कार, साहित्यकार संसद (प्रयाग) का श्री साहू जगदीश प्रसाद पुरस्कार, उत्तर प्रदेश सरकार का साहित्य पुरस्कार, मध्य भारत सरकार का साहित्य कला सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार, नागरी प्रचारणी सभा का श्री महावीर प्रसाद स्वर्ण पद आदि।

वर्मा जी की साहित्यिक सेवाओं के लिए काशी विश्व विद्यालय ने उन्हें डी·लिट्·तथा भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया है।

निष्कर्ष:---

अपने जीवनकाल में वर्मा जी को अनेक साहित्यिकों, अनेक शिक्षा-संस्थाओं, अनेक पत्र - पत्रिकाओं से सम्बन्ध स्थापित करने का मौका मिला था। अपने समय के लगभग सभी साहित्यकों से किसी - न - किसी बहाने उनका मन्नन द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, सत्यनारायण कविरत्न आदि से। हिन्दी की सभी सोसाइटियों में भाग लेने, वार्षिकोत्सवों में सम्मिलित होने से उनकी परिचय सीमा परिधि काफी विस्तृत हो गयी। यह उनके साहित्यानुराग का ही स्पष्ट प्रमाण है कि अपने जीवनकाल में उन्होंने किसी भी परिषद् के निमंत्रण को अस्वीकार नहीं किया। साहित्यिकों की संगति और सम्पर्क से उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होती थी। घृणा उन्हें अपने जीवन में यदि किसी से थी तो किसी की कृति की भूमिका लिखने से। इस कार्य से वे बेहद घबराते और कतराते थे।

आद्यन्त उनका जीवन व्यस्त ही रहा- कभी शिकार खेलने में, कभी ऐतिहासिक महत्व के स्थानों का भ्रमण करने में, कभी झीलें, नदियों, पहाड़ों को घूम - घूम कर देखने में कभी सभी सोसाइटियों में सम्मिलित होने में कभी प्राकृतिक सुषमा के निरीक्षण में, कभी खेती-बागवानी के शौर के चक्कर में, कभी देश - सेवा, जन - सेवा, समाज - सेवा के कार्य - संपादन में, कभी चुनाव दंगल में,कभी वकालत में,

कभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैनशीप का कर्तव्य भार निबाहने में, कभी जिला को ऑपरेटिव बैंक के प्रबन्ध संचालक के दायित्व निर्वाह में तो कभी पुस्तकों में अध्ययन, प्रणयन आदि में।

उनके जीवन के मुख्य उद्देश्य दो ही थे - वकालत करना और देश-सेवा करना। उसके लिए आवश्यकता थी शारीरिक और मानसिक बलवृद्धि की। दोनों के लिए वे आद्यन्त प्रयत्नशील रहे और उन्हीं की बदौलत उन्हें अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूरी सफलता मिली।

जीवन को इतने अधिक क्षेत्रों यथा कृषि, शिकार, भ्रमण, संघर्ष, वकालत, समाज - सेवा, पुस्तक - अध्ययन आदि में फैला देने की वजह से उसका जीवन अनुभव का भंडार ही बन गया था। उपरोक्त सभी क्षेत्रों से उन्हें महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मिली थीं। उनकी अनुभूति सच्ची है - कुछ आँखों देखी, कुछ आप बीती, कुछ ल जग बीती। अपने परिश्रम से प्राप्त ज्ञानानुभवों को उन्होंने अपने तक ही सीमित नहीं रखा है वरन् उपयोग अपनी सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियों - नाटकों, कहानियों, उपन्यासों आदि में किया है। तात्पर्य यह है कि उन्हें अनुभव प्राप्ति (ज्ञानार्जन) और अभिव्यक्ति की ललक दोनों का सामंजस्य उनके जीवन की प्रमुख विशेषता है। ज्ञानार्जन से उनका मन कभी भरा नहीं, लिखने से उनकी लेखनी कभी थकी नहीं। उनकी झोली बराबर अनुभवों से भरी रही, उनकी लेखनी बराबर कागज़ के सादे पन्नों पर थिरकती रही।

सजीवता, जिन्दादिली और प्रफुल्लता आद्यन्त उनके जीवने में बनी रही परिणामत: 77 वर्ष की आयु में भी वे स्वयं को युवा ही समझते रहे। उन्हें अकबर का निम्न शेर बराबर ताजा किये रहता था-

"जईफी जिन्दगी में वक्त की बेजा खानी है,

अगर जिन्दादिली है तो बुढ़ापा भी जवानी है।"§18§

उन्होंने अपने जीवन काल में अनेक नाटकों, कहानियों और सामाजिक - ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन किया। लेकिन उन्होंने अधिक रुचि दिखाई ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन में। कारण इन्हें लिखने में उनके हृदय में बचपन से चली आ रही साध पूरी होती थी। समय की दौड़ में भी वे कभी पीछे नहीं रहे उन्होंने वर्तमान की उपेक्षा कभी नहीं की। क्योंकि इससे उनका देश - सेवा का उद्देश्य पूरा होता था।

कुल मिलाकर वर्मा जी पर संस्कार, परिवेश, अध्ययन आदि का प्रभाव गहरा है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में परम्परा के प्रति आस्था आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय, राजनीतिक और सामाजिक चेतना के साथ - साथ वैज्ञानिकता के प्रश्न, सृष्टि के प्राणिमात्र में प्रेम - भावना के प्रसार तथा लोक - कल्याण की कामना की प्रधानता है। युग-बोध के साथ ही उनकी कृतियों में सनातन भारतीय चिन्तन धारा में परिपोषित मानवतावाद, सर्वभूत हितवाद

और ईश्वरीय सत्ता की विभूति के दर्शन होते हैं। उनके उपन्यासों का एक निश्चित आदर्श है -- प्रवाहमान भारतीय परम्परा के भाव एवं विचार पुष्पों द्वारा उपन्यासों का श्रृंगार और उसकी आत्मा में सौरभ का उच्छ्वास भरना। परम्परा- विच्छिन्न साहित्य - सृजन में उनकी आस्था नहीं है। गहरी आस्था ,युग-चेतना के प्रति प्रगाढ़ अनुराग और लोक - मंगल की भावना का प्रतिफलन एवं संवेदनशील चित्रण उनके उपन्यास - सृजन का प्रधान उद्देश्य है। निस्संदेह अधिभौतिक और आध्यात्मिक व्यक्ति और समाज, हृदय और बुद्धि तथा पुरातनता और युग - बोध के द्वन्द्व के दोनों कूलों से टकराते हुए भी उनके साहित्य की यह महत्तम उपलब्धि है। अपने उत्कृष्ट कोटि के उपन्यासों की बदौलत ही वे न केवल प्रतिभासम्पन्न उपन्यासकार हैं। अपितु हिन्दी - उपन्यास साहित्य की एक प्रबल शक्ति के रूप में समादृत है।

********-***

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1· अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ· 37·

2· वृन्दासनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य - मोहिन सहाय पृ· 63·

3· अपनी कहानी परिचय - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ· 4·

4· - वही - पृ· 1·

5· आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना - विजय मोहन सिंह - पृ· 13·

6· उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा - शशि भूषण सिंह पृ· 97·

7· वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व - पद्म सिंह शर्मा - पृ· 137·

8· वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व - पद्म सिंह शर्मा - पृ· 116·

9· वृन्दावनलाल वर्मा - साहित्य और समीक्षा - सियाराम प्रसाद - पृ· 33·

10· अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ· 69

11· - वही - पृ· 29

12· - वही - पृ· 48

13· ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार - गोपीनाथ तिवारी - पृ· 48

14· वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा - सियाराम प्रसाद - पृ· 119·

15· अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ· 220

16· - वही - पृ· 33·

17· - वही - पृ· 300·

तृतीय अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण और कथावस्तु का अनुशीलन

3. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण और कथावस्तु का अनुशीलन

3.1. वर्मा जी के उपन्यासों का वर्गीकरण

3.2. स्वतंत्रता के पूर्व उपन्यास

- 3.2.1. गढ़कुण्डार
- 3.2.2. विराटा की पद्मिनी
- 3.2.3. मुसाहिबजू
- 3.2.4. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई
- 3.2.5. कचनार

3.3. स्वतंत्रता के पश्चात उपन्यास

- 3.3.1. माधवजी सिंधिया
- 3.3.2. टूटे काँटे
- 3.3.3. मृगनयनी
- 3.3.4. अहिल्याबाई
- 3.3.5. भुवन विक्रम
- 3.3.6. महारानी दुर्गावती
- 3.3.7. रामगढ़ की रानी
- 3.3.8. सोती आग

तृतीय अध्याय

****

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण

****

और

कथावस्तु का अनुशीलन

****

वृन्दावनलाल वर्मा केवल उपन्यासकार ही नहीं नाटककार, निबन्धकार, कहानीकार आदि भी हैं। उनके साहित्य जीवन का प्रारम्भ नाटक - रचना से ही हुआ है। साहित्य की विधा उपन्यास के क्षेत्र में उनका पदार्पण सन् 1927 में उनकी पहली ऐतिहासिक उपन्यास कृति "गढ़- कुंडार" के प्रकाशन से हुआ। इसके बाद वे सामाजिक - ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यास बराबर लिखते गयें। उनका नाटकों, कहानियों आदि को लिखने का क्रम भी उपन्यासों के साथ - साथ जारी रहा। सन् 1927 ॄप्रथम औपन्यासिक कृति के प्रकाशन-कालॄ से आज तक वर्मा जी के कुल 24 उपन्यास प्रकाश में आए हैं।

कथास्रोतों के आधार पर उपन्यासों के यद्यपि अनेक भेद - सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक , हो सकते हैं। फिर भी वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से, उनके वास्तव में दो ही भेद हो सकते है- सामाजिक और ऐतिहासिक।

ऐतिहासिक उपन्यासों में चूँकि उपन्यासकार अतीतकाल (इतिहास) के पात्रों, घटनाओं और वातावरण का चित्र प्रस्तुत करता है, उनका कथानक उसी अतीत पर सर्वरूपेण आधृत होता है, अतः पाठक को ऐसे उपन्यासों की पहचान में भ्रम नहीं हो सकता । लेकिन दूसरे प्रकार के उपन्यासों तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक पहचान में पाठक को इस प्रकार सहूलियत नहीं मिलने के कारण धर्म, राजनीति और समाज के संबंध इतने घनिष्ठ, व्यापक, गंभीर और पुराने हैं कि उन्हें एक - दूसरे से सर्वथा पृथक कर देखा ही नहीं जा सकता है न तो धर्म और राजनीति से अलग रहकर। धर्म और राजनीति दोनों समाज की विस्तृत परिधि के अन्तर्गत ही आ जाते है। उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है - ऐसी स्थिति में उसमें वर्णित मानव चरित्र में पूर्णता तभी आ सकती है, जब उसका सम्बन्ध समाज के साथ - साथ देश की राजनीति और धर्म से भी दिखाया जाय। इन सबके सहयोग से ही उसका जीवन विकसित, पुष्पित एवं फलित होता है। जीवनकाल में उसका सम्बन्ध केवल समाज से ही नहीं, धर्म और राजनीति से भी होता है।

ऐसे तो संकुचित अर्थ में सामाजिक प्रथाओं और समस्याओं से सम्बन्ध रखनेवाले उपन्यास ही सामाजिक कहे जाते हैं पर समाज परिवार के साथ - साथ ग्राम, प्रदेश एवं देश की राजनीतिक समस्याएँ, ग्रामीण नागरिक जीवन की नाना समस्याएँ, आर्थिक परिस्थिति, श्रमिक-

कृषक-धनी वर्ग के विभिन्न चित्र राजनीतिक विचारधाराएँ, दार्शनिक सिद्धान्त सब इसके अन्तर्गत आ जाते है और बीच-बीच में धार्मिक प्रश्न एवं अनेकानेक अन्य समस्याएँ भी इसमें विद्यमान होती है। वर्मा जी ने स्वयं पाठकों के लिए अपने सभी उपन्यासों में उनके सामाजिक अथवा ऐतिहासिक हाने का स्पष्ट संकेत कर दिया है जिसमें उन्हें अलग-अलग सामाजिक और ऐतिहासिक कोटियों में बाँटने में असुविधा नहीं होती है साथ ही इस बात का स्पष्ट प्रमाण भी मिल जाता है कि उनके उपन्यास या तो सामाजिक हैं, या ऐतिहासिक ।

अध्ययन की सुविधा के लिए वर्मा जी के उपन्यासों को दो काल खण्डों में विभाजित किया गया है ।

1. स्वतंत्रता के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास
2. स्वतंत्रता के पश्चात ऐतिहासिक उपन्यास ।

3.2 स्वतंत्रता के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास :-

मानवीय देन पूर्ण विच्छिन्न तत्व नहीं, नैतिक सांस्कृतिक, सांस्कारिक, परिवेश जन्य कारणों को श्रृंखलाबद्ध इतिहास है जिनके सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा समग्र संदर्भों के आयाम खुलकर सम्मुख आ सकते हैं और इस व्यापक मूल्य परिणाम से अवगत होने के लिए यह आवश्यक है कि हम ऐतिहासिक तथ्यों का सर्वेक्षण करें । स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के सही स्वरूप से परिचित होने के लिए 1947 के पूर्व के उपन्यासों के इतिहास से भी आलोक संग्रहीत करना होगा । 1947 के पूर्व उपन्यासों की कैसी दिशा थी, उनमें कौन सी अनिवार्य क्रियाएँ संचालित थी, उनके विकास की सीमा क्या थी और उनमें किन व्यापक बोज स्वरूप प्रवृत्तियाँ उद्बुद्ध हो गई थी इस पर संक्षिप्त दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक है ।

पाश्चात्य प्रभाव, नवीन दृष्टि बोध और भारत में विदेशी शासन स्थापित होने के कारण वहाँ के गद्य साहित्य का दर्शन भारतीय जनता का हुआ और हिन्दी गद्य का सृजन होने लगा । छापे के कारखाने खुलने से इस दिशा में विशेष सहायता मिली । अंग्रेजों के भारत पर आधिपत्य होने के पश्चात् यह अनिवार्य था कि वे राजकीय

कार्यों में भारतीय सहयोग को वांछा करते उन्होंने इसीलिये उपन्यास स्वरूप को महत्व प्रदान किया। स्वतंत्रता के पूर्व उपन्यासों में मनोविज्ञान भी उतना विस्तृत रूप में तथा नये आयामों में नहीं मिलता था। स्वतंत्रता के पूर्व के उपन्यासों का जीवन मुक्त सांस से क्रियाहीन रहा। उनके स्वर में भारत की कुचली हुई आत्मा का दर्शन होता था। स्वतंत्रता की अभिलाषा मनुष्य (प्राणियों) का जन्म सिद्ध अधिकार है। यह स्वाभाविक आकांक्षा है। अंग्रेजों ने मुगलों को राज्य च्युत कर सम्पूर्ण भारत पर 18 वीं शताब्दी से आधिपत्य कर लिया था। भारतीय जनता ने कई रूपों में संग्राम कर अपने खोये हुए अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। 1947 के पूर्व तक के सभी भारतीय स्वाधीनता संग्राम असफल रहे और इसी लिए स्वतंत्रता के पूर्व के उपन्यासों में कुंठा, निराशा का आधिक्य है।

वृन्दावनलाल वर्मा किसी भी ऐतिहासिक रचना के सृजन के पूर्व उक्त रचना से संबंधित स्थानों का, भौगोलिक स्थितियों का स्वयं गहराई से निरीक्षण करते हैं तथा ऐतिहासिक घटना क्रम के लिये अनेक इतिहासों का अध्ययन करते हैं। वर्मा जी स्वयं अपनी ऐतिहासिक कृतियों की भूमिकाओं तथा यत्रतत्र लेखों में इस सत्य पर

प्रकाश डाल चुके है । इसके फलस्वरूप कृतियों के सृजन में अधिक समय अवश्य लगता है, परन्तु उसमें उक्त युग को घटनाओं और पात्रों तथा दृश्यों को आत्माएँ उभर आती हैं । यह उनको बहुत बड़ी उपलब्धि का मूल कारण है ।

स्वतंत्रता के पूर्व कुछ उपन्यासकार :-

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या न्यून है । स्वतंत्रता के पूर्व किशोरीलाल गोस्वामी और प्रसाद का नाम उल्लेख करने के योग्य है । परन्तु किशोरी लाल गोस्वामीके ऐतिहासिक उपन्यासो में ऐतिहासिकता की कमी है, ऐतिहासिक वातावरण का भी अत्यधिक अभाव प्रतीत होता है ।

प्रसाद ने " इरावती " का सृजन आरम्भ तो किया परन्तु, वह कृति अधूरी हो रह गयी । इसमें उन्होंने ब्राह्मण और बौध्द धर्म के ऐतिहासिक संघर्ष को प्रस्तुत किया है । यशपाल कृत " दिव्या " भगवतीचरण वर्मा कृत " पतन " आदि कृतियाँ 1944 के आसपास निकली । वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों का आरम्भ स्वतंत्रता के पूर्व किया । " गढ़ कुण्डार ", " विराटा की पद्मिनी ", " मुसाहिबजू ", " झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई " आदि की रचना की । अब हम स्वतंत्रता के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास की कथावस्तु का अनुशीलन करेंगे ।

2. गढ़कुण्डार :

इस ऐतिहासिक उपन्यास का प्रधान विषय है युद्ध और प्रेम। इसमें तीन प्रेम कथायें हैं।)

(क) नागदेव के हेमवती से असफल प्रेम और खंगार-विनाश की कथा।

(ख) अग्निदत्त के मानवती से असफल प्रेम, अपमान और प्रतिशोध की कथा।

(ग) तारा और दिवाकर के नैसर्गिक सफल प्रेम की कथा है। लेकिन प्रधानता नागदेव के प्रेम और खंगार - विनाश की है। कारण इसी की बदौलत बुंदेल और खंगारों के बीच वैर-विरोध उत्पन्न हुआ और उसकी परिणति खंगारों का पतन, विनाश में हुई।

क. नागदेव के हेमवती से असफल प्रेम, खंगार-विनाश की कथा:-

गढ़कुंडार के अंतिम स्वामी खंगार हुरमत सिंह का लड़का नागदेव अपने बाल सखा अग्निदत्त के साथ शिकार की टोह लेते हुए, घूमते-फिरते हरी सिंह चंदेल की भरतपुरी गढ़ी में जा ठहरता है। वहीं उसकी भेंट . माहोनी के सोहनपाल बुंदेल से जो अपने भाई वीरपाल द्वारा प्रवंचित होकर राज्य की पुनप्राप्ति हेतु कुण्डार से सहायता प्राप्ति की आशा ले अपनी स्त्री, पुत्र सहजेन्द्र तथा कुंआरी कन्या (पुत्री) हेमवती के अतिरिक्त मंत्री धीरप्रधान तथा उसके पुत्र दिवाकर के साथ वहाँ ठहरा था। उसी रात गढ़ी पर मुसलमानों का आक्रमण होता है। नागदेव गढ़ी की रक्षा के प्रयत्न में, अपनी वीरता

और युद्ध - कोशल का परिचय देता हुआ, घायल होता है। हेमवती उसकी परिचर्या करती है। हेमवती के प्रति पहले से ही आसक्त नागदेव को इस सहानुभूतिपूर्ण परिचर्या से न केवल वृद्धि - प्रोत्साहन मिलता है अपितु उसका विश्वास प्राप्त होने का भ्रम भी होता है। फलत: वह अर्जुन के हाथों एक प्रणय - पत्र हेमवती के पास भेजता है जिसे स्वामिभक्त अर्जुन से प्राप्त कर हरीसिंह हुरमत सिं (नागदेव के पिता) के पास भेज देते हैं।

भरतपुरा गढ़ी के मुसलमान आक्रामकों में से पकड़कर बन्दी बनाये गये दो जनों में से एक अलीबेग कुंडार भेजे जाते समय भाग निकलता है और दूसरे इब्नकरीम को नागदेव कुण्डार की सेवा में रख लेता है। अलीबेग जब पुन: कुछ मुसलमानों के साथ आक्रमण करता है, वह इब्नकरीम के हाथों मारा जाता है। नागदेव से सहायता - प्राप्ति का विश्वास प्राप्त कर सोहनपाल स्वयं तो अपने सहायकों सहित सारौल में डेरा डालता है पर अपनी कन्या, पुत्रादि को कुंडार में विष्णुदत्त के मकान के पास के एक मकान में ठहराया है। हुरमत सिंह सोहनपाल को इस शर्त पर सहायता देना चाहते हैं, कि वे अपनी कन्या हेमवती का विवाह नागदेव के साथ कर दें। इसे जान-सुन बुंदेलों के हृदय में रोषाग्नि जाग उठती है। जात्याभिमानवश वे खंगारों के साथ खान - पान का संबंध रखने में भी अपना अपमान समझते हैं। इस बीच नागदेव जब स्वयं हेमवती से मिल प्रणय - याचना करता है,

जातीय श्रेष्ठता के गर्व में डूबी वह उसका तिरस्कार करती है। उसके आत्मीयजन [पिता आदि] भी हुरमत सिंह के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं। निराश नागदेव एक रात हेमवती के हरण का षडयन्त्र रचता है पर असफल होता है। प्राण और प्रतिष्ठा की रक्षा के हेतु सोहनलाल कुंडार का त्याग कर पवार सामंत पुण्यपाल के अतिथि बनते हैं। इस बीच नागदेव से अपमानित होकर अग्निदत्त भी बुंदेलों से वहीं आ मिलता है। वे सब कुंडार से अपमान प्रतिशोधार्थ, बल से पूरा पड़ता वे देख ,छल का आश्रय लेते हैं और हुरमत सिंह के पास नागदेव से हेमवती के विवाह का प्रस्ताव धीर के हाथों भेजते हैं। धीर - पुत्र दिवाकर बुंदेले की इस छल-नीति की भर्त्सना करता है अत: वह देवरागढ़ी के एक तलघरे में बन्द कर दिया जाता है। हुरमत सिंह बुंदेले के प्रस्थान को स्वीकार करते हैं। विवाह की रात खंगार [बराती वाले] अपनी रीति के अनुसार डटकर सुरापान करते हैं और अचेतप्राय हो जाते है। प्रतिशोध के लिए उपयुक्त अवसर देख बुंदेल [अराती] आक्रमण कर खंगारों का विनाश करने पर तुल जाते है। अर्द्धचेतन मदांध खंगार उनका डटकर मुकाबला करते हैं। परिणामत: धीर प्रधान राजधर हुरमत सिंह, हरीचन्देल, इब्नकरीम, नागदेव आदि मारे जाते है। इसी समय अग्निदत्त को कुसुम पौधों से आच्छादित एक खेत में प्रसव पीड़ा से कराहती मानवती मिलती है। वह उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर होता है। मानवती उसी खेत में एक पुत्र को

जन्म देती है। लेकिन इसी समय वहाँ पहुँच पुण्यपाल अग्निदत्त की हत्या कर देता है। अर्जुन हरीचन्देल की लाश को उठाकर अंधेर में गायब हो जाता है। कुंडार पर सोहनपाल बुंदेला का अधिकार हो जाता है। हेमवती करेरा के पंवार सरदार पुण्यपाल के साथ ब्याही जाती है। तारा बलछरे में बन्द दिवाकर को बन्धन मुक्त करती है और दोनों संयोग - साधना करने के लिए जंगल की ओर प्रस्थान करते हैं।

ख·दूसरी कथा है -अग्निदत्त और मानवती के प्रणय की :--

कुंडार राज्य के शुभचिंतक, परामर्शदाता एवं ऋणदाता पांडे विष्णुदत्त का पुत्र और नागदेव का बाल-सखा अग्निदत्त मानवती (नागदेव की बहन) से प्रेम करता है। मानवती का विवाह कुंडार के मंत्री गोपीचन्द के पुत्र राजधर से निश्चित होता है। विवाह की रात अग्निदत्त अपनी बहन् तारा का वेश बनाकर मानवती को भगाने की चेष्टा कराता है, पर उसकी (मानवती की) मानसिक दुर्बलता, अस्थिरता, किंकर्तव्यविमूढता और भयादि के कारण असफल होता है। वह नागदेव द्वारा पहचान लिया जाता है। नागदेव से अपमानित होकर वह कुंडार का त्याग करता है और सोहनपाल बुंदेले से जा मिलता है। अपमानित, निराशा, प्रतिशोधाग्नि में जलता वह अपनी जन्मभूमि कुंडार और अपने अन्यतम मित्र नागदेव के विनाशार्थ

वैर - प्रतिशोधार्थ कुंडार विनाश के लिये कटिबद्ध बुंदेलों का सहायक बन जाता है। अन्त में वह एक खेत में पड़ी प्रसूता मानवती की रक्षा के हेतु पागलों की भाँति लड़ते हुए पुण्यपाल पवार के हाथों मारा जाता है। सहजेन्द्र कुसुम खेत में पड़े बालक और मानवती की रक्षा करता है और प्रतिष्ठा के साथ जहाँ मानवती जाना चाहती है, कालान्तर में पहुँचा देता है।

ग. तीसरी कथा- दिवाकर और तारा के प्रेम की है :---

दिवाकर बुंदेल सोहनपाल के कायस्थ मंत्री धीर प्रधान का पुत्र है और तारा अग्निदत्त की बहन। दिवाकर और सोहनपाल के पुत्र सहजेन्द्र में अनन्य मैत्री थी अत: वह भी उसके साथ [सोहनपाल आदि के साथ] कुंडार पहुँचता है। वहाँ उसका साक्षात्कार तारा से होता है। दोनों एक - दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। लेकिन दोनों की जाति - भिन्नता के कारण दिवाकर का वर्णाश्रम धर्म - भीरु हृदय इस समस्या को लेकर अन्तर्द्वन्द्व में उलझ जाता है। सोहनपाल की पुत्री हेमवती की रक्षा के प्रयत्न में घायल होकर वह सोहनपाल आदि के साथ कुंडार का त्याग करता है।

नागदेव और हेमवती के छल - छद्म से भरे विवाह - प्रस्ताव को भेजते समय वह [दिवाकर] बुंदेले के इस षडयन्त्र की तीव्र आलोचना करता है और परिणाम स्वरूप उनके द्वारा देवरा चौकी के एक तलछरे में कैद कर दिया जाता है। तारा कुंडार से आकर उसे उस तलछरे से

मुक्त करती है और दोनों जाति - पाँति के भेद - भाव से भरे इस कंटकाकीर्ण संसार को त्याग कर सुख - शान्ति की खोज में योग - साधना करने जंगल की ओर चले जाते हैं।

यह हिन्दी का सर्वप्रथम सफल ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें तेरहवीं शती के अन्तिम भाग के बुंदेलखण्ड की राजनीतिक अवस्था, तत्कालीन राजनीतिक फूट और कलह की झाँकी प्रस्तुत की गई है। इसमें खंगारों और बुंदेलों की अहम्मन्यता, खंगारों की नीचता और बुंदेलों के विश्वासघात की कहानी वर्णित है। दोनों पक्षों के कई पात्रों के सन्निवेश से इसमें पात्रों की अधिकता स्वाभाविक हो गई है। इस उपन्यास में आए पात्रों में नागदेव,हुरमत सिंह,सोहनपाल, सहजेन्द्र ,विष्णुदत्त पांडेय धीर -प्रधान, पुण्यपाल, हेमवती आदि ऐतिहासिक पात्र हैं और तारा, दिवाकर, हरीसिंह चंदेल , अग्निदत्त, इब्नकरीम, अत्तीवेग इत्यादि पात्र कल्पित। "हेमवती का नाम राज्य के भाट के कथानुसार रूपकुमारी था।"३1३

उपन्यास में जिन स्थलों का वर्णन उपन्यासकार ने किया है, वे जंगलों में अस्त व्यस्त अवस्था में पड़े हुए हैं और उन्हें इन स्थलों को देखने में सुल्तानपुरा के निवासी दुर्जन कुम्हारा से सहायता मिली है। "इस उपन्यास में आया अर्जुन कुम्हार इसी दुर्जन का प्रतिबिम्ब है।"३2३

मानवती भी इतिहास - सम्मत पात्र है। खंगार - विनाश के बाद उसका नवजात शिशु बच गया था। हरीचन्देल लेखक के मित्र फूलचन्द पुरोहित का प्रतिबिम्ब है और दिवाकर कुछ हद तक स्वयं लेखक का।"§3§

"इब्नकरीम लेखक के शिकारी मित्र चिरगाँव के करामत मियाँ का प्रतिबिम्ब है।"§4§

"उपन्यास की मुख्य घटना एक ऐतिहासिक सत्य है परन्तु खंगारों के विनाश के कारणों में थोड़ा - सा मतभेद है।"§5§ मतभेदों के बीच से वर्मा जी ने निश्चित और संभावित सत्य को ग्रहण कर उपन्यास के कथानक की सत्य इमारत खड़ी की है।

समीक्षा :--

उपन्यास का कथानक मुख्य रूप से प्रेम और युद्ध पर अवलम्बित है। मुख्य कथा के अतिरिक्त आई दोनों प्रासंगिक प्रणय कथाएँ कल्पना प्रसूत है। सम्पूर्ण कथानक में प्रेमकथा की त्रिवेणी बहाई गई है। उपन्यास में खंगारों के नाश का रोचक वर्णन पढ़ पाठक के मन में आगे ही घटना जानने के लिए उत्सुकता बनी रहती है। मूलरूप में सम्पूर्ण कथानक में बुंदेले के जातीय गौरव, साहस, वीरता आदि का स्वाभाविक वर्णन हुआ है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि का बड़ा ही महत्व हुआ करता है। यही उपन्यासकार की सफलता की कसौटी है। वर्मा जी ऐतिहासिक वातावरण के कुशल शिल्पी है। उन्होंने इस उपन्यास में वातावरण के निर्माण के लिए दृश्य - संविधान, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन का चित्र तथा बुंदेलखंडी भाषा का प्रयोग किया है। दृश्य - संविधान द्वारा उन्होंने कथानक से संबंद्ध देश का भौगोलिक साक्षात्कार कराया है। इस उपन्यास में मध्यकाल का राजपूती शौर्य, पारस्परिक फूट के कारण विपर्यस्त राजपूत वैभव, जातीय अहम्मन्यता तथा नैतिक पतन की चरम सीमा का चित्र देखा जा सकता है।

ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त मुख्य कथा तथा प्रमुख पात्रों के इतिहास सम्मत होने की वजह से इस उपन्यास को हम शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि के अन्तर्गत रख सकते हैं।

3·2·2· विराटा की पद्मिनी :---

इस उपन्यास की मुख्य कथा है - पालर ग्राम के एक दांगी परिवार में उत्पन्न अद्भुत, अलौकिक देवोपम व्यक्तित्व - सम्पन्न कुमुद और दिलीपनगर के राजा नायक सिंह के दासी - पुत्र युवक कुंजर सिंह के प्रणय की कहानी। उपन्यास की कथा इस प्रकार है---

दिलीपनगर पालर नामक ग्राम में एक दाँगी के घर उत्पन्न कुमुद नाम की एक अनुपम लावण्यमयी कन्या के रूप, गुण, शील, और स्वभाव से प्रभावित गाँववाले उसे दुर्गा का अवतार होने की न केवल घोषणा करते हैं अपितु उसे अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्ति भेंट स्वरूप अर्पित करते हैं। उसके दर्शनार्थ दूर - दूर के गाँवों के लोग आने - जाने लगते हैं। देवी के अवतार ग्रहण करने की बात पालर के समीप पहूज के किनारे पड़ाव डाले दिलीपनगर के राजा नायक-सिंह के कानों तक पहुंचती है। परिणामत: कामुक राजा की सवारी पालर झील के किनारे आ टिकती है। कुंजर सिंह भी एक दिन अपने राज्य के सेनापति लोचन सिंह के साथ उसके दर्शनार्थ देवी के मन्दिर में आता है। दोनों कुमुद और कुंजर का मन्दिर में साक्षात्कार होता है, दोनों एक - दूसरे से प्रभावित होते हैं, दोनों के हृदय में एक - दूसरे के लिए स्थान बन जाता है। उसी समय मन्दिर के बाहर बैठे हुए कालपी के नवाब अलीम मर्दान के दो मुसलमान सिपाहियों के असभ्यतापूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध, सहसा प्रवर्ती सुलभ कोपी लोचन सिंह की उनके साथ मारपीट हो जाती है। दोनों मुसलमान सिपाही भाग जाते हैं। छोटी - सी घटना से दिलीपनगर राज्य और कालपी के नवाब अलीमर्दान के बीच संघर्ष की शुरूआत होती है। अलीमर्दान के दल - बल सहित चढ़ आने पर नायक सिंह स्वयं उसका मुकाबला करने जाते हैं। युद्ध में उनकी रक्षा देवी सिंह नाम के एक बुंदेला,

जो पालर विवाह करने बरातियों के साथ सज-धज कर जा रहा था, से होती है। युद्ध में उलझ जाने के कारण देवी सिंह की शादी नहीं हो पाती है और बारात वहीं से छिन्न - भिन्न होकर लौट जाती है। देवी सिंह इस घटना से राजा का स्नेहपात्र बनता है, और वह राजा के साथ ही दिलीपनगर रहने लगता है। कुमुद के सौंदर्य की प्रशंसा अलीमर्दान भी सुनता है और उसे हस्तगत करने की घात में लग जाता है। पालर में युद्ध और भय के बादल मंडराने लगते हैं। अलीमर्दान के आक्रमणों की भयाशंका से त्राण पाने हेतु कुमुद के पिता नरपत सिंह दाँगी राजा सबदल सिंह के विराटा नदी के बीचों - बीच स्थित पहाड़ी तापू में निर्मित एक मन्दिर में कुमुद के साथ शरण लेते हैं। यहाँ भी कुमुद की पूजा-अर्चा एक देवी के रूप में प्रबल रूप से होने लगती है।

दिलीपनगर के चिर काल से अस्वस्थ, विलास - जर्जर, विक्षिप्त, राजा नायक सिंह के निधनोपरान्त उनके मंत्री जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र से राज्य उसके कृपा-पात्र देवी सिंह को मिलता है। सेनापति लोचन सिंह भी उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लेते हैं। राज-पद-वंचित, निराश कुंजरसिंह दिलीपनगर राज्य की प्राप्ति हेतु सहायता - प्राप्ति का उद्योग करता हुआ इधर-उधर घूमते - फिरते विराटा के मंदिर में जा पहुँचता है और कुमुद की रक्षा करने के ख्याल से वहीं रहने लगता है। धीरे - धीरे कुमुद और कुंजर के बीच घनिष्ठता बढ़ने लगती है

पर कुमुद अपने हृदय की कोमलता अथवा दुर्बलता कभी भी कुंजर पर प्रकट होने नहीं देती है। कुंजर को विराटा के राजा सबदल सिंह से भविष्य में सहायता का शिथिल वचन तथा मंदिर में बने रहने की स्वीकृति मिल जाती है।

कालपी के नवाब अलीमर्दान से राजा नायक सिंह के संघर्ष की शुरूआत हो ही गई थी, अत: देवी सिंह के राजसिंहासनारूढ़ होने पर दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध छिड़ता है। देवी सिंह उसे और आगे बढ़ाता है। इस युद्ध के अन्य कारणों में से एक कारण दासी - पुत्र कुंजर को राज्य नहीं मिलना भी है। राज्य नहीं मिलने से वह {कुंजर सिंह} विद्रोही हो जाता है। उसे नायक सिंह की छोटी रानी से सहायता मिलती है। छोटी रानी प्रच्छन्न रूप से, रामदयाल द्वारा अलीमर्दान के पास राखी भेज सहायता की याचना करती है। अलीमर्दान रानी की सहायता के लिए आता है। कुंजर सिंह सिंहगढ़ को जीत लेता है। लेकिन इस जीत में अलीमर्दान का हाथ होने की वजह से वह रुष्ट और कुपित हो जाता है। और कुंजरसिंह को भागकर विराटा में शरण लेनी पड़ती है।

पुन: दूसरा युद्ध होता है जिसमें अलीमर्दान, दिलीपनगर के राजा की छोटी और बड़ी रानी तथा रामनगर के राजा - तीनों की सम्मिलित शक्ति विराटा की ओर बढ़ती है। देवी सिंह विराटा

की सहायता के लिए आता है कारण वह कुमुद की रक्षा अलीमर्दान से करना पड़ता है। वह ‌§देवी सिंह§ रामनगर जीत भी लेता है लेकिन उसे समय पर विराटा की सहायता नहीं मिल पाती है। बल्कि उसे तो कुंजरसिंह की तोपों के प्रत्युत्तर में रामनगर की गढ़ी से विराटा पर अपनी तोपों से गोलों की वर्षा करनी पड़ती है। उधर अलीमर्दान भी कुमुद की प्राप्ति के लिए विराटा पर गोलों की वर्षा करता है और स्वयं सेना का एक दस्ता ले नदी पार कर विराटा के मंदिर पर धावा बोलता है। दूसरी ओर से देवीसिंह की सेना भी अलीमर्दान का प्रतिरोध करती हुई विराटा की ओर बढ़ती है। भ्रमवश देवी सिंह, अलीमर्दान और विराटा की शक्तियों का परस्पर संघर्ष छिड़ जाता है। अन्तिम समय जान विराटा के दाँगी जौहर करते हैं, लड़ते - लड़ते मरजाने की प्रतिज्ञा पर युद्ध में कूद पड़ते हैं। कुंजर भी समुद्र से अंतिम विदा लेने जाता है। कुमुद उससे दृढ़तापूर्वक यह कहती हुई कि "आप उस ओर से आएँ जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अंत में मिलेंगे।" अपने आँचल के छोर से जंगली फूलों की गुँथी हुई एक माला निकालकर कुंजर के गले में डाल देती है। कुंजर उसे §कुमुद को§ छाती से लगा लेता है लेकिन कुमुद उसे तुरन्त अलग करती हुई कहती है --"यह मेरा अक्षय भंडार लेकर जाओ। अब मेरे पास और कुछ नहीं।" उसकी आँखों में आँसू आ जाते है, जिन्हें वह निष्ठुरता पूर्वक पोंछ लेती है। एक ओर से कुंजर सिंह , कुमुद से

विदा ले युद्धभूमि की ओर बढ़ता है, दूसरी ओर से कुमुद बेतवा नदी की लहरों में जल समाधि लेने के लिये। कुंजरसिंह की मुठभेड़ देवी-सिंह से हो जाती है। अकेली कुमुद को बेतवा नदी की ओर बढ़ते देख अलीमर्दान उसकी ओर लपकता है, जिसे देख कुंजर शिथिल पड़ जाता है लेकिन दूसरे ही क्षण देवी सिंह की तलवार के वार से उसका सिर धड़ से अलग होकर दूर जा गिरता है। अलीमर्दान की पकड़ में आने से पहले ही कुमुद टालू चट्टान के छोर पर पहुँच --"उड़ गयें फुलवा रह गई बास" गाते हुए जलराशि की अनन्त गोद में जा समाती है। अलीमर्दान खड़ा सब कुछ देखता रह जाता है। इस दृश्य का उसके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह देवीसिंह से संधि कर लेता है। इस युद्ध में छोटी रानी भी मारी जाती है।

इस कुमुद और कुंजर की प्रेमकथा के अतिरिक्त इस उपन्यास में एक कथा और भी आई है और वह है पालर में कुमुद के पड़ोस में रहनेवाली परित्यक्ता गोमती की। गोमती का विवाह देवीसिंह से होने जा रहा था लेकिन बारात लेकर जाते समय मार्ग में देवीसिंह के राजा नायकसिंह की अलीमर्दान से रक्षा करने में उलझ जाने की वजह से यह विवाह नहीं हो गया। देवीसिंह के असाधारण शौर्य और राजभक्ति से प्रभावित राजा उसे दिलीपनगर ले जाते हैं। वह राजा का कृपापात्र बनकर उन्हीं के साथ रहने लग जाता है। पालर पर अलीमर्दान के आक्रमण की भयाशंका से भीत-त्रस्त गोमती भी कुमुद के

साथ विराटा के मंदिर में शरण लेती है। देवीसिंह के दिलीपनगर का राजा बनने का समाचार सुन उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है।

नायकसिंह की विद्रोहिणी छोटीरानी का अनुचर रामदयाल भी अलीमर्दान की कामपिपासा की पूर्ति हेतु कुमुद की खोज में विराटा के मंदिर में पहुँचता है। वह स्वयं देवीसिंह का विश्वस्त अनुचर बतला गोमती का न केवल सामीप्य बल्कि उसका स्नेह और विश्वास भी प्राप्त कर लेता है। गोमती आशा से पुलकित हो उठती है पर देवीसिंह से साक्षात्कार होने पर जब वह उसका तिरस्कार करता है वह अचेत हो जाती है। संतप्त गोमती को शांति प्रदान करने और उसे सुरक्षित रखने के विचार से कुमुद उसे अन्यत्र भेजने का विचार कर यह कार्य रामदयाल के ऊपर सौंपती है लेकिन काइयाँ रामदयाल उसे अन्यत्र न ले जाकर अलीमर्दान की छावनी में स्थित छोटी रानी के खेमें में ले जाता है। रास्ते में वह उस पर अपना प्रेम प्रकट करते हुए अपने जीवन में सुधार लाने की सच्ची प्रतिज्ञा करता है। भग्न-हृदया गोमती पर उसकी बातों का कुछ भी असर नहीं होता है। जीवन के प्रति अब उसमें कोई उत्साह और अनुराग नहीं रह जाता है। वह भी विराटा के युद्ध में मारी जाती है।

इन दो कथाओं के अतिरिक्त कालपी के नवाब अलीमर्दान, देवीसिंह और नायकसिंह की सहसा प्रवर्तिनी प्रचंड छोटी रानी की कथाएँ भी मुख्य कथा में योग देती हुई भी अपना अलग - अलग महत्त्व रखती है। मुख्य कथा - कुमुद और कुंजर की प्रणय कथा - के अतिरिक्त

आई सभी कथाएँ प्रासंगिक हैं। ये सभी कथाएँ मुख्य कथा के विकास की गति में योगदान देती हैं और इस दृष्टि से सभी सार्थक हैं।

इस उपन्यास के कथानक निर्माण में उपन्यासकार ने इतिहास की अपेक्षा कल्पना और जनश्रुति से अधिक काम लिया है। "इसका वातावरण ऐतिहासिक है किन्तु कथाओं के ताने - बाने कल्पनाजन्य है। इसमें वर्मा जी ने अद्र्धदेवी और अद्र्धमानव की कल्पना का विकास इतिहास के आश्रय से किया है।"§6§

उपन्यास में वर्णित कुमुद की कथा ऐतिहासिक है। मुख्य घटना पद्मिनी और नवाब कालपी की है जो एक ही युग की ऐतिहासिक घटना है। उपन्यास में आई दूसरी घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं। उन्हें सहायक घटनाओं के रूप में एक युग से उठाकर दूसरे युग में रख दिया गया है। "उपन्यास की सब परिस्थितियाँ ऐतिहासिक हैं और वातावरण को तत्कालीन बनाये रखने में पूरी सावधानी बरती गई है।"§7§ देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं परन्तु उनका इतिहास सत्यमूलक हैं। जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुखान्त घटना है। इति-
हास और किंवदंतियों में भी प्रसिद्ध है। परन्तु वास्तविक जनार्दन का अन्त बड़ा भयानक हुआ था। लोचन सिंह के वास्तविक रूप को इस संसार में विलीन हुए लगभग बीस वर्ष से अधिक नहीं हुए।"

वह बहुत ही उद्दंड और लड़ाकू था।"(8) देवीसिंह का वास्तविक नाम भवानीसिंह था जो महाराणा विजय बहादुर सिंह का दत्तक पुत्र था। "उपन्यास के नायकसिंह और विजय बहादुर सिंह एक ही व्यक्ति हैं।"(9)

उपन्यास की सभी घटनाएँ एवं पात्र एक देश और काल के नहीं हैं। वर्मा जी ने लिखा है --"उपन्यास - कथित घटनाएँ सत्यमूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूँथ दी गई हैं।"(10)

समीक्षा :--

उपन्यास की मुख्य कथा "कुमुद" नाम की एक ग्रामीण किशोर कन्या, जिसे गाँव वालों ने उसके रूप, गुणों पर मुग्ध होकर "दुर्गा" की उपाधि दे रखी थी और दिलीपनगर के कुँअर कुंजरसिंह के बीच चल रहे प्रणय - व्यापार से संबंधित है।पर आश्चर्य होता है कि उनका यह प्रणय व्यापार कभी खुलकर प्रकाश में नहीं आता है। समूचे उपन्यास में उनके प्रेम की मूक वेदना ही स्पंदित हुई है। कुमुद के मूक उत्सर्ग के साथ इस दुखान्त उपन्यास का अन्त हुआ है। प्रेम के कलात्मक गुणों और मनोवैज्ञानिक विकास के कारण यह उपन्यास "गढ़कुंडार" की अपेक्षा अधिक सफल है। चरित्र - चित्रण की दृष्टि से कुमुद और राजा नायकसिंह के चरित्र बड़े सजीव और स्पष्ट हैं। नायकसिंह वीर है,

कामुक भी। कुमुद भारतीय आदर्श नारी का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है।

पात्रों और घटनाओं की बहुलता के कारण इस उपन्यास का कथानक संगठन जटिल और विस्तृत है। कथा स्वाभाविक गति से आवश्यक मोड़ लेती हुई विकास की ओर अग्रसर होती है और पराकाष्ठा पर पहुँच विषाद और करुणा की रागिनी गुंजरित करती हुई समाप्त होती है। आद्यन्त उपन्यास में रोमांसपूर्ण वातावरण के साथ रोचकता और उत्सुकता बनी रही है। उपन्यास में युद्ध अथवा रक्तपात सत्ता की लोलुपता के कारण हुआ है अवश्य पर उसके मूल में विराटा की पद्मिनी के सौंदर्य से प्रभावित उसकी प्राप्ति का प्रयत्न भी निहित है। कुमुद की सुंन्दरता उसके लिए वरदान नहीं, अभिशाप सिद्ध हुई है।

3.2.3. <u>मुसाहिबजू</u> :--

दतिया राज्यान्तर्गत केरुआ जागीर के मुसाहिब दिलीपसिंह राजा विजय बहादुर सिंह के बहुत नमकहलाल और वीर जागीरदार थे। दतिया में इनका डेरा भरतगढ़ फाटक से लगा हुआ था। उन्हें राजा से बारह सौ योद्धा रखने का अधिकार मिला था। दिलीपसिंह और उनकी धर्मपत्नी चरखारी वाली - दोनों को अपने आश्रितजनों को खिलाने - पिलाने में हार्दिक प्रसन्नता होती थी।

उन्हें खिलाये बिना स्वयं भोजनकर लेने की आदत दिलीपसिंह §मुसाहिबजू§ में नहीं थी। उनके शिकारी दल में अधिक संख्या मेहतरों की थी। ये मेहतर सैनिक उनके बड़े भक्त थे।

एक दिन शिकार खेलते समय मुसाहिबजू का एक मेहतर सैनिक पूरन तेंदुवे से उनकी रक्षा करने के प्रयत्न में स्वयं घायल हो जाता है। उसके इस कार्य से प्रसन्न वे उसे पुरस्कार तो देते ही हैं, साथ ही, उसे अपना प्रियपात्र भी बना लेते हैं। सैनिकों के भोजनादि पर व्यय के लिए उनकी पत्नी चरखारीवाली अर्थाभाव में अपने हाथ की पहुँचियाँ गिरवी रखवाकर रुपये का प्रबंध करती हैं और ऐसा कर पति के टेक और धर्म के निर्वाह में हाथ बँटाती हैं। परिणामत: उनके पास सिर्फ चाँदी के कुछ गहनें ही रह जाते हैं। आवश्यक आभूषणों के अभाववश वे दतिया नरेश के रानिवास में आयोजित उत्सव में भाग लेने के लिए नहीं जा पाती हैं और संतप्त ही एकान्त में रोती हैं। मेहतर सैनिक पूरन का दादा रामू रानी के इस रूदन से दुखी हो कहीं डाका डाल आभूषण प्राप्त करने और उन्हें रानी को उनका शोक दूर करने की योजना बनाता है। वह कुछ सैनिक साथियों को साथ ले डाकू का वेश बना साहूकारों की स्त्रियों की, जो सोने - चाँदी के प्रचुर आभूषण लिए बड़ौनी किसी विवाह में शरीक होने जा रही थी । एक गाड़ी पर डाका डाल बहुत सा आभूषण §सोने और चाँदी के§ प्राप्त करता है। सोने के आभूषणों

को तो वह रानी के पास पहुँचवा देता है यह कहकर कि ये आभूषण चिरला के पास खंडहरों की खुदाई से अकस्मात मिले हैं अत: उसी को नज़र कर रहे हैं और चाँदी के आभूषणों को चल्ली के पास छोड़ देता है। घूट में प्राप्त चाँदी के आभूषणों को सुभद्रा को भेंट स्वरूप देने के उद्देश्य से ललूली उसके घर जाता है और पकड़ा जाता है कारण उन जेवरों में कुछ जेवर सुभद्रा के भी थे। वह भी उसी गाड़ी में थी जिसे चूटा गया और उसने उस समय चल्ली को पहचाना भी था। इस तरह बात फैल जाती है और मुसाहिबजू और रानी के कानों में भी पड़ती है। मुसाहिबजू को अपने स्वामिभक्त सेवकों के इस प्रकार आचरण पर सहसा विश्वास नहीं होता है पर रानी के पास वर्तमान सैनिकों द्वारा प्रदत्त आभूषणों (जिनमें रानी की वह पहुँची भी थी जिसे उन्होंने कुछ समय पूर्व कुंजी साहूकार सुभद्रा के पिता, वे यहाँ चल्ली के हाथों भेज गिरवी रख रुपया मंगवाया था) को देखकर उन्हें वास्तविकता से अवगत होते देर भी नहीं लगती है। दोनों इससे संतप्त होते है, फिर भी, मुसाहिबजू नहीं चाहते कि उनके सैनिकों पर किसी प्रकार की आँच आवे। उन्हें अपने सैनिकों की स्वामिभक्ती पर पूरी आस्था है। वे अच्छी तरह जानते - मानते हैं कि उनके स्वामिभक्त सैनिक किसी बुरी नीयत से चोरी या डकैती नहीं कर सकते हैं। मात्र गलत भावावेश में ही उनके द्वारा ऐसा किया जाना संभव है अत: उन्हें सब प्रकार से निर्दोष समझ वे उनकी रक्षा करने का निश्चय करते हैं।

लूटे गये सेठों की पुकार दतिया नरेश के पास पहुँचती है। राजा मुसाहिबजू को, अपने लुटेरे सैनिकों को दण्ड के लिए प्रस्तुत करने की, आज्ञा देते हैं। मुसाहिबजू राजा से मिल सब कुछ जान कर भी अपने सिपाहियों को निर्दोष बतला उन्हें उनके सम्मुख प्रस्तुत करने से इनकार कर देते हैं। राजा कोतवाल को, मुसाहिबजू के लुटेरे सैनिकों का, यदि वे एक घंटे के अंदर किले के फाटक पर हाज़िर नहीं हो जाते पकड़कर दतिया जाने की आज्ञा देते हैं। इस एक घंटे की निश्चित अवधि से दो घंटे बाद तक लुटेरे सैनिकों को किले के फाटक पर हाज़िर हुआ न देख कुपित राजा मुसाहिबजू को कैदकर किले ले आने तथा बंदी गृह में डाल देने अथवा उन्हें आज ही देश निकाले की सज़ा देने की आज्ञा कोतवाल को देते हैं। इस राजाज्ञा से मुसाहिबजू विचलित नहीं होते हैं। वे स्वयं वीर योद्धा हैं। अतः राजा का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध हो वे अपनी सेना को दृढ़तापूर्वक ठीक करते हैं।

वह मुसाहिबजू से मिलकर अपनत्व प्रदर्शित करते हुए उन्हें दतिया का नमक खाने के कारण राजा की सेना से युद्ध न करने तथा भरतगढ़ छोड़ केरुआ चले जाने की बात पर राजी कर लेता है।

उनसे मित्रता स्वरूप वह उनकी दुनाली बन्दूक मांग लेता है। उनसे अपनी सेना, स्त्री, धन सबके साथ केरुआ के लिए प्रस्थान करते हैं। उधर कोतवाल राजा के पास पहुँच मुसाहिबजू की प्रशंसा करते हुए उन्हें सूचना देता है कि मुसाहिबजू ने उनकी आज्ञा - देश निकाले- को स्वीकार कर लिया है प्रमाण स्वरूप मेरे हाथों अपनी यह दूनाली बन्दूक भेजा है। राजा को मुसाहिबजू की स्वामिधर्मिता पर विश्वास तो था ही पर वे लाचार थे। केरुआ के लिए रास्ता दतिया होकर ही था अत: किले के बुर्ज पर राजा को बैठा देख मुसाहिबजू शिष्टाचारवश घोड़े से उतर उनका मुजरा बहुत आगे बढ़ते हैं। इस दृश्य को देख राजा की आँखें सजल हो जाती हैं, गला भर आता है। वे पहले कोतवाल को फिर रामसिंह को उन्हें मनाकर पुन: लौटाने के लिए भेजते हैं। जब टें गटे साहूकारों को मुसाहिबजू के भरतगढ़ त्याग का पता लगता है। वे यह सोचकर कि राजा मुसाहिबजू को बहुत मानते हैं, उन्हीं के कारण निकाले जाने पर भविष्य में राजा उन्हें (साहूकारों) ही सताए, भयाक्रांत हो रास्ते में आकर, उन्हें (मुसाहिबजू को) मनाते हैं। रामसिंह बड़ी चतुराई से झूठ बोलकर मुसाहिबजू की राष्ट्रीय भावना को जाग्रत कर उन्हें आगे बढ़ने से रोकता है। मुसाहिबजू भरतगढ़ न लौटकर दतिया नगर से बाहर ही डेरा डाल देते हैं और अपने प्रण -- "दतिया के ऊपर चढ़ आने वाले शत्रु को परास्त करके यदि जीवित

रहे तो केरुआ चले परन्तु परित्यक्त भरतगढ़ में पैर न रखेंगे।"-- की घोषणा करते हैं। अंत में राजा स्वयं आकर उन्हें मनाते हैं और उन्हें भरतगढ़ जाने और यथावत् अपना काम करने का आदेश तथा प्रजा पालन का उपदेश भी देते हैं -- "देखो जमाना नाज़ुक है। संभल कर चलो और सिपाहियों की बागडोर हाथ में रखो जिससे आतंक फैलने न पावे क्योंकि "जासु राज प्रिया प्रजा दुखारी , सो नृप अतस नरक अधिकारी"॥1॥ स्वामिभक्त मुसाहिबजू को राजा का यह आदेश और उपदेश सहज स्वीकार्य होता है।

समीक्षा :---

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके कथानक में वर्मा जी ने इतिहास और कल्पना का मधुर समन्वय किया है। कथानक एक पात्र केरुआ के जागीरदार दलीपसिंह मुसाहिबजू के जीवन चरित्र पर मुख्य रूप में आश्रित, अवलंबित है।

सम्पूर्ण उपन्यास में प्रधानता उन्हीं के चरित्र की है अतः यह वर्मा जी का पहला पुरुष चरित्र प्रधान उपन्यास है। उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास नारी चरित्र है जो सब प्रकार से सार्थक है। मुसाहिबजू के अतिरिक्त उपन्यास में आए अन्य चरित्र है -चरखारी वाली, रामू,पूरन, पल्ली, कंजीलाल, सुभद्रा, विजय बहादुर सिंह, रामसिंह एवं कोतवाल आदि।

आद्‌यन्त उपन्यास का वातावरण यथार्थ है पर उसी यथार्थ के अन्तराल से आदर्श की ज्योति फूटती दिखाई पड़ती है। कथानक के अंत में शासक के लिए अपने सिपाहियों पर नियंत्रण रखने की अनिवार्यता के साथ - साथ आश्रित जनों §प्रजा§ के प्रति उसके §शासक के§ दायित्व पर विशेष बल दिया गया है।

उपन्यास का कलेवर छोटा है अवश्य पर उस छोटे कलेवर में ही घनत्व और विस्तार समाहित है। कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी ओजवद्‌र्धक, उत्तेजक, रोचक और संवेदनशील है। आद्‌यन्त कथा, सीधी - सादी, सरल एवं स्पष्ट है, उलझनपूर्ण वातावरण अथवा जटिलता इसमें नहीं आने पाई है। सभी घटनाएँ एवं क्रियाकलाप सूत्रबद्‌ध रूप में वेगपूर्ण गति से विकास की ओर आगे बढ़ते हैं।

3·2·4· झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई :---

बाजीराव पेशवा §द्‌वितीय§ के कृपापात्र मोरोपन्त की मातृ-हीन कन्या मनूबाई §बाद में लक्ष्मीबाई§ का पालन-पोषण पिता द्‌वारा ही होता है। बचपन में वह पेशवा के दत्तकपुत्र नाना धोंडूपन्त और उनके भाइयों के साथ खेला करती थी। उसी समय §बचपन§ उसके हृदय में भारतीय वीरांगनाओं का अचल संस्कार जम गया था, राष्ट्र - प्रेम और महत्वाकांक्षाओं से ओतप्रोत वह अस्त्र -

शस्त्र संचालन कला में प्रवीण होने अश्वारोहण तथा अन्य दूसरे प्रकार के वीरोचित कार्यों में अधिक रुचि रखती थी। समय आने पर उसका विवाह झाँसी के विधुर प्रौढ़ राजा गंगाधर राव से होता है। ससुराल पहुँच "मनूबाई" से "लक्ष्मीबाई" बन जाती है। अपनी प्रबन्ध कुशलता से थोड़े ही दिनों में वह सबको चकित कर देती है। उसकी वृत्ति अति रसिक, आलसी, सहसा प्रवर्ती पति से मेल नहीं खाती। राज-महल के बन्धनों में बंधकर भी वह व्यायाम और घुड़सवारी का अभ्यास नित्य किया करती है और अपनी दासियों - काशी, सुन्दर, मुन्दर आदि - को सहेली के रूप में स्वीकार कर, उन्हें प्रोत्साहन दे युद्ध कलाएँ सिखलाती है। वह कुछ कालोपरान्त पुत्रवती बनती है अवश्य पर तीन मासोपरान्त ही वह पुत्र काल कवलित हो जाता है। भयंकर रूप से रोगग्रस्त हो जाने पर निराश गंगाधर राव दामोदर राव नाम के एक सजातीय बालक को गोद ले राज्य की रक्षा करते हैं। 18 वर्ष की आयु में लक्ष्मीबाई का पति से संग छूट जाता है, वह दुर्बल कातर नहीं होती है, बल्कि अपूर्व धैर्य और दृढ़ता का आश्रय ग्रहण कर अपने बाल-सखाओं - तांत्या तोपे और नाना साहब से अपने ऊपर से अंग्रेजी शासन का कलंक मिटा देने, देश को स्वतंत्र करने की योजना पर समय - समय पर विचार विमर्श करने और देश की स्थिति तथा जनता की मनोवृत्ति का अध्ययन करने में लग जाती है। इसी समय नवाब अली बहादुर, जो राजा गंगाधर राव से प्रताड़ित

होकर ना खुश था, अंग्रेज पदाधिकारियों से रानी के आन्तरिक रहस्यों का भेद खोल देता है। परिणामत: झाँसी का शासनाधिकार अंग्रेजों के हाथ चला जाता है। अंग्रेज पदाधिकारी रानी के दत्तक पुत्र दामोदर राव से अवैध घोषित करते हैं। यह सब कुछ देख - सुन रानी भविष्य में योजना पूरी हो जाने तक शान्त बनी रहने का निश्चय करती है और योजना की सफलता के लिए झाँसी की महिलाओं को एकत्र कर उन्हें युद्ध सम्बन्धी तरह - तरह की शिक्षा दे महिला सेना का एक दल अपनी देखरेख में तैयार करती है। इस बीच जनता के बीच अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रचार - कार्य भी चलता रहता है।

4 जून, 1857 को भारत के अन्य नगरों के समान, अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह के लक्षण, झाँसी में प्रकट होने पर रानी झाँसी के सभी गण्यमान जनों के आग्रह पर झाँसी का शासन भार ग्रहण कर सुव्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा करती है। टीकमगढ़ के दीवान नत्थे खाँ की विशाल सेना के आक्रमण तथा विरोधियों द्वारा झाँसी नगर में उत्पन्न किये गए साम्प्रदायिक तनाव आदि समस्याओं का सामना दृढ़तापूर्वक करती है और सफल होती है। अंग्रेज़ी सेना का जनरल ह्यू रोज विद्रोहियों का दमन करता हुआ झाँसी के समीप आ पहुँचता है। दोनों तरफ से तोपों का भयंकर युद्ध होता है। रानी के महिला सेना दल के अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य का परिचय पर जनरल रोज को दाँतों तले उंगली ब दबानी पड़ती है। इस समय नवाब

अली बहादुर का नौकर पीरअली षडयन्त्र रच, स्वयं को रानी का जासूस घोषित कर, रानी के दल का विश्वास प्राप्त कर लेता है और नित्य रात्रि के सन्नाटे में अंग्रेज़ों को छावनी में पहुँच रानी का सारा भेद दिया करता है। दून्हा जू तोपची अपनी सहायिका, महिला-सेना दल की एक सदस्या, सुन्दर से प्रणय - याचना करता है किन्तु सुन्दर से तिरस्कृत तथा रानी द्वारा अपमानित किये जाने पर वह अंग्रेज़ों से जा मिलता है और रानी के प्रति विश्वासघात करता है। पीरअली से किले का सारा भेद पा जाने तथा दून्हाजू [दूलहसिंह] द्वारा किले के ओर्छाफाटक पर अंग्रेज़ी सेना को मार्ग दे देने के परिणाम स्वरूप झाँसी अंग्रेज़ों के कब्जे में चली जाती है। अंग्रेज़ झाँसी किले को नष्ट - भ्रष्ट कर देते हैं। रानी के प्रमुख सरदार गोलंदाज सैनिक, तोपची मारे जाते हैं। परिणामत: रानी को झाँसी छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है। वह दत्तक पुत्र दामोदर राव को अपनी पीठ पर बाँध कुछ चुने हुए सरदारों को अपने साथ लें, अंग्रेज़ी सेना से लड़ती हुई झाँसी से बाहर निकल जाती है और काल्पी पहुँची बालाराव पेशवा की छावनी में शरण लेती है।

बालाराव पेशवा एक आलसी और विलासी योद्धा थे। लक्ष्मी-बाई के बार - बार चेतावनी देने पर भी उनकी विलासिता में कमी नहीं आती है। झाँसी पर विजय प्राप्त कर जनरल रोज काल्पी पर आक्रमण करता है। विजय के पर्याप्त साधनों के वर्तमान होने पर भी

अस्त - व्यस्तता, विश्रृंखलता, अनुशासनहीनता के कारण पेशवा की सेना हार जाती है और पेशवा को भागकर ग्वालियर शरण लेनी पड़ती है। रानी की प्रेरणा, योजना, उत्साह तथा परिश्रम से रावसाहब का ग्वालियर के किले पर अधिकार हो जाता है। वहाँ का राजा भाग जाता है। सेना और जनता को मिला लिया जाता है। लेकिन किला हाथ में आते ही राव की विलासिता पुन: सचेत होती है। उनका अधिक समय नाच-गान, उत्सव आदि मनाने में बीतने लगता है। रानी की चेतावनियों का उन पर कोई असर नहीं पड़ता है। राव तथा उनके सहयोगियों की निश्चिन्तता, आलस्य तथा विलासितापूर्ण आचरण से क्षुब्ध ग्वालियर के आस-पास घूमती हुई रानी की भेंट बाबा गंगादास नामक एक सन्यासी से होती है। गंगादास

रानी को "गीता" के कर्मयोग से कर्म समझते हुए बिना किसी प्रकार की आशा-निराशा हृदय में रखे अनवरत प्रयत्नशील होने, कर्मरत रहने का सदुपदेश देते हैं। उनकी बातों का रानी पर असर होता है। उसके हृदय से निराशा उसी क्षण लुप्त हो जाती है और वह उसी परिस्थिति में जीवनपर्यन्त भरसक उद्योगरत रहने का निश्चय करती है। मौका पाकर जनरल रोज ग्वालियर के राजा को अपने पक्ष में कर ग्वालियर पर आक्रमण करता है। ग्वालियर की सेना राव से विमुख हो जाती है। ऐसी आपद्घड़ी में विलासी पेशवाओं को रानी की पुन: याद आती है। रानी कुशलतापूर्वक सैन्य संचालन

करती है। उसके थोड़े से सैनिक असाधारण शौर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन करते हैं। पराजय अवश्यंभावी थी, फिर भी रानी ल लड़ते - लड़ते अंग्रेज़ी सेना के छक्के छुड़ाते हुए दामोदर राव को साथ लिये भाग निकलती है परन्तु घायल हो जाने के परिणामस्वरूप उसकी इहली ीं समाप्त हो जाती है। उसके देश - प्रेमी सरदार रघुनाथ सिंह गुलाम मुहम्मद देशमुख आदि उसका पीछा करनेवाले सैनिकों को मार भगाते हैं और रानी के राव का दाह -संस्कार बाबा गंगादास की कुटिया में कर वहाँ एक चबूतरा बना देते हैं जिसे अंग्रेज पता नहीं लगा पाते।

समीक्षा :---

इस तरह इस उपन्यास की मुख्य कथा है बाजीराव पेशवा §द्वितीय§ के कृपापात्र मोरोपन्त की मातृहीना मनुभाई का झाँसी के राजा गंगाधर राव से परिणय - संस्कार, 18 वर्ष की आयु में उसका पति सुखवंचित होना और 1857 में झाँसी में ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध विद्रोह का लक्षणप्रकट होने पर स्वराज्य स्थापित करने के उद्देश्य से झाँसी का राज्य संभालना तथा अन्त में अंग्रेज़ों से डटकर मोर्चा लेते हुए प्राणोत्सर्ग करना।

उपन्यासकार का ध्यान सब तरफ से सिमटकर एकमात्र लक्ष्मीबाई के चरित्र अथवा व्यक्तित्व पर केन्द्रित होने, उसी के इर्द-गिर्द चारों तरफ घूमते रहने के कारण उसकी कथा के अतिरिक्त उपन्यास में किसी पुष्ट प्रासंगिक कथा का समावेश नहीं कर सके है। रानी स्वराज्य के लिए लड़ी थी। नाना साहब, राव साहब, तात्याटोपे के साथ स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेने की प्रासंगिक कथा खुलकर उभर नहीं पाई हैं। रानी का बचपन नाना और राव की संगति में बीतता है, तात्या टोपे के प्रयत्न से गंगाधर राव के साथ ब्याही जाती है। विधवा होने के पश्चात् जब वह झाँसी का शासन भार संभालती है नाना और टोपे दोनों उसे देश की वास्तविक वस्तुस्थिति से अवगत कराने तथा स्वातन्त्र्य संग्राम की योजना के संबंध में उससे विचार-विमर्श करने उसके पास झाँसी आते हैं। झाँसी पतन के बाद रानी अंग्रेजों का विरोध राव साहब और तात्या तोपे के साथ मिलकर करती है।

वर्मा जी ने निश्चय किया था -"लक्ष्मीबाई पर एक ऐसा उपन्यास लिखने का जो इतिहास के रंगरेशे से सम्मत हो और उसी के संदर्भ में हो।"{12} अत: उन्होंने इस उपन्यास में लक्ष्मीबाई की

जीवनी और उनकी जीवनी में उनसे संबद्ध इतिहास के समावेश का प्रयत्न किया है। परिणामत: उपन्यास में लक्ष्मीबाई की जीवनी तो स्पष्ट हुई ही है, साथ ही, उस काल का सारा इतिहास भी स्पष्ट हुआ है। इतिहास के कंकाल में माँस और रक्त का संचार करने के लिए यहाँ उन्होंने उपन्यास का सहारा लिया है। इतिहास के सत्य और उपन्यास की कला के अद्भुत और सफल संयोजन से वर्मा जी का यह उपन्यास प्रथम श्रेणी की रचना है।

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ था। इसमें वर्माजी के पूर्व प्रकाशित दो उपन्यासों - "गढ़ कुंडार" और "विराटा की पद्मिनी" की अपेक्षा ऐतिहासिक सत्य की रक्षा अधिक हुई है। कारण एक, इस उपन्यास का मूल कथानक सन् 1857 की क्रान्ति पर आधारित है, दूसरा लेखक को अधिक विश्वस्त सूत्रों से सभी प्रमुख घटनाओं का विवरण प्राप्त हुआ है। तीसरा लक्ष्मीबाई के दत्तकपुत्र दामोदर राव से लेखक की इस संबंध में स्वयं बातें हुई हैं। इस उपन्यास में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की समस्त जीवनी बिठूर में पालित - पोषित होने से लेकर झाँसी में लक्ष्मीबाई बनने, झाँसी का पतन होने और स्वराज्य हेतु लड़ते हुए प्राणोत्सर्ग करने तक की सम्पूर्ण घटनाएँ वर्णित हैं। लक्ष्मीबाई का मुख्य ध्येय अथवा कार्य है स्वराज्य प्राप्ति। इसके लिए वह समय आने पर बराबर प्रयत्नशील रहती है। बचपन में भी वह

इसी के सपने देखा करती थी। गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात वह अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए झाँसी का शासनभार संभाली है। वह देश को आजाद करने, स्वराज्य प्राप्ति के लिये अंग्रेज़ो से डटकर युद्ध करती है और इसी प्रयत्न में, वीरतापूर्वक लड़ती हुई युद्धभूमि में घायल होकर मौत को अंगीकार करती है।

इस उपन्यास का चित्रफलक काफी विस्तृत है। इसमें उपन्यासकार ने सुदूर क्षणिक को छोड़कर सन् 1857 के स्वातन्त्र्य संग्राम से सम्बद्ध प्राय: सभी घटनाओं और सशक्त व्यक्तियों को समेट लाने का प्रयास किया है। यह उपन्यास सन् 57 के युद्ध का सर्वाङ्गीण चित्र उपस्थित करता है। इसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखाओं तथा विविध रगों का उपयोग किया गया है परिणामत: उपन्यास का कला पक्ष त्रुटिपूर्ण हो गया है और व्योरों की विकृति उभर कर सामने आ गयी हैं। पूरे उपन्यास में प्रधानता लक्ष्मीबाई के चरित्र अथवा व्यक्तित्व की है अत: उसी के आधार पर उपन्यास का नामकरण सार्थक और उपयुक्त है।

कथानक की समाप्ति लक्ष्मीबाई के प्राणोत्सर्ग से हुई है। सत्य-पक्ष . पराजित हुआ है लेकिन पराजय की यह स्थिति अथवा लक्ष्मीबाई का प्राणोत्सर्ग अपने पीछे प्रेरणा की शक्तिमयी लहर छोड़ जाता है। रानी की मृत्यु होती है अवश्य पर मर कर भी वह अपने पीछे जो राष्ट्रीय चेतना, वीरत्व भावना, देश-प्रेम आदि के भाव-विचार छोड़ जाती है उसकी बदौलत वे वह अमर हो जाती है) उसके कर्तव्यों के स्मरण श्रवण से देश को प्रेरणा मिलती रही है।

3.2.5. कचनार :--

धामोनी के बीस - इक्कीस वर्षीय युवा गणपति राव दिलीपसिंह राजगोंड की अस्वस्थता के कारण उनके दूर के रिश्ते का छोटा भाई युवा मानसिंह उनकी ओर से पत्थर गाँव से कलावती को विवाह कर लाता है। वधू के साथ दहेजस्वरूप मिली उनकी (वधू की) दो कुंआरी सहेलियाँ कचनार और ललिता भी धामोनी आती है। "मानसिंह कलावती को धामोनी लाते समय मार्ग में उसे अपने आकर्षण में फाँस लेता है।" (13) परिणामत: दलीपसिंह और कलावती के बीच अपेक्षित स्नेह संबंध स्थापित नहीं हो पाता है। "दलीपसिंह को पहली सुहाग रात को ही कलावती के निष्ठुर व्यवहार से उसकी तरफ उदास निराश हो जाना पड़ता है।" (14) परिणामत: उनका स्वाभाविक आकर्षण सुन्दर पर गंभीर स्वभाव की कचनार के प्रति होता है लेकिन वह भांवर डाल पत्नी रूप में स्वीकार किये जाने पर ही उन्हें सर्वस्व समर्पण करने का अपना निश्चय प्रकट करती है साथ ही, यह भी स्पष्ट कर देती है कि वह उनके साथ प्राण पण से प्रेम करती है, अपना नारीत्व नष्ट करके नहीं। (15)

राव दलीपसिंह की रियासत के अन्तर्गत रहनेवाला इस नाम का एक अहीर समय पर लगन नहीं देने के कारण सोनेसाह के बिगड़ने तथा क्रुद्ध होने पर उसका भाई बैजनाथ उससे उलझ पड़ता है और उन्हें बुरा-

भला कहता है। उसके उद्दंड व्यवहार से कुपित सोनेसाह उसे मारते-पीटते हैं। इसी समय डरू वहाँ पहुँच भाई को पिता देख क्रोधावेश में सोनेसाह की हत्या कर देता है और स्वयं राज्य कोपानल से भीत - त्रस्त हो भागकर जंगल में शरण लेता है। उसके इस आचरण से क्षुब्ध , कुपित सहसा प्रवर्ती राव दलीपसिंह उसके भाई बैजनाथ की निर्मम हत्या स्वयं अपनी तलवार से कर देते हैं तथा भागे हुए डरू की खोज करने की आज्ञा मानसिंह को देते हैं।

मानसिंह इसको खोजने धामोनी के जंगल में जाता है अवश्य, पर उससे पुरानी मित्रता होने के कारण उसे प्राप्त कर उसके साथ सहानुभूति से पेश आता है, उसे अपने लिये खाना खिलाता और पानी पिलाता है तथा उसे कहीं अन्यत्र सुरक्षित जगह भाग जाने की सलाह देता है। वह उससे बैजनाथ की हत्या की बात छिपा लेता है यह सोचकर कि इसे जान-सुन उसे कष्ट होगा। ' डरू उसके कहने पर अन्यत्र भाग जाने की बात पर राजी हो जाता है और अपनी पत्नी मन्ना तथा बैजनाथ की देखरेख का भार उसी के ऊपर छोड़ जाता है।

इसी समय धामोनी पर हुए सागर की सेना के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए राव दलीपसिंह मानसिंह के साथ जाते हैं और शत्रु को मार भगाने में सफल, समर्थ होते हैं। विजयोल्लास से भरे हृदय लौटते समय रास्ते में घोड़े से सिर के बल गिर, मस्तिष्क में घातक चोट लगने के कारण अपनी स्मरण शक्ति खो बैठते हैं। उनकी

चिकित्सा होती है। सबसे अधिक उनकी सेवा कचनार करती है। दवा राजवैद्य निधान देते हैं पर मर्ज बजाय घटने के बराबर बढ़ता ही जाता है। उन्हें संग्रहणी रोग हो जाता है। इस समय तक कलावती और मानसिंह का प्रेम काफी हद तक आगे बढ़ गया रहता है। अत: निष्कपट मौज करने के अभिप्राय से एक दिन मानसिंह दिलीपसिंह को एक ऐसी जड़ी पिला देता है जिससे दस्त का होना बन्द हो जाता है और अत्यन्त तीव्र ज्वर चढ़ जाने के कारण उनकी नाड़ी की गति बिल्कुल लुप्त हो जाती है।

उनका शव दाह - संस्कार के लिए श्मशान घाट लाया जाता है पर इसी समय अचानक जोर की आँधी, पानी आ जाने के कारण दाह-संस्कार के लिए आये जनों को शव को अर्थी से बँधा छोड़ कुछ दूर पर स्थित एक वृक्ष की छाया में आश्रय लेना पड़ता है। उसी समय गुसाईं अखाड़े के महन्त अचलपुरी अपने सहायक गुसाइयों --- मँटोलेपुरी आदि के साथ ऊँटों पर सवार उधर से गुजरते हैं। शीतल वायु तथा जल के स्पर्श से दलीपसिंह के शरीर से जहरीली जड़ी के विष के प्रभाव के उतर जाने से उसमें पुन: चेतना आ जाती है। बिजली की कौंध में अर्थी से बँधी एक लाश को कुल बुलाते देख पहले तो गुसाइयों को प्रेत का भय होता है पर अचपुरी के धैर्य बँधाने और कहने पर वे उसे अर्थी से खोल अपने अखाड़े में ले जाते हैं। अचलपुरी की चिकित्सा से दलीपसिंह स्वस्थ हो जाते हैं। अवश्य पर स्मरण शक्ति के लोप

हो जाने से बालक जैसा व्यवहार करते हैं। महन्त उनके जीवित होने की बात को पूर्णतया गुप्त रखकर उनकी लुप्त हुई स्मरण - शक्ति की पुन: प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं और उनका नाम सुमन्तपुरी रखते हैं।

मृत दिलीपसिंह के शव का दाह संस्कार करने के निमित्त आये मानसिंह आदि जन वर्षा की समाप्ति के बाद श्मशान घाट पर शव को न देख इधर - उधर खोजते हैं। नहीं मिलने पर वे, यह विश्वास मन में धारण कर कि इस बीच कोई नाहर आकर शव को उठा ले गया होगा, कारण उन लोगों ने वृक्ष तले खड़े - खड़े गुसाइयों के ऊँटों के बल बचाने की खेडध्वनि सुनी थी, उसी को उन लोगों ने नाहर का गर्जना, गुर्राना समझ लिया, घर लौट जाते हैं। मानसिंह धामौनी का गढपति बनता है और दिलीपसिंह की नव विवाहिता पर विधवा वधू - कलावती से, राजगौंडों के नियम के विरुद्ध पुनर्विवाह करता है। वह कचनार को भी अपनी - वासना पूर्ति का साधन बनाना चाहता है पर दिलीपसिंह से हृदय से प्रेम करनेवाली कचनार उनके निधन से दु:खी हो वैराग्य पूर्ण जीवन जीने, भजन-पूजादि में लीन व्यस्त रहने का उपक्रम करती है। मानसिंह जब उसकी इच्छा अनिच्छा का ख्याल किये बिना बल पूर्वक उसे अपना बनाने की चेष्टा करता है, अपनी सुरक्षा का कोई रास्ता नजर आता न देख उसके कामक पंजे से बचने के लिए वह किसी प्रकार किले से भाग निकली है और महन्त अचलपुरी के आश्रम (गुसाइयों के अखाड़े) में आश्रय लेती है। महन्त

उसका नाम कुंचनपुरी रखते हैं। मानसिंह आश्रम से कचनार को वापस लाने के लिए स्वयं वहाँ जाता है पर निराश लौट आता है। आश्रम में दिलीपसिंह की आकृति से मिलते - जुलते सुमन्तपुरी को देख उसे आशंका होती है - यह मूल दिलीपसिंह का प्रेत नहीं जिसे महन्त ने अपने तंत्र-मंत्र के बल से जीवित कर अपने वश में कर लिया है। कचनार की पुर्नप्राप्ति असम्भव जान, उसकी रिक्तता की पूर्ति के लिये वह इसकी हँसोड़ पत्नी मन्नो को फाँसने का प्रयत्न करता है पर वह बड़ी चतुरता से अपनी रक्षा उससे करती है। ललिता स्वेच्छापूर्वक उसे अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है।

गुसाइयों के अखाड़े में आ कचनार ﴾अब कंचनपुरी﴿ शरीर तथा मन को नियंत्रित कर कठोर योग साधना करती है और स्वयंमित, कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न नारी होने का परिचय देती है। वह मंटोलेपुरी और सुमन्तपुरी के साथ महन्त के सत्संग में भी भाग लेती है। वह सुमन्तपुरी में मृत दिलीपसिंह की रूपाकृति अपने पूर्व संस्कारों के कारण उसके प्रति स्वभावतः आकृष्ट होते हैं। महन्त सुमन्तपुरी के वास्तविक रहस्य को कंचनपुरी से भी अन्त तक कुशलतापूर्वक छिपाये रखते हैं।

मानसिंह के कहने पर धामोनी छोड़कर भागा डरू कुछ दिनों इधर - उधर भटकता - फिरता है। एक रात, जब वर्षा हो रही थी, वह साधु के वेश में धामोनी मल्ना से मिलने आता है और थोड़ी देर ठहर लौट जाता है। वह धामोनी विध्वंस की कल्पनामन में

धारण कर होलकर की सेना में भर्ती हो जाता है। अपने कार्य में कुशलता प्राप्त कर वह सैनिक से सूबेदार बनता है और अपना नाम डोरीसिंह रखता है। होलकर की सेना में रह धामोनी - विध्वंस की अपनी कल्पना के साकार होने की कोई संभावना निकट भविष्य में नजर नहीं आती देख उसकी इच्छा पिंडारियों का संग करने की होती है पर वह ऐसा करता नहीं है कारण उनका स्वच्छन्द जीवन उसे प्रिय लगता है अवश्य पर उनके अत्यन्त डाँवाडोल जीवन-क्रम के प्रति उसे अरुचि होती है। वह होलकर की सेना को छोड़कर सागर आता है और पाँच छ: महीने के बाद वहाँ के एक दस्ते का सूबेदार बन जाता है। इस बीच वह धामोनी अपनी पत्नी मन्ना से एक - दो बार छिपे चुके मिल आता है।

कुछ समयोपरान्त महन्त अचलपुरी अपने शिविर की धामोनी से उखाड़ कर सागर ले आते हैं। सूबेदार डोरीसिंह एक दिन अवसर निकाल उनसे मिलने उनके शिविर में आये । महंत से बातचीत के क्रम में वह युद्ध कला में पारंगत होने का दंभ भरता है अत: उसके दंभ, उसकी अहम्मन्यता को समाप्त करने के अभिप्राय से महन्त उसके कहने पर बन्दूक की निशानेबाजी (लक्ष्यबोध) के प्रदर्शन के लिए समय और दिन निश्चित करते हैं और सुमन्तपुरी की उसकी प्रतिद्वन्द्वता में खड़ा करते हैं। डोरी निशानेबाजी में चूक जाता है और सुमन्तपुरी बाजी मार लेते हैं। वहाँ कंचनपुरी नामधारी

गोसाई को देख उसे उससे मिलती - झुलती मुखाकृति वाली कचनार की स्मृति हो आती है और वह सोचने को विवश होता है --"यह गोसाई कोई स्त्री है। संभव है कचनार हो। पर यह सुमन्तपुरी क्या दलीपसिंह की है? नहीं हो सकता, असम्भव है।"\|16\|

कुछ समयोपरान्त सूबेदार डोरीसिंह पिंडारियों के सरदार अमीर खाँ के बहकावे में आकर, सागर के राजा से विद्रोह करके भी उसकी सहायता करने के लिये वचनबद्ध होता है। अमीरखाँ उसे सागर का कर्नल बना देने की आशा तथा विश्वास देता है। डोरी सिंह सागर के कुछ सैनिकों को अपने साथ ले महन्त के गोसाई सैनिकों के साथ मिल धामोनी पर आक्रमण करता है लेकिन इसी समय उसके पास सागर से अमीर खाँ को सहायता के लिए नियन्त्रण लेकर एक फकीर वेशधारी सैनिक आता है। डोरीसिंह की अमीर खाँ के साथ किये गये अपने पूर्व वायदे के अनुसार धामोनी -विजय का भार महन्त पर छोड़ सागर जाना पड़ता है।

डोरीसिंह के सागर चले जाने पर महन्त धामोनी पर अपने पुरुषार्थ और सामर्थ्य से विजय प्राप्त करते हैं। इस आक्रमण में सेना के साथ युद्ध करते हुए सुमन्तपुरी नामधारी दिलीपसिंह दीवार से कूदते समय पाँव फिसल जाने के कारण सिर के बल गिर पड़ते हैं और

पूर्व चोट खाये स्थान पर पुन: चोट खाकर वे अपनी खोई स्मरण - शक्ति पुन: प्राप्त कर लेते हैं। धामोनी पतन के पश्चात कलावती प्राण देकर भी मानसिंह से संबंध निवाह का अपना निश्चय ललिता को सुनाती है। इस समय तक वह एक पुत्र की माँ बन गई रहती है।

सागर की स्थिति को बहुत कुछ अपने कब्जे में आया देख अमीरखाँ धामोनी पर आक्रमण करने के इच्छुक डोरीसिंह के साथ कुछ पिंडारियों को लगा देता है। डोरीसिंह आक्रमण करता है पर इसी समय यह सूचना पाकर कि भोंसले की एक बड़ी सेना सागर गई है और वहाँ पिंडारियों को कुचलकर शीघ्र धामोनी आवेगी- उसके बहुत से सैनिक भाग जाते हैं। वह भी अपनी छावनी का बहुमूल्य सामान लादकर खिसकने की तैयारी करता है। इसी समय महन्त का आदेश पा मंटोलेपुरी आ धमकते हैं और थोड़ी लड़ाई के बाद उसे अपनी हिरासत में ले लेते हैं। बन्दी वेश में उपस्थित डोरीसिंह महन्त के साथ उद्दंडता-पूर्ण व्यवहार करता है जिससे कुपित हो वे उसे अविलम्ब फाँसी की सजा दे देना का अपना निर्णय सुनाते है। उसे वृक्ष की एक दरख्त से, गले में फंदा डाल लटका देने की पूरी तैयारी हो जाती है लेकिन इसी समय मन्ना के रोने - कलपने से द्रवित राजा दिलीपसिंह आकर उसकी प्राण रक्षा कर अपने पूर्व किये कर्म {उसके भाई की निर्मम हत्या} का प्रायश्चित करते है। डोरीसिंह को अपनी पत्नी मन्ना तथा मवेशियों आदि के साथ देशनिकाले की सजा मिलती है। वह शीघ्र धामोनी का त्याग करता है।

महन्त अपने अखाड़े के महन्त की गद्दी मंटोलेपुरी को सौंप स्वयं वास्तविक सन्यास ग्रहण करने का निश्चय करते हैं। वे दिलीपसिंह और कचनार का परिणय संस्कार करा देते हैं। दिलीपसिंह मानसिंह तथा कलावती को उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान कर उन्हें जीवन-निर्वाह हेतु पाँच - गाँव और ऐक गढ़ी देकर धामोनी से बाहर सम्मानपूर्वक विदा करते हैं। ललिता भी मानसिंह का साथ देती है। अन्त में महन्त अचलपुरी अपने पूर्ण निश्चय के अनुसार मंटोलेपुरी को अपने अखाड़े की महन्ती सौंप, भण्डार कर सबको अशीष तथा उपदेश --

"मुझको अँधेरे से उजाले में ले चले,
मुझको असत्य से सत्य की ओर ले चलो,
मुझको मृत्यु से अमरता की ओर ले चले।" ॥17॥

दे अकेले चले जाते है। दिलीपसिंह धामोनी का कार्य - भार संभालते हैं और कंचनपुरी की स्मृति को बनाये रखने के लिये कचनार नाम के पूर्व कंचन का योग करते हैं।

समीक्षा :---

इस तरह इस उपन्यास की मुख्य कथा है - धामोनी के राव दलीपसिंह की, घोड़े से गिर मस्तिष्क में घातक चोट लगने के कारण स्मरण शक्ति के लोप होने, मानसिंह के षडयन्त्र से उनके जीवित बच्चो को निकलने, महन्त अचलपुरी के प्रयत्न से धामोनी पर विजय श्री प्राप्त

करने, युद्ध के क्रम में दोवार से कूदते समय पैर फिसल जाने से सिर के बल गिर पूर्व स्थान पर पुन: चोट खा खोई स्मृति को पुन: प्राप्त करने तथा अन्त में कचनार के साथ परिणय-संस्कार करने को ।

इस उपन्यास के कथानक निर्माण में वर्मा जो ने अपने अभ्यासानुसार इतिहास और परम्परा, ऐतिहासिक तथ्य और कल्पना का उपयोग किया है । इसको रचना के पोछे निहित अपने उद्देश्य के संबंध में वर्मा जो ने स्वयं लिखा है -- " इतिहास लेखकों के लिए धामोनी में एक बड़ा आकर्षण है । -- पटके खाये हुए चमकते हुए तोन के कौनस्टर के समान धामोनी के गढ़, पत्थर, जंगल और बोहड़ पर हटे-फूटे या तोड़े-मरोड़े हुए ? " इतिहास का विकृत प्रतिबिम्ब नहीं देखना है इसलिए यह किसी बड़े मुगल मन्त्री का जन्मस्थान रहा हो तो अथवा किसी बड़े मुगल सम्राट का शिविर तो भी, हम जनसाधारण के लिए कोई बड़ा महत्व नहीं रखते । उससे ऊपर, परन्तु वहाँ, एक सहज, स्वाभाविक और स्वच्छ चहल-पहल थी, गोड़ों का एक जनराज्य था जिसको सामान्तोय ढाँचे ने कुछ अवश्य दिया था, परन्तु बिल्कुल परिवर्तित नहीं कर पाया था, उसको देखना है और वही हमारे लिये कुछ महत्व रखता है, परन्तु " कचनार " में केवल इसी के दिग्दर्शन का प्रयत्न नहीं है ।" ﴾ 18 ﴿

" उपन्यास का प्रधान नारो-चरित्र कचनार अमर कंटक को यात्रा में नर्मदा प्रपात के निकट स्थित एक बंगाली साधू को कुटो से बाहर दिन में वर्मा जो को दिखलायो पड़ो एक युवती का प्रतिबिम्ब है ।" ﴾19﴿ सम्पूर्ण कथानक में एकमात्र कचनार का व्यक्तित्व अथवा चरित्र हो महत्वपूर्ण प्रभावोत्पादक और प्रधान है अत: उसी के आधार पर उपन्यास का नामकरण सार्थक है ।

3.3 स्वतंत्रता के पश्चात उपन्यास :-

भारतीय इतिहास में स्वातंत्र्योत्तर युग का अपना विशेष महत्व रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति भारतीय जीवन की एक ऐसी महान घटना है, जिसने न केवल राजनीतिक क्षेत्र को ही मोड़ दिया था अपितु सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में नयी परिस्थितियों एवं नयी समस्याओं के द्वन्द्व को जन्म दिया है। स्वाधीन भारत के पास एक ओर सपने, आशाएँ और आकांक्षाएँ रही तो दूसरी ओर उभरती हुई आर्थिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक आदि अंतरंग तथा पड़ोसी देशों से युद्ध तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधी आदि की बाह्य समस्याएँ रही है। भारतीय जनता ने आजादी के लिये काफी संघर्ष किया क्यों कि आज़ादी स्वयं एक मूल्य है शायद सबसे बड़ा मूल्य आज़ादी के बिना भारत के निर्माण की आकांक्षा एक स्वप्न ही बनी रहती। आज़ादी के बुनियाद पर ही नये भारत की इमारत खड़ी हो सकती थी। स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के जीवन में जितनी तेज़ी से और जितने बहुमुखी परिवर्तन हो रहे है उतने संभवत: देश के इतिहास में कभी नहीं हुये।

स्वतंत्रता के पश्चात जिस प्रकार हम हिन्दी के अन्य क्षेत्रों में पर्याप्त विकास की स्थिति अनुभव करते हैं उसी प्रकार का निष्कर्ष ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के संबंध में स्वीकार किया जा सकता है । कथावस्तु, ऐतिहासिकता, सौन्दर्य बोध, कल्पना, वातावरण आदि सभी दृष्टियों से ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य समृद्ध हुआ है यह निःसंकोच कहा जा सकता है । एक ओर वृन्दावनलाल वर्मा जैसे उपन्यासकार है जिनमें वीर रस तथा ओज तत्व की प्रधानता ऐतिहासिक प्रामाणिकता है तो दूसरी ओर यशपाल जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लेखक भी हैं जिन्होंने इतिहास के प्रसिद्ध एकाध पात्र को लेकर, तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत कर वैचारिक आधार पर हमारे समक्ष रखा है । एक ओर राहुल और यशपाल ऐसे मार्क्सवादी चित्रांकन करने वाले ऐतिहासिक उपन्यासकार हुए हैं तो दूसरी ओर पात्रों की नवीन व्याख्या करने तथा इतिहास के सम्पूर्ण काल पर प्रकाश डालने वाले रांगेय राघव जैसे लेखक भी हुए है । डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है । स्वतंत्रता के पश्चात् 1947 से लेकर 1961 तक इन छोटे काल में विविधता आई और शीघ्रगामी परिवर्तन, उत्थान-पतन, नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ है । स्वतंत्रता के उपरान्त के उपन्यास साहित्य में मूल्य बोध में भी पर्याप्त अन्तर आया है । स्वतंत्रता के पूर्व स्वतंत्रता-प्राप्ति और आत्म-बलिदान की समस्या थी, सामाजिकता की प्रधानता थी ।

स्वतंत्रता के उपरान्त वैयक्तिकता की प्रतिष्ठा हुई है - प्रबुद्ध सामाजिक निर्माण की भी आवश्यकता हुई है और अनेक नवीन समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यास विश्वातीत धरातल के प्रति आस्था से सम्बद्ध होकर पवित्रता, नैतिकता, आत्म विश्वास, मानव सेवा, दृढ़ता, समानता, करुणा तथा परोपकार आदि मूल्यों को उनके परम्परागत गौरव-सहित प्रतिष्ठित करते हुए रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं मूल्यहीनता का विरोध करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् वर्मा जी के निम्नलिखित ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाश में आये हैं। माधव जी सिंधिया, मृगनयनी, टूटे काँटे, अहिल्याबाई, भुवन-विक्रम एवं रामगढ़ की रानी।

3.3.1 माधव जी सिंधिया :-

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी रचना वर्मा जी ने सन् 1948 में की थी लेकिन कुछ कारणवश इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ। इसमें अठारहवीं शताब्दी के पेशवा बालाजी राव के पटेल माधव जी सिंधिया का जीवन चरित्र वर्णित है। इसका कथानक इस प्रकार है -

" पूना के पड़ौसी हैदराबाद के निजामुल मुल्क के निधनोपरान्त मराठों की सहायता से हैदराबाद पर अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील निजाम के पुत्र गजीउद्दीन को उसके भाइयों ने विष देकर हत्या कर दी। तदुपरान्त उसके भाई - भतीजे दो दलों में बँट गए। एक दल ने फ्रांसीसियों का सहारा लिया तथा दूसरे ने मराठों का।

फ्राँसीसी सेना नायक बुसी खूब सीखे - सिखाये और यूरोपियन सैनिकों को लेकर एक दल में शामिल हो गया। हैदराबाद मराठों के हृदय में काँटे के समान चुभ रहा था। वे उसे भूल नहीं सकते थे अत: उन्होंने दूसरे दल का साथ देना सहर्ष स्वीकार किया। उन्हें पुर्तगाली, फ्राँसीसी और आगे आनेवाले अंग्रेज़ भी स्पष्ट शत्रु दिखलाई पड़ रहे थे। उसी समय रुहेलों और अवध के नवाब सफदरजंग के मध्य युद्ध छिड़ गया। सहायतार्थ आए अहमदशाह अब्दाली के लौट जाने पर सफदरजंग ने मराठों तथा भरतपुर के जाट राजा सूरजमल से सहायता माँगी। मल्हर राव होलकर तथा रानो जी सिंधिया का पुत्र जयप्पा सिंधिया मराठों की तरफ से उसकी सहायता के लिए आए। सूरजमल ने भी सहायता देना स्वीकार किया। इन तीनों की सम्मिलत शक्ति के सम्मुख रुहेले ठहर नहीं सके और कुमायूँ की जाड़ियों और जंगलों में भागकर छिप गए। उसी समय अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण कर लाहौर मुल्तान को अपने अधीन कर लिया। दिल्ली के बादशाह अहमदशाह ने उसके साथ संधि कर ली। निजाम के विरुद्ध लड़नेवाले सेना के नायक रानो जी सिंधिया के दो पुत्र थे -- दत्ता जी और माधव जी। माधव जी पत पुरन्दरे और हरावल के नायक कन्नह त्रिम्बक भी उनके साथ थे। उस समय निजामुल मुल्क का तीसरा लड़का रुलावत जंग हैदराबाद का निज़ाम था। उसने मराठा सेना से हार-कर संधि कर ली।

"सम्पूर्ण स्थितियों से अवगत गजीउद्दीन के पुत्र शिहाबुद्दीन ने सिन्धिया भाइयों - दत्त जी और माधव जी - से मैत्री संबंध स्थापित करने की न केवल प्रार्थना की वरन माधवजी पर अनुराग प्रकट कर उन्हें अपने पक्ष में भी करना चाहा।"§20§ उसने अपने उस्ताद §शिक्षक§ अकीबत खाँ कश्मीरी के बताये मार्ग पर चलकर, अवध के सूबेदार और दिल्ली बादशाह के वजीर सफदरजंग की हवेली पर धरना दे, उसकी सहायता से मीराबख्शी का पद ले लिया। इस क्रम में वह सफदरजंग का बेटा बना और सफदरजंग के पुत्र शुजाउद्दीला का पगड़ी बदल डाला।

दिल्ली के बादशाह अहमदशाह में सफदरगुज के विरुद्ध कोई कार्य करने का साहस नहीं था।" सफरदरजंग केवल उसका वजीर ही नहीं, भूत भी था जिसमें वह भय खाने के साथ - साथ घृणा भी करता था, कारण उसने उसके सबसे बड़े परिषद को जान से मरवा डाला था।"§21§ उसी समय रुहेलों का सरदार नजीब दिल्ली के साम्राज्य को हथियाने की नीयत से वहाँ आया और शिहाबुद्दीन के प्रयत्नों से वजीर सफदरजंग का नौकर बन गया।

मराठों के मध्य भी उस समय फूट और कलह वर्तमान थी। मनमौजी राजा साहू जी के निधनोपरान्त राष्ट्रीय राजसत्ता ब्राह्मण प्रधान-मंत्री बालाजी पेशवा के हाथ में चली गई। पेशवा किसी प्रकार परिस्थिति को संभाले हुए थे। राजधानी सतारे से उठकर पूना चली आई थी। पेशवाई के मार्ग में कई काँटे बिछे हुए थे। एक काँटा थी -

साहूजी के छोटे भाई की पत्नी सत्तर वर्षीया ताराबाई। वह सतारा में आपसी फूट और द्वेष फैलाकर परिस्थिति को जटिल से जटिलतर बनाती जा रही थी। वह पेशवा की सत्ता के विरुद्ध षड्यंत्र रच सिर उठानेवाले सरदारों, सामन्तों के उत्पातों में सहयोग दिया करती थी। पेशवा के कहने पर माधवजी सिंधिया उसे समझा-बुझा कर शान्त करने के लिए सतारा गए पर असफल रहे। कर्नाटक युद्ध को सफलतापूर्वक समाप्त कर पेशवा ने ताराबाई से स्वयं मिलकर उसे कुछ सीमा तक शान्त किया। दूसरा काँटा था। -- बाजीराव पेशवा का कनिष्ठ भाई सदाशिव राव भाऊ। बालाजी पेशवा ने सहनशील दूरदर्शिता से काम ले उसे अपना प्रधानमंत्री बना दिया। तदुपरांत मराठा सेना ने जाटों को युद्ध में परास्त किया। पराजित सूरजमल ने, अंत में, मराठों से संधि कर ली। युद्ध की समाप्ति के बाद शिहाब के उस्ताद अकीबत खाँ कश्मीरी के आग्रह करने पर बादशाह ने शिहाबुद्दीन को वजीर बनाया। शिहाबुद्दीन ने अहमदशाह को गद्दी से उतारकर औरंगजेब के प्रपौत्र बावनसाल के दुबले - पतले शाहजादा के अजीजुद्दौला (आलमगीर द्वितीय) को किले के भीतर के कैद खाने से मुक्त कर बादशाह बनाया। अहमदशाह और उसकी माँ उधमबाई को उसने कैद कर लिया।

उसी समय पेशवा को ताराबाई के सिर उठाने और निजाम से खटपट होने की सूचना मिली। उस समय माधवजी पूना में ही थे।

उन्हें सूचना मिली कि उनके बड़े भाई को जोधपुर में कत्ल कर दिया गया। इसी समय हैदराबाद के निज़ाम ने फ्रांसीसी जनरल बासी के नीचे सेना के एक अच्छे पद पर काम करनेवाले अफ़सर इब्राहीम खाँ जर्दी को सेना ने बरखास्त कर दिया। इससे क्षुब्द - क्रुद्ध गार्दी के प्रार्थना करने पर पेशवा ने उसे अपने यहाँ रख लिया। पेशवा ने रघुनाथ राव राघोवा को पूना के माल विभाग का प्रबन्ध सौंप माधवजी को मालवा, राजपूताना होते हुए दिल्ली और पंजाब की ओर जाने तथा दत्ता जी और मल्हरराव के साथ काम करने के लिए कहा लेकिन उसी समय हैदरअली और हैदराबाद के निजाम अली से पेशवा का युद्ध छिड़ गया। हैदराबाद ने पराजित होकर मराठों से संधि कर ली, हैदरअली भी हार गया।

इस बीच कर्नाटक पर मराठों का अधिकार हो गया, हैदराबाद ने भी हारकर उसके साथ सन्धि कर ली लेकिन पेशवा की पत्नी गोपिका बाई के क्रोधी स्वभाव के कारण मराठों में भी एकता नहीं थी। दत्ता जी की मौत तथा मराठों की हार का समाचार सुन पुन: पेशवा के पुत्र विश्वास राव को प्रधान सेनापति और सदाशिव राव भाउ को उप सेनापति बनाकर भेजा गया। अधिनायकों में इब्राहीम गद्दी, मल्हरराव, जनकोजी, माधवजी सिंधिया आदि थे। सूरजमल और शिहाबुद्दीन ने भी मराठों का साथ दिया। 3 अगस्त, 1760 को

दिल्ली मराठों के हाथ आ गई। आगे का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए दिल्ली में एक सभा बुलाई गई जिसमें भाऊ ने सूरजमल के साथ बुरा बर्ताव किया , जिससे क्षुब्ध, कुपित सूरजमल और उसके साथ शिहाब ने सभा का त्याग किया। विश्वासराव के कहने पर मल्हरराव और माधवजी उन्हें मनाने के लिए गए पर वे दोनों भरतपुर चले गये और अपने साथ अपनी सेना भी लेते गए, जिससे मराठों की शक्ति क्षीण हो गई। शाह आलम को दिल्ली का बादशाह तथा शुजाउद्दौला को वजीर घोषित कर अन्न की कमी को दूर करने के अभिप्राय से मराठा सेना से अब्दाली के कुंजपुरा में स्थित अन्न भंडार पर आक्रमण कर उसे अपने कब्जे में कर लिया। लेकिन लगातार अन्न के अभाव के कारण, पर्याप्त सहायता और उत्साह की कमी के कारण मराठा सेना हारने लगी। अब्दाली की सेना से यद्यपि उसका डटकर मुकाबला हुआ पर इस युद्ध में विश्वास राव, सदाशिव राव भाऊ, इब्राहीम, गार्दी मारे गए, धन - जन की काफी क्षति हुई। माधवजी बालाजी, जनार्दन किसी तरह बच निकले। मल्हरराव इन्दौर चला गया। लौटते समय उसने पुन: संधि पत्र भेजा पर वह मराठों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया अत: उसने शुजाउद्दौला को वजीर तथा शाह आलम को बादशाह बना दिया।

इस बीच बालाजी पेशवा की मृत्यु हो गई और उनका मंझलापुत्र माधवराव पेशवा बना तथा रघुनाथ राव राघोवा उसका अभिभावक

और बालाजी जनार्दन नाना फड़नीस। माधवराव का अभिभावक न बन पाने के कारण गोपिका बाई आग बबूला होकर अपना एक अलग दल संगठन करने में लग गई। रघुनाथ राव स्वयं पेशवा बनने की तैयारी करने लगे। उसने निजाम से मिल उसे पूना लूटने के लिए उकसाया।

एक रात जवाहरसिंह ने किसी तरह गन्ना बेगम से मिलकर उसे भगा ले जाने की गुप्त मंत्रणा की और शिहाब को अपने आश्रय से निकाल उसे फर्रुख़ाबाद जाते समय मार्ग से पूर्व योजनानुसार गन्ना बेगम को ले भागने का प्रयत्न किया पर असफल रहा। बाद में गन्ना बेगम उम्दा बेगम की सहायता से स्वयं सिक्खवेश में जवाहरसिंह से मिलने के लिये भाग निकली, मार्ग में जयपुर के सिपाहियों द्वारा जवाहरसिंह की कामुकता और नीचता (नाहर सिंह की विधवा पत्नी से विवाह करने की उसकी चेष्टा) से अवगत होकर माधवजी सिंधिया के पास सिक्खवेश में ही, गुनीसिंह नाम से नौकरी करने लगी।

एक दिन जब माधवजी ने गुनीसिंह के तम्बूरे पर खुदे नाम "गन्ना बेगम" को देख लिया, गुनीसिंह के लिए, अपना वास्तविक रूप छिपाकर रखना असंभव हो गया। वह गन्ना बेगम के रूप में प्रकट हो गयी। इस समय शाहबली अल्लाह फकीर ने जिस "सल्तनते जम्हूरियत" की संस्थापना की थी उसका वारिस शाह अब्दुल अजीजहर जगह दौरे

पर दौरा कर लोगों का संगठन कर रहा था। उसी समय जम्हीरियत के अब्दुल अजीज की मजलिस में, शिहाब तथा उक्त सम्प्रदाय की गुप्त बातों को जान माधवजी को अवगत और सावधान करने के अभिप्राय से गन्ना बेगम माधवजी से अनुमति लेकर सम्मिलित हुई परन्तु वहाँ शिहाब ने उसे सुन्दर स्त्री समझ पकड़वा लिया। वह नूराबाद ले आयी जहाँ उसने विषपान कर अपना जीवन समाप्त कर दिया और मरने से पूर्व एक कागज पर लिख दिया --" आह! गमये गन्ना बेगम"। गन्ना को शिहाब के आदमियों द्वारा गायब किये जाने की सूचना मिलने पर माधवजी वहाँ गये पर तब तक वह मर चुकी थी। वे उसकी समाधि पर फूल चढ़ा खिन्न मना, उदास लौट आये।

इसी समय दिल्ली के बादशाह शाहआलम और मीरबख्शी जाबितखाँ में युद्ध हुआ। जाबिता हारकर भाग गया। वह सिक्ख हो गया और उसने अपना नाम रखा धर्मसिंह। उसके पुत्र गुलामकादिर को हिजड़ा बनाकर छोड़ दिया गया। उसी समय मराठों का अंग्रेजों से ताली गाँव में युद्ध हुआ। माधवजी ने अंग्रेज़ों को हराया और उनसे बाउ गाँव की संधि लिखवाई जिसके अनुसार सालसिट इत्यादि टापू और गुजरात का अपहृत प्रदेश छोड़ने की बात अंग्रेज अफसरों ने स्वीकार कर ली। अंग्रेज पुन: इस सन्धि को खंडितकर आगे बढ़ने लगे लेकिन चूँकि अर्थ - संकट अंग्रेज़ों और मराठों - दोनों के साथ था। अत: दोनों के बीच सालवाई की सन्धि हुई। इन्हीं दिनों हैदरअली, जो अंग्रेज़ों

से लड रहा था, मर गया। उसके बाद उसका पुत्र टीपू अंग्रेज़ों से लड़ने लगा। मराठा टीपू को सहयोग देना चाहते थे पर चूँकि उसने सहस्रों हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था अत: उसे सहायता पहुँचाने में उन्हें संकोच होता था।

इसी समय शिहाब ने रामलाल नाम के एक जाट युवक को माधवजी के पास भेज उसे अंगरक्षकों में भर्त्ती कर लेने की सिफारिश की। माधवजी ने उसे अपने साथ पास रख लिया। शिहसब ने उसे भेजा था। माधवजी का वध करने के लिये, पर उनके व्यक्तित्व से प्रभावित वह उनका अन्धभक्त बन गया। माधवजी की सेना ने इस्तमाइल को हराकर कैद कर लिया। तत्पश्चात् उनके सैनिकों ने जयपुर जोधपुर और मेवाड़ को भी युद्ध में परास्त किया।

इसी समय माधवजी को पूना से सूचना मिली कि नाना फड़नीस अंग्रेज़ों और निज़ाम की सहायता से टीपू को नष्ट कर प्राप्त राज्य का हिस्सेदार बनाना चाहते हैं। माधवजी अंग्रेज़ों की शक्ति का क्षीण बनाये रखने के लिये टीपू के अस्तित्व को आवश्यक समझते थे। उनकी विराट धारणा थी - टीपू सशक्त बना रहेगा तो अंग्रेज़ों से टक्कर लेता रहेगा। अत: उन्होंने नाना को समझाया कि अंग्रेज़ों की शक्ति बढ़ने न दी जाय। पूना पहुँच उन्होंने माधवराव नारायण द्वितीय को, जो उस समय लगभग 17 वर्ष का हो गया था, एक

विराट आयोजन कर दिल्ली बादशाह द्वारा की गई खिलत प्रदान की। इसमें उन्हें पेशवा के निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला। पेशवा उस दिन से उन्हें बहुत मानने और उनसे सम्पर्क बढ़ाने लगे। इससे अंग्रेज़ों को अपना अस्तित्व संकट में दिखाई पड़ा। नाना फड़नीस और तुकोजी भी जल - भुनकर माधवजी के विरोधी बन गये। इसी बीच राने खाँ का देहान्त हो गया। इससे माधवजी को बहुत परिताप हुआ, उन्होंने उसके पुत्र को उसका पद दे दिया। संदेहवश पान पहले रामलाल ने खाया पीछे माधवजी को खाने दिया। दोनों की इससे मृत्यु हो गई। माधवजी को विष - दान के रहस्य के प्रकट हो जाने पर भयंकर उपद्रव होने का संदेश हुआ, अत: उन्होंने मरने से पूर्व अपने सभी मुख्य सेना नायकों से इसे रहस्य ही बना रहने के लिये आग्रह किया - "मैं सिपाही की मौत ही तो मर रहा हूँ।

देखो, यह प्रकट न होने पावे कि मैं कैसे मर रहा हैं। नहीं तो पूना, महाराष्ट्र और सारा देश तलवारों का अखाड़ा बन जायेगा --- अंग्रेज़ चट दौड़ेंगे। टीपू, निजाम और न जाने कितने और। कठिनाई से जमाया हुआ स्वराज्य तुरंत हाथ से चला जायेगा। अपने पीछे सेना संचालन का भार उन्होंने अपने भतीजे दौलतराव पर सौंपा। इस तरह भारतीय संस्कृति की स्थापना के लिये तत्पर, प्रयत्नशील महान् राजदर्शी माधवजी सिंधिया की इस लोक की यात्रा समाप्त हो गई।

समीक्षा :---

उपन्यास में आई मुख्य कथा - मराठों की - दो पक्ष हैं-- उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में मराठों की स्थिति व गतिविधि, किन्तु उपन्यास में मराठों की उत्तर भारत में गतिविधि का ही अधिक विकास हुआ है। उपन्यास के प्रारम्भ में दक्षिण भारत में मराठों की गतिविधि, उनके घरेलू झगड़ों, बालाजी राव पेशवा की शिथिल एवं विवशता - का वर्णन तनिक विस्तृत है। यह वर्णन मुख्य कथा के उक्त दोनों पक्षों की भूमिका के रूप में है। उपन्यास के मध्य में उत्तरी पक्ष प्रधान हो गया है। दक्षिणी पक्ष परोक्ष (नेपथ्य) में रहकर तीव्रता से घटित घटनाओं तथा दो पेशवाओं (बालाजी राव और नारायण राव) की मृत्यु, रघुनाथराव राघोबा के षड्यंत्र आदि की साधारण सूचना मात्र देता है। अंत में प्रबल राव और प्रधान उत्तरी पक्ष माधवजी के साथ संयुक्त होकर दक्षिणी पक्ष में अन्तर्मुक्त हो जाता है। माधवजी उत्तरीपक्ष के राजनीतिक क्षेत्र से संबंध - विच्छेद कर पूना की राजनीति में व्यस्त हो जाते हैं, पुन: उन्हें उससे बाहर निकलने का मौका नहीं मिलता और उनकी मृत्यु हो जाती है।

वर्मा जी का उद्देश्य था माधव जी के जीवन चरित्र अथवा व्यक्तित्व को प्रकाश में लाना लेकिन उन्होंने स्पष्टत: स्वीकार किया है --"माधव जी सिंधिया का जीवन चरित्र न लिखकर

उपन्यास लिखने का संकल्प मैं ने इस कारण किया कि बड़ी मात्रा में कल्पना के लिए गुंजाइश मिल गई। परन्तु मैं ने कल्पना को भी इतिहास मूलक रखा है।§22§

अतः उपन्यास में प्रधान चरित्र यही हैं और इन्हीं के आधार पर उपन्यास का नामकरण सब प्रकार से उचित और सार्थक है। पूरे उपन्यास में एकमात्र यही एक ऐसे चरित्र है जो आद्यन्त वर्तमान हैं। उपन्यास में भार सभी पात्रों एवं घटनाओं से किसी - न - किसी रूप से इसका संबंध अवगत है। इनका उपन्यास में पदार्पण बीस वर्ष की अवस्था में होता है और उपन्यास की समाप्ति इनकी मृत्यु से होती है।

उपन्यास में जिन प्रमुख व्यक्तियों और घटनाओं का वर्णन हुआ है — वे सब इतिहास - सम्मत हैं। नारी पात्रों में गन्ना बेगम और उम्दा बेगम इतिहास प्रसिद्ध हैं। कल्पना प्रसूत पात्रों और घटनाओं को भी उपन्यासकार ने इतिहास मूलक ही रखा है।

3.3.2 टूटे काँटे :—

फतेहपुर सीकरी के एक साधारण ग्रामीण किसान मोहनलाल जाट के पास धन-सम्पत्ति के नाम पर एक छोटा सा घर, थोड़ी - सी अच्छी खेती, दो साधारण बैल और एक भैंस थी। परिवार में खाने-कमानेवाले तीन थे। मोहन स्वयं, दूर केनाते का उनका भाई तोता तथा उसकी पत्नी रोनी। रोनी के रूप में आकर्षण था पर स्वभाव उसका कुछ भड़कीला तथा वाणी तीखी थी। वह झगड़ालू प्रकृति की एक कर्कशा नारी थी। अपनी दरिद्रता, जमादार तथा कानूनगों के अत्याचार और पत्नी के रूखे - कड़वे व्यवहार से क्षुब्ध, पीड़ित मोहन एक दिन ऊबकर गाँव को छोड़ अन्यत्र जाकर कुछ कमाने की इच्छा मन में धारण कर घर से निकल पड़ता है और संकल्पों - विकल्पों के बीच में झूलता, चक्कर काटता हुआ दिल्ली के मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के मीरबख्शी भारत खाँ की छावनी से आगरा के निकट पहुँच, फौज के एक दस्ते में भर्ती हो जाता है। वह पूना के बाजीराव पेशवा की मराठी सेना की शाही सेना से पराजय के समय शुबराती नाम के एक मुसलमान मराठा सैनिक को रहमकर छोड़ देता है। इस विजय के उपलक्ष्य में सादत खाँ की छावनी में आयोजित उत्सव में किसी प्रकार सम्मिलत हो वह प्रसिद्ध नर्तकी और गायिका नूरबाई का नृत्यमय संगीत देखता और सुनता है। पुन: मराठा युद्ध में शाही

सेना की तरफ से लड़ते समय उसकी मुठभेड़ शुबरानी से होती है। शुबरानी के प्रहार से उसे थोड़ी चोट लगती है और वह घोड़े से गिरकर अचेत हो जाता है। शुबरानी दूसरी बार प्रहार कर उसे समाप्त कर देना चाहता है। लेकिन उसी समय उसे पहचान वह उसकी रक्षा करता है। उसीकी बदौलत उसे (मोहन को) वहीं मराठा सेना में नौकरी मिल जाती है।

इस बीच मोहनलाल के दिल्ली के निकट शाही और मराठी सेना के बीच हुए संघर्ष में मारे जाने और लाश के लापता और रोनी को मिलती है। वे हिन्दू धर्मानुसार उसके क्रिया कर्म (श्रद्धादि) से निवृत्त हो, जमादार, कानूनगो आदि के दुर्व्यवहार से संतप्त, अपनी जमीन तथा घर अपने गाँव के एक परिचित के पास धरोहर रूप में रख, धनार्जन कर अपनी जीवन-स्थिति में, सुधार लाने के उद्देश्य से गाँव का त्याग करते हैं और भरतपुर के एक विधुट पर वृद्ध जाट के घर आश्रय लेते हैं। आश्रयदाता सोचता है -- किसी दिन उसका 13,14 साल का लड़का जब सयाना हो जायगा तब रोनी बनी - बनाई बहू उसके लिये घर में बिना कुछ खर्च किये हुए ही सुलभ रहेगी। रोनी सुन्दर सलोनी थी ही। अतः उसे बूढ़े का स्नेह अधिक मिलने लगता है, तोता को कम। यहाँ रहते हुए रोनी का तोता के प्रति स्नेहाकर्षण बढ़ता है। उसकी धन लोलुपता से विवश होकर तोता डाके और बटमारी के कार्यों में रुचि लेने लगता है।

एक दिन मोहन अपने बड़े भाई के साथ उज्जैन पहुँचता है और अवसर निकालकर सन्यासी त्रिशूलानन्द का दर्शन करने जाता है। वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित भी होता है। इसके बाद वह अपने बेड़े के साथ भोपाल पहुँचता है। यहाँ मराठा सेना का निजाम की सेना के साथ युद्ध होता है। इस समय मुहम्मदशाह का एक पत्र निजाम के पास, काफिरों के माल्वा से बाहर निकाल फेंकने का, आता है और दूसरा पत्र बाजीराव के पास इस आशय के साथ था कि निजाम की वफादारी डिग गई है, वह अपनी अलग सल्तनत कायम करना चाहता है, उसको कुचल दो। निजाम मराठा सेना से हारकर सन्धि कर लेता है। सन्धिवार्ता के क्रम में दोनों को बादशाह की नीयत का पता लग जाता है। इसी समय निजाम के पास बादशाह का फरमान - "नादिरशाह ने सिंध नदी को पारकर लाहौर की तरफ पैर बढ़ाया है, तुरन्त ससैन्य दिल्ली आओ"- आता है। नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण में निजाम को अपना तथा अपने दल का हित दिखाई पड़ता है अत: वह सेना का एक छोटा - सा दस्ता, जिसमें शुबराती और मोहन भी थे, राजा की रक्षा को पुष्ट करने के लिये दिल्ली भेजता है। यह दस्ता उज्जैन होता हुआ आगरा पहुँचता है। उज्जैन में अपने दस्ते के विश्रामार्थ ठहरने पर मोहन अवसर निकाल त्रिशूलानन्द से मिलने जाता है और आत्मरक्षार्थ, धूनी में से थोड़ी सी भभूत के प्रदान को, गाँठ में बाँध लेता है। आगरा पहुँच वह अपने दस्ते के

नायक से दो दिन की छुट्टी माँग उल्लसित मन, कल्पना की रंगीन दुनिया में भ्रमता, अनेक स्वप्नों को सजाता हुआ अपने गाँव फतेहपुर गाँव फतेहपुर सीकरी कुछ रात गये पहुँचता है। तोता और रोनी के घर छोड़ भरतपुर चले जाने के बाद से उसका घर अलाव तापने वालों के लिये जमाव का एक स्थान बन गया था। गाँववाले उसका उपयोग उसी रूप में करने लगे थे। गाँववाले जानते थे कि मोहन मर चुका है अतः उसे साक्षात् अपने सम्मुख घर के दरवाजे पर खड़ा शिष्टाचार का रस्म अदा करते देख उसे प्रेत समझ भयवश घर के अन्दर इधर उधर चुकने-छिपने तथा बन्दूक तलवार आदि से उसका सामना करने की तैयारी करते हैं।

प्रसिद्ध नर्तकी नूरबाई पहले मुगल - सम्राट मुहम्मद शाह के मीरबख्शी सादत खाँ की महफिल में थी। " सादत खाँ उसके रूप - सौन्दर्य और कला के प्रति आकृष्ट हो उससे प्रेम करने लगा था लेकिन उसके प्यार और बहुमूल्य आभूषणों की वर्षा से तृप्त न होकर नूरबाई दिल्ली के शाही महल में सम्राट के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन [मुजरा] करने की आकांक्षा रखती है।" [23] और अपनी इस आकांक्षा से उसे न केवल अवगत कराती है वरन् उससे उसका प्रबन्ध करा देने का आग्रह भी करती है। सादत खाँ उसे ऐसा करने का आश्वासन देता है अवश्य पर प्रयत्न की दिशा में कदम बढ़ाता नहीं नजर आता है। नूरबाई उसकी नीयत को   काँप उस्ताद से गुप्त मंत्रणा करती है।

उस्ताद के प्रयत्न से सादत खाँ के पास नूरबाई को दिल्ली भेजने का फरमान आ जाता है। इससे नूरबाई भीतर - ही-भीतर उल्लसित होती है और ऊपर से खिन्नता दिखलाती है जिसे सादत खाँ पहचान नहीं पाता है और उसे दिल्ली भेजने में आनाकानी, टाल मटूल, बहानेबाजी करता है उधर उस्ताद का गुप्त प्रयत्न बादशाह को हठ पर चढ़ा देता है।

दूसरे दिन जब नादिरशाह उससे बादशाह से हर्जाने के रूप में बीस करोड़ रुपये दिलाने का कड़ा अनुरोध करता है और नूरबाई को अपने साथ ईरान ले जाने की बात कहता है, सादत खाँ को मर्मान्तक पीड़ा होती है और वह आत्मघात कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। उसके आत्मघात का समाचार सुन नूरबाई उसकी दी हुई पहुँचियों और हार को अपने शरीर से उतारकर एक संदूक में बन्द कर देती है इस भयाशंका से कि कहीं उन गटकों के कारण मृत की आत्मा उसके पास आ ना जावे। इसी समय मोहन लाल मराठी सेना के अपने दस्ते को छोड़ पुन: अपने पुराने शाही दस्ते में भर्ती हो जाता है। ईरानियों की छावनी, जिसके भीतर महम्मदशाह की छावनी कैद थी। दिल्ली की ओर चल पड़ती है। कुरुक्षेत्र में उस समय एक मेला लगा था। सैनिकों को वे पहुँचने का समाचारी सुन मेला तो उखड़ जाता है पर कुछ नागे साधू बने रहते है, जिनमें त्रिशूलानन्द भी थे। मोहन उनके दर्शनार्थ जाता है। और दर्शन कर लौट आता है। ईरानी सिपाही

भी वहाँ चलेजाते हैं और इधर - उधर घूमने के क्रम में कुतूहलवश त्रिशूलानन्द के त्रिशूल आदि को उठाकर देखने लगते हैं। इससे सहज कोपी त्रिशूलानन्द क्रुद्ध होते है परिणामत: बात बढ़ती है और ईरानी सिपाही सभी नागे साधुओं को कत्ल कर देते हैं। नूरबाई नादिरशाह के साथ ईरान किसी भी कीमत पर जाना नहीं चाहती है अत: वह एक रात किले से बाहर निकल पहेर पर स्थित मोहनलाल जाट के साथ भाग निकलती है। अन्त में वह सत्तर करोड़ से ऊपर की रकम और तख्त ताऊस के साथ चार हज़ार खूबसूरत खवासियों को साथ लेकर दिल्ली से ईरान के लिए प्रस्थान करता हैं।

लुटेरों को एक दस्ते का सरदार होकर भी चिंतामन मोहन और नूरबाई के प्रति हमदर्दी दिखलाता है और उन्हें अपने यहाँ रहने की समुचित व्यवस्था कर देता है। एक रात वह महाराष्ट्र जा रहे मराठा राजदूत के एक दस्ते पर छापामार घायल शुबराती को सरदार समझकर उससे रुपया ऐंठने के लोभ से अपने घर लाता है। शुबराती का अभिन्न मित्र मोहन उसे पहचान उसकी सेवा-सुश्रूषा करता है। एक हज़ार रुपये हर्जाने के रूप में मराठों से ले शुबराती को अपनी कैद से मुक्त करने के चिंतामन के निश्चय से अवगत हो मोहन अपने मित्र को उसकी कैद से छुड़ाने के उद्देश्य से नूरबाई के पास सुरक्षित जवाहरातों में से कुछ को बेच रुपये लाने के लिये आगरा जाता है। चिंतामन को उसकी नीयत पर शंका होती है और वह कुछ आदमियों को, उसकी गतिविधि को

चुके - छुपे निगरानी करते रहने के लिए उसके पीछे लगा देता है। ये सभी मोहन को आगरा में एक जौहरी की दूकान पर बैठा देखते हैं। लौटते समय भी वे मोहन के पीछे - पीछे चलते हैं। ठीकाठीक दुपहरी में एक नाले के पास पहुँच मोहन की इच्छा जलपी अपनी प्यास बुझाने तथा थोड़ी देर विश्राम करने की होती है। इसी समय लुटेरों का एक दल, जिसका नायक तोता है, वहाँ आ पहुँचता है। अपने सम्मुख कुछ दूरी पर मोहन को खड़ा देख तोता भयाक्रांत भूत - भूत चिल्लाता हुआ भागता है, उसके साथी लुटेरे भी भागते हैं, मोहन का पीछे करनेवाले जन भी भाग जाते हैं। मोहन चिंतामन को एक हज़ार रुपये दे शुबराती और नूरबाई को साथ ले उस गाँव का त्याग करता है और मथुरा की दिशा में प्रस्थान करता है। जब मोहन चिंतामन के यहाँ अतिथि के रूप में ठहरा था चिंतामन को अपनी पत्नी से इस बात की जानकारी हो गई थी कि नूरबाई के पास काफ़ी धन-सम्पत्ति है और उसे उसने अपनी कमर में लिपटी बँधी बसनी में छिपा रक्खा है, लेकिन उस समय आश्रय के लिए घर पर अतिथि के रूप में ठहरे जन को लूटना धर्म के विरूद्ध आचरण समझ उसने उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की थी। लेकिन जब वे दोनों उसका घर छोड़ मुसाफिर बन जाते है। तब धर्म के बन्धन से स्वयं को मुक्त हुआ जान चिंतामन अपने दल के साथ उन्हें मथुरा जाते हुए मार्ग में रोक लेता है और मोहन को घायल भी कर देता है। नूरबाई धन का मोह त्याग मोहन की

प्राणरक्षा हेतु कमर बंधी लिपटी हीरे - जवाहरातों से भरी बसनी खोल लुटेरों के सामने फेंक देती है। अब उसके मन में नर्तकी के घृणित व्यवसाय द्वारा अर्जित राशि के प्रति कोई मोहासक्ति नहीं रह गई थी। लुटेरों से त्राण पा वे तीनों पहले मथुरा जाते हैं और फिर वृन्दावन।

वृन्दावन पहुँच वे एक पंडे के निवास स्थान के बगल में एक मकान किराये पर ले रहने लगते हैं। शुबराती वहाँ आये मराठी दस्ते, जिसका सरदार बाबूराव मल्हार था, में शामिल हो जाता है और यदाकदा उनसे मिलने मोहन और नूरबाई दोनों कृष्ण -प्रेम में लीन - तल्लीन हो जाते हैं और सुखमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं। नूरबाई यहाँ आकर सरूपा हो जाती हैं। उसे अपने पूर्वनाम से नफरत हो जाती है।

वृन्दावन रहते हुए मोहन तीर्थ और मन्दिरों के साथ - साथ वहाँ दर्शनार्थ आये मुसाफिरों की सुरक्षा के लिए एक सुरक्षा दल निर्माण की योजना बनाता है। कुछ किसान - मजदूर उसका साथ भी देते हैं। जब से भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह को जयपुर नरेश ने ब्रजराज की उपाधि दी थी उसका प्रभुत्व बढ़ने लगा था। लेकिन ब्रज की रक्षा के दृढ़ और अपरिहार्य साधन वह अभी तक नहीं जुटा पाया था। मोहन के उद्देश्य से अवगत हो वह उसे अपने पक्ष में कर लेने का प्रयत्न दूतों के माध्यम से करता है। लेकिन मोहन भरतपुर में नौकर होकर रहने

के लिए मोहन तैयार नहीं होता है। इसी क्रम में दूतों के माध्यम से बदनसिंह को नूरबाई और रोनी के अद्भुत सौन्दर्य की सूचना मिलती है। वह इन दोनों को फँसाकर भरतपुर लाने के उद्देश्य से साधु वेशधारी दो कुटनों को वृन्दावन भेजता है। दोनों मोहन की अनुपस्थिति में उसके घर पहुँच दोनों को बहलाने का असफल प्रयत्न करते हैं और फटकारे जाने पर निराश लौट जाते हैं और जाते - जाते आगे देखने की एक धमकी भी दे जाते हैं। मोहन की इस घृणित कृत्य में चिंतामन का हाथ अवश्य होने का निश्चित विश्वास होता है। अत: वह एक रात सुरक्षादल को साथ ले चिंतामन को जा घेरता है और उससे नूरबाई के हीरे - जवाहरातों की थैली माँग वापस ले आता है, साथ ही उसे भरतपुर के बदनसिंह के पास चुनौती से भरा एक संवाद भी भेजदेने के लिए कहता है। नूरबाई अपने हृदय में टूटे - काँटों से कसकते अपने गत घृणित जीवन के प्रतीक उस धनराशि को यमुना की जलराशि में फेंक अपने पूर्व कर्मों {भूलों} का प्रायश्चित करती है। वह कृष्ण की भक्ति में मीरा की तरह विह्वल हो उठती है। वह और मोहन दोनों, एक आदर्श प्रेमी - प्रेमिका के रूप में रहने लगते हैं। रोनी भरतपुर से अपनी भैंस आदि सामान लाकर वहीं कृषि - कार्य करने लगती है। यहाँ रहते हुए वह अपने स्वभाव में यथासंभव परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती रहती है।

उपन्यास के प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं -"मुख्य पात्र नूरबाई ऐतिहासिक है। उसकी झाँकी वर्मा जी ने अपने जन्मस्थान मऊरानीपुर की एक महिला से ली है। उन्होंने उसे उस समय देखा था जब वे बहुत छोटे थे परन्तु उसके संबंध में उन्होंने जो कुछ सुना था, उसे कभी भूल नहीं सके थे।"§24§

नादिरशाह के साथ जाने से अनिच्छुक नूरबाई की, मुगल बादशाह के हरम से एक जाट सिपाही की सहायता से उसी के साथ भाग निकलने के बाद की, कथा कल्पित है। मोहन का चरित्र तथा उससे संबंधित घटनाएँ, कर्कशा रोनी, तोता, शुबराती, लुटेरों का सरदार जाट चिंतामन तथा भरतपुर में रोनी और तोता के आश्रयदाता वृद्ध पर विधुर जाट की कथाएँ भी कल्पित हैं।

समीक्षा :---

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है और इसका प्रारंभ उपन्यासकार ने बुंन्देलखण्ड के किसी स्थल से न कर फतेहपुर सीकरी से किया है। इसमें उन्होंने तत्कालीन शान - शौकत, शासन में व्याप्त अनुशासन - हीनता, देश में सर्वत्र फैली अराजकता, ईरान के नादिरशाह के अत्याचार, मराठों, जाटों, निजाम आदि के पारस्परिक द्वेष और संघर्ष आदि सभी राजनीतिक पक्षों के चित्रण के साथ - साथ तद्युगीन साधारण ग्रामीण तथा नागरिक जन जीवन की दयनीय, चिंताग्रस्त जीवन स्थिति आदि

का सफल, सत्य और स्पष्ट चित्रण किया है। उपन्यासकार ने यद्यपि मराठों की एक पंथ - पद्धति, जाटों के पौरुष आदि का आंशिक वर्णन ही किया है, फिर भी उसके भीतर से सामान्य जनता का चारित्रिक और नैतिक बल [शौर्य और नैतिकता] उभरकर ऊपर आ गया है। उन्होंने सामान्य जनता के शौर्य का ओजपूर्ण चित्रण किया है और नैतिकता की आवाज बुलन्द की है। प्रसिद्ध नर्तकी उपन्यास के प्रधान नारी चरित्र का निर्माण उन्होंने इतिहास और मनोविज्ञान के सम्मिश्रण के साथ भक्ति रस का समावेश किया है। उपन्यास में चित्रित नूरबाई का चरित्र पावनता की पुनीत प्रतिमा जैसा है। शुबराती की देशभक्ति भगवती गंगा के समान पवित्र और उज्जवल है। उपन्यास में आए लगभग सभी मुसलमान चरित्र [स्त्री पुरुष] भारतीयता को अपना जीवन प्राण जानते - मानते हैं ।

उपन्यास का कथानक यथार्थ पर आश्रित होकर भी अंत में आदर्श की ओर उन्मुख हुआ है। प्रसिद्ध नर्तकी [वेश्या] नूरबाई के मन-मस्तिष्क में अपने पेशे [घोर नाटकीय वेश्या जीवन] के प्रति वितृष्णा भाव उत्पन्न होता है और परिणामत: वह कृष्ण भक्ति की ओर उन्मुख ही नहीं होती है बल्कि उसमें [कृष्ण भक्ति - प्रेम - रस में] पूरी तरह लीन = तल्लीन हो जाती है, मोहनलाल सिपाहीगिरी का सर्वथा त्याग कर भक्ति रस - धारा में डुबकी लगा उसका साथ देता है, कर्कशा रोनी अपने स्वभाव तथा व्यवहारादि में परिवर्तन या ..

अपने जीवन को सुखी बनाने के प्रयत्न में लग जाती है, लुटेरों के सरदार चिंतामन को अपने पूर्व कर्मों का दंड मिलता है।

उपन्यास में आए पुरुष पात्रों - मोहन, शुबराती, सादत खाँ, बाजीराव मुहम्मदशाह, निजाम, नादिरशाह, चिंतामन आदि में प्रधानता मोहन की है। नारी पात्रों में मुख्य हैं रोनी और नूरबाई उपन्यास के सम्पूर्ण कथानक के मूल में रोनी, मोहन और नूरबाई के चरित्रों की प्रधानता है। कथानक का आद्यन्त संचालन में ही तीन पात्र करते हैं। शेष पात्र उनसे संबंद्ध कथा के सहायक बनकर आये हैं।

आद्यन्त कथानक में गतिशीलता, रोचकता और जिज्ञासा - भाव बना रहा है। उपन्यास का नामकरण ﴾शीर्षक﴿ "टूटे - काँटे" सार्थक और साभिप्राय है। सादत खाँ को मुहम्मदशाह द्वारा नूरबाई का अपहरण टूटे काँटे की तरह चुभ रहा था। अत: वह वैर - प्रति-शोधार्थ नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करता है। उपन्यास के अंत में नूरबाई अपने हृदय में टूटे काँटे से कसकते अपने गत घृणित जीवन के प्रतीक अर्जित धन-राशि को यमुना जल - राशि में फेंक अपने पूर्व कर्मों ﴾भूलों﴿ का प्रायश्चित करती है।

5.5.3 मृगनयनी :--

ग्वालियर राज्यांतर्गत राई नामक ग्राम के एक साधारण गूजर परिवार में उत्पन्न मातृहीन निन्नी अत्यन्त विपन्नावस्था में भी अपने एकमात्र भाई अटल की स्नेह छाया में जंगलों, पहाड़ों के बीच शिकार के फेर में विच रण करती हुई प्रसन्न है। उसे जीवन में उत्साह और प्रेरणा प्रकृति से मिलती है। प्राकृतिक सौन्दर्य को देख वह कल्पना की रंगीन दुनिया में खो जाया करती है। आखेट-कला तीरंदाजी में वह पारंगत है। जंगली सुअर, अरने का आखेट उसके बायें हाथ का खेल है। कायिक श्रम से उसके रूप और गुण में क्रमश: निखार आता जाता है। उसका भाई अटल अपने गाँव की एक अहीर - कन्या लाखी से प्रेम करता है। एक गाँव की होने की वजह से समवयस्का लाखी निन्नी की सहेली बन जाती है। वह भी उसी के समान आखेट कला में निपुण है। अत: दोनों एक साथ आखेट के लिए जंगल जाती है, साथ घूमती - फिरती, परस्पर लड़ती - भिड़ती तथा एक दूसरे से हृदय से स्नेह करती हैं। माँ की मृत्यु हो जाने पर नितान्त अनाथ लाखी भी निन्नी के घर ही आकर रहने लगती है। लाखी और अटल के बीच स्थापित प्रेम - संबंध की जान - सुन निन्नी को प्रसन्नता होती है। लाखी और निन्नी दोनों के अप्रतिम, अद्वितीय, असाधरण रूप-सौदर्य, लावण्य और शौर्य की ख्याति दूर - दूर तक फैलने लगती है।

उन्हें देखने के लिए और संभव हो तो संग्रहण के लिये राजाओं और सामन्तों का जी ललचाने लगता है। मालवा और गुजरात के सुल्तानों के दिल की धड़कने बढ़ती है। गुजरात का सुल्तान बघरा सोचता है-- यदि मिल गई तो देखूँगा और माँडू का सुल्तान गयासुद्दीन अपने विश्वासपात्र और मुँह लगे सलाहकार ख्वाजा मरर की सलाह लेकर नटों के एक दल को प्रलोभन देकर उन्हें फैलाकर, मालवा लाने के लिये नियुक्त करता है। नटों का यह दल राई के निकट पड़ाव डाल वस्त्राभूषणों आदि के प्रलोभनों द्वारा उन्हें फाँसने का प्रयत्न करता है। कुछ दिनों बाद इन्हीं नटों की मंत्रणा ने गयास चार घुड़-सवारों को निन्नी और लाखी दोनों युवतियों को उठा ले आने के लिए राई भेजता है। वन में स्वच्छन्द, निर्भीकतापूर्वक विचरण करती हुई इन दोनों सखियों की भेंट इन घुड़सवारों से होती है। पहले तो वे अकेली होने की वजह से भयभीत होती हैं पर बचाव का कोई रास्ता, नजर आता न देख साहस बटोर वे दो घुड़ सवारों का संहार कर देती है, शेष दो भाग खड़े होते हैं। भावी अनिष्ट की आशंका से भीत, त्रस्त, उद्वेलित गाँव वालों के कहने पर गाँव के पुजारी पं॰बोधन मानसिंह के सम्मुख बचाव की प्रार्थना लेकर उपस्थित होते हैं।

ग्वालियर के आसपास के प्रदेशों पर शत्रुओं के आक्रमण निरन्तर रहते थे। दिल्ली का सुल्तान सिकन्दर लोदी ग्वालियर को पदाक्रान्त करने के उद्देश्य से अब तक उस पर पाँच बार आक्रमण कर चुका था और

प्रत्येक बार उसे हार कर लौट जाना पड़ा था। राजा मानसिंह शत्रुओं के आक्रमण से देश की रक्षा के प्रयत्न में बराबर लगा रहता था। सिकंदरलोदी के ग्वालियर से घेरा उठ जाने के बाद वह राज्य के पुनर्गठन कार्य में जुट जाता है। वह पं॰ बोधन के बार - बार प्रार्थना करने पर एक दिन शिकार खेलने गई आता है। निन्नी के पराक्रम, लक्ष्य वेध में उसके पारंगत होने की बात वह भी सुन चुका है। अत: वह उसके शौर्य, पराक्रम, आखेट - कला में पारंगत होने की परीक्षा लेने के लिए दिन और समय निश्चित करता है। अकेली निन्नी अपने पराक्रम से एक अरने को हाथों से मरोड़ कर मार परीक्षा में सफल होती है। उसके रूप - सौन्दर्य और पराक्रम से प्रभावित राजा उससे परिणय - संस्कार कर लेते हैं। निन्नी (अब मृगनयनी) को ग्वालियर पहुँचने पर ज्ञात होता है, कि राजा की वह अकेली पत्नी नहीं, बल्कि उससे पूर्व वे आठ शादियाँ कर चुके हैं और सभी जीवित हैं। राजा के हृदय में अपना अक्षुण्ण स्थान बनाये रखने के लिए वह नियम - संयम, सहनशीलता ,कर्तव्यनिष्ठा, कला - प्रेम आदि पर विशेष बल देना शुरु करती है।

मृगनयनी के ग्वालियर चले जाने के बाद लाखी और अटल परिणय सूत्र में आबद्ध होना चाहते है पर उन्हें रुढ़िग्रस्त समाज तथा पं॰बोधन से इस प्रकार का अन्तर्जातीय विवाह करने की अनुमति नहीं मिलती है। भावावेश में आकर अटल लाखी ने अपने बगल में बिठा भगवान को साक्षी बनाकर तथा गंगाजी की सौगंध खाकर, उसका बायाँ

हाथ अपने हाथ में वे स्वयं विवाह का रस्म अदा करता है और गाँव में उसकी घोषणा भी कर देता है। उसके इस अदम्य साहस पर गाँव का लोकमत उग्र हो उठता है। परिणामत: उन्हें गाँव छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है। वे, संकोचवश अपने स्वाभिमान के चलते ग्वालियर नहीं जाते हैं। इधर निन्नी के हाथ से निकल जाने पर उन्हें फाँसने के लिए नियुक्त नट - दल के साथ आई नटनियाँ - पिल्ली और नायकिन- अकेली लाखी को फँसाने का नित्य नया रास्ता अपनाती रहती है। एक दिन लाखी को सब प्रकार से अपने मनोनुकूल समझ पिल्ली उसे यह बता देती है कि माँडू सुल्तान उसे अपनी गोद में बिठाने के लिये पलक-पाँवड़े बिछाये हैं और सोने - मोतियों के ढेर तथा मखमली पलंग उसकी बाट जोह रहे हैं। गाँव वालों के प्रकोप से बचने तथा नटों के बहकावे के प्रभाव में आ जाने के कारण लाखी और अटल को गाँव छोड़कर मगरोनी भागना पड़ता है। इस बीच पिल्ली अटल पर आसक्त हो जाती है।

अपने कुचक्र की असफलता तथा घुड़सवारों की मृत्यु के संवाद से अवगत हो गयासुद्दीन राई के नरवर किले पर आक्रमण करने की तैयारी करता है। इस समाचार को सुन अपना कार्य साधने के उद्देश्य से नटों का वह दल लाखी और अटल के साथ नरवर किले में आश्रय हेतु प्रवेश करता है। गयास के राई पर आक्रमण का समाचार सुन मानसिंह सेना लेकर उसकी रक्षा के लिये वहाँ पहुँच जाता है। गयास के सिपाहियों

से पहले से ही साँठ - गाँठ करके जब नट रात्रि के सन्नाटे में किले के कंगूरे पर से बाहर के पेड़ पर रस्सी बाँधकर किले से बाहर निकलने की योजना बनाते हैं, लाखी जिसके मन में अब तक यह संदेश पूरी तरह घर कर गया था कि अटल पिल्ली को चाहने लगा है, उनकी योजना को स्वीकार कर उनके साथ किले से बाहर जाने के लिए तैयार हो जाती है। नटनियों द्वारा स्वयं को सुल्तान को गोद में ले जाया जाता हुआ समझ लाखी आत्म - रक्षा हेतु तथा पिल्ली को उसकी कुटिलता का उचित दंड देने से अभिप्राय से बुद्धिमत्ता पूर्वक कंगूरे से बँधा रस्सा काट किले से बाहर जा रही पिल्ली को खाई में गिरा देती है। पिल्ली के गिरने से किले के बाहर कोलाहल होता है, जिससे किले के अन्दर के सभी सजग हो उठते हैं। पूर्व निश्चित योजना नटों के साथ हुई साँठ - गाँठ के अनुसार गयास के सिपाहियों के लिए किले में घुसना असम्भव हो जाता है। अपने इस प्रयत्न में गयास के सिपाहियों बुरी तरह असफल होता है और माँडू पहुँच अपने सलाहकार ख्वाजा मटरु को कोड़े लगवाकर उस पर अपनी खीझ उतारता है। अपमानित मटरु उसके पुत्र नसीरुद्दीन के साथ गुप्त मंत्रणा कर, षड्यन्त्र रच, गयास को विष देकर हत्या करने में सफल होता है। लाखी के इस साहसिकतापूर्ण कार्य से प्रसन्न हो मानसिंह दोनों - लाखी और अटल - को अपने साथ ग्वालियर ले जाता है। वहाँ मृगनयनी के प्रयत्न से दोनों का शास्त्रोचित विधि से परिणय - संस्कार कर दिया जाता है। इस

अवसर पर हुए सहभोज के समय राजा की बड़ी रानी सुमन मोहिनी द्वेषवश राजा का अतिशय प्यार पानेवाली मृगनयनी को विष खिलाने का असफल प्रयत्न करती है। लाखी के अटल से अन्तर्जातीय विवाह के प्रति भी वह व्यंग्य बाण छोड़ने से बाज नहीं आती है। लेकिन लाखी और मृगनयनी दोनों इसका विरोध न कर मौन रह जाती है। राजा लाखी और अटल को राई की गद्दी दे देता है।

ग्वालियर राज्यान्तर्गत नरवर किले का पूर्वस्वामी (वंशगत, दावेदार) कछवाहा राजसिंह उस किले के हाथ से निकल जाने पर चंदोरी में रहते हुए उसकी पुन: प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। वह कला नाम की एक कला मर्मज्ञा रमणी जो उसकी (राजसिंह की) प्रेमिका भी है तथा संगीतज्ञ बैजू नायक को मानसिंह के दरबार में कुछ दिनों रह किले का सारा भेद जानने तथा अवसर निकाल धोखा देकर राजा मानसिंह को मार डालने के अभिप्राय से भेजता है। ग्वालियर आकर कला तो अपने उद्देश्य की सिद्धी के लिए प्रयत्न करने में लगी रहती है पर बैजू नायक एक सच्चा तथा मस्त कलाकार होने के कारण राजा की कलाप्रियता से प्रसन्न हो उसी के दरबार में रहकर नित्य नये रागों का आविष्कार करने में लीन - तल्लीन हो जाता है। कला के प्रति आकृष्ट हो मृगनयनी बैजूनायक से संगीत तथा कला से चित्र - निर्माण कला सीखने लगती है। वह शास्त्र का अध्ययन भी करती है और ऐसा कर मानसिंह का प्रमुख प्रेरणा -स्रोत बन जाती है। कुछ समयोपरान्त कला के

ग्वालियर के राजदरबार में ठहरने के उद्देश्य (योजना के रहस्य) से अवगत होने पर मानसिंह उसे सम्मानपूर्वक राजसिंह के पास पहुँचवा देता है।

स्वभाव से कला - प्रेमी मानसिंह कला के उत्थान में बहुत व्यस्त रहता है। वह नित्य नये - नये सुन्दर बोलते महलों के निर्माण कार्य में व्यस्तरहता है। मृगनयनी का उनका ध्यान कला के उत्थान के साथ-साथ कर्तव्य की ओर आकृष्ट करती है। महत्व की दृष्टि से वह कर्तव्य को पहला स्थान देती है, कला को दूसरा। गूजरी महल का निर्माण कार्य समाप्त होता है। होली की रंगपंचमी के दिन गृह -प्रवेश के अवसर पर बाहर होली के हुल्लड़ में सिपाहियों की बीभत्स रूप को देख वह राजा से सर्वप्रथम उन्हें (सिपाहियों को) अस्त्र - शस्त्र - संचालन - कला में प्रवीण बनाने का आग्रह करती है। उसका विश्वास है - ऐसे असंस्कृत जनों को पहले कर्तव्य का पूर्ण ज्ञान करा देने के बाद ही उनसे कलाप्रेमी होने की आशा की जा सकती है। वह राजा को देश - रक्षा की पूरी तैयारी करने की प्रेरणा देती है।

सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर यद्यपि कई बार आक्रमण कर हार चुका था, फिर भी, ग्वालियर उसके हृदय में काँटे की तरह कसक रहा था। अतः वह पुनः ग्वालियर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम राई पर आक्रमण करता है। राई में उस समय तक अटल के खंडहर मकान के स्थान पर किला बन गया रहता है और अटल और लाखी ही

उसके स्वामी है। दोनों सिकन्दर की सेना से किले की बहादुरी के साथ रक्षा करते हुए लड़ते - लड़ते आत्मबलिदान करते हैं। पहले लाखी मरती है बाद में अटल। समाज द्वारा किये गए अपमान और कटु व्यवहार से त्रस्त, मरते समय वह अटल में अपनी जात - पाँत में विवाह कर लेने का आग्रह करती है। इन दो रत्नों के खो जाने से मानसिंह बहुत दुखी होता है। सिकन्दर नरवर पर भी आक्रमण करता है। और वहाँ के मन्दिरों की अनेक मूर्तियों को खंडित करता है। नरवर पर उसकी चढ़ाई अथवा आक्रमण के समय राजसिंह भी उसका साथ देता है। सिकन्दर से विजय श्री प्राप्त होती है। और वह छः महीने तक वहीं ठहर वहाँ के मन्दिरों में स्थित मन्दिरों का भजन करता है। तदुपरान्त नरवर का किला राजसिंह के हाथों सौंप ग्वालियर पर पूरी तैयार के साथ आक्रमण करने की बात मन में सोच - विचार दिल्ली लौट जाता है जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है। राजसिंह के साथ कला जब नरवर किले में प्रवेश करती है वहाँ की खंडित मूर्तियों को देख उसे अतिशय दुःख होता है।

इस समय तक मृगनयनी दो पुत्रों - राजसिंह और बालसिंह की माँ बन जाती है। अन्त में वह राजा की बड़ी रानी सुमन मोहिनी के पुत्र विक्रमादित्य को ग्वालियर की राजगद्दी राजा से दिलाने का वचन देकर उसके मन में बैठे शंका के भूत - मृगनयनी के दोनों पुत्र ही राज्याधिकारी होंगे - की समाप्त करती है। वह जीवन के आधारभूत

अंगों -- कला और कर्तव्य - के समन्वित रूप पर बल दिया गया एक चित्र बनाकर राजा को दिखाती है। राजा उसके द्वारा प्रेरित कला और कर्तव्य का सदैव आदर करते रहते हैं जिससे उनके राज्य में सर्वत्र सुख और शान्ति बनी रहती है। दोनों अपने जीवन में नैतिकतापूर्ण आचरण अथवा आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं। अन्त में मृगनयनी अपने गुरुतम कर्तव्य राजा के बड़े पुत्र विक्रमादित्य को युवराज तथा राज्याधि-कारी बनाने के कार्य का निर्वाह कर राजा को गरीबों की सेवा करने के कार्य में प्रवृत्त करती है।

समीक्षा :---

उपन्यास की मुख्य कथा है - ग्वालियर राज्यान्तर्गत गई राई नामक ग्राम के एक साधारण गूजर परिवार में उत्पन्न असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व निन्नी (बाद में मृगनयनी) तथा ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के सफल वैवाहिक जीवन की।

इसका कथानक काफी विस्तृत होकर भी संश्लिष्ट है। आद्यन्त कथा रोचकता और जिज्ञासाभाव को बनाये रखते हुए स्वाभाविक गति से विकास की ओर बढ़ती है और अन्त में जीवन में कला और कर्तव्य के बीच संतुलन बनाये रखने का एक संदेश छोड़ती हुई समाप्त हो जाती है।

"उपन्यासकार ने कथानक के निर्माण में इतिहास और परम्परा तथा किंवदन्ती से सहायता ली है।"(25) कथानक का संबंध

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ अर्थात् ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के शासन-काल सन् 1486-1516 ई. से है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में कथानक से संबद्ध देश - काल समाज की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति - परिस्थितियों वातावरणों का सफल सुन्दर और स्पष्ट चित्रण किया है। उस समय दिल्ली का शासक सिकन्दर लोदी था।

उपन्यास में आए सभी चरित्र - थोड़ों को छोड़कर ऐतिहासिक हैं। गुजरात के सुल्तान महमूद बधर्रा के विचित्र व्यक्तित्व, नित्य कलेवे और भोजन की बात, नसीरुद्दीन के रनिवास में पन्द्रह हजार बेगमें होते; नसीरुद्दीन द्वारा वासना तृप्ति के लिए अपने पिता गयासुद्दीन को विष देकर मरवा डालने निन्नी ने मानसिंह से विवाह से पूर्व जो वचन लिए थे उनमें से एक राई गाँव से ग्वालियर के किले तक झाँक नदी की नहर ले जाने की बात आदि ऐतिहासिक है। पं.बोधन और राजसिंह कछवाहा भी इतिहास सम्मत चरित्र है। राजसिंह की प्रेमिका कलामर्मज्ञा कला कल्पित चरित्र है।

राजा मानसिंह की निन्नी से शादी का प्रसंग, लाखी और अटल की कथा के साथ नटों के संबंध की कथा राजा मानसिंह की निन्नी से विवाह के पूर्व आठ रानियाँ होते। मृगनयनी के अपने पुत्रों को राज्याधिकार न दिलाकर विक्रमादित्य को दिलवाने आदि प्रसंग

परम्परा, किंवदंती से लिए गए हैं। उपन्यासकार ने एक ही विषय अथवा प्रसंग से संबद्ध कई प्रकार की प्रचलित परम्पराओं किंवदंतियों में से जो सबसे अधिक विवेक सम्मत, युक्ति संगत जँची है, उन्हें ग्रहण किया है और उनकी अपने ढंग से व्याख्या की है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी विचार करने पर इस उपन्यास का महत्व सर्वोपरि है। मृगनयनी केन्द्र - बिन्दु के चारों तरफ शौर्य, सौंदर्य, वास्तुकला और संगीत कला का वृत्त खींचा गया है।

ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त प्रमुख घटनाओं तथा पात्रों के इतिहास सम्मत होने की वजह से इसे भी हम शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि के अन्तर्गत रख सकते हैं।

3.4 अहिल्याबाई :--

इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार मल्हरराव होलकर के पुत्र खंडेराव होलकर की पत्नी, अहिल्याबाई तिरसठ वर्ष की उम्र में भी इन्दौर का शासन भार संभाले हुई है। अपनी न्याय - प्रियता, धर्म - प्रियता और कर्मतत्परता की बदौलत वह अपने शासन काल में सबका प्रिय बन, उनके आदर - सम्मान का पात्र बन जाती है। वह अपने दूर के एक संबंधी और सूबेदार तुकोजी राव होलकर के उच्छृंखल, लोभी कुसंगतिग्रस्त, महत्वाकांक्षी, शराबी, कामुक, अविवेकी युवक पुत्र मल्हाराव होलकर पर अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित करती है। वह उसे ही अपना उत्तराधिकारी

बनाना चाहती है और चाहती है उसे एक सदाचारी कर्तव्यपरायण नृपति के रूप में देखना। वह इसके लिए प्रयत्न भी करती है। तुकोजी राव के चार पुत्रों में से दो - काशीराव और मल्हार राव - उनकी पत्नी रुक्माबाई से जन्मे थे। दोनों एक जैसे थे अत: रानी उन्हें सुधारने - संभालने का संकल्प करती है। उनकी विशेष कृपा का भागी बनने के अभिप्राय से मल्हार मान्धाता पहाड़ी से कूद कर आत्महत्या करने का प्रपंच रचता है। रानी भारमल दादा को भेज उसे ऐसा करने से रोकवाती है। मल्हार अपने साथियों की मंत्रणा से रुपये इकट्ठा कर एक सैनिक दल का, संगठन करने की योजना बनाता है। महेश्वर पहुँच वह रानी के चरणों पर गिर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लेता है। इसी समय रानी को सूचना मिली है कि जामाघाट पर गनपतराव मराठा नाम का एक डाकू तांडों और यात्रियों से "हाथ झुलाई कर" लिया करता है अत: वह उसने दमनार्थ मल्हार को भेजती है। मल्हार को अवसर मिलता है और वह अपनी पूर्व योजना को पूरी करने में लग जाता है। भीकाजी उसका साथ देते हैं। मल्हार महेश्वर से बीस कोस की दूरी पर स्थित सिमरोल किले {कजली गढ़} में अपना अड्डा जमाता है और तीस बत्तीस आदमियों का एक सैनिक दल तैयार करता है। यहीं रहते हुए उसका सम्पर्क सौंधिया डाकू बट्टसिंह और आनन्दी से बढ़ता है। बट्टसिंह आनन्दी को मल्हार को अपने आकर्षण में फाँसने की सलाह देता है। मल्हार रामपुरा-मानपुरा इलाके के

नामी गाँव आंत्री के भोपत मोंधिया को अपने दल में भर्ती करता और उसे तथा उसके साथ आई उसकी धर्म की बहन गंगी और बहरी पर सुन्दर सलोनी और अविवाहिता सिन्दूरी" - दोनों को अपने किले के अन्दर रहने देता है। सिन्दूरी के महत्त्व से अवगत हो वह उसके प्रति आकर्षित होता है। आनन्दी और बट्टसिंह भी वहीं किले में आकर रहने लगते हैं। मल्हार बट्टसिंह और आनन्दी के साथ मिलकर लूटपात करना शुरू करता है। भोपत के साथ - साथ सिन्दूरी की सिद्धी भी उसके इस कार्य में सहायक बनती है। उनका पहला डाका सूल गाँव के उस घर में पड़ता है जिसके यहाँ बारात आई थी। लूट में विशेष माल हाथ नहीं लगता है -- कुछ बर्तन, कपड़े मिलते हैं, नम्दी कम। कपड़ों में एक चमकीली चोली मिलती है जिसे मल्हार आनन्दी को दे देता है। मल्हार के दल में सदस्यों की संख्या तो बढ़ जाती है पर अपनी दिग्विजय की कामना के स्वप्न को पूरा कर सकने योग्य धनराशि नहीं मिलती है अत:वह तुकोजी के पास रुपये के लिए तकाजी भेजता है। उसके उत्पातों के समाचार तुकोजी और अहिल्याबाई के पास पहुँचते हैं। रानी को विश्वास नहीं होता है --"यह काम मल्हर का नहीं हो सकता, बहुत भोला - भाला लड़का है। उसके नाम से सोंधियो - मोंधियों ने लूट की होगी।"॥26॥ फिर भी, वह इस संबंध में जाँच करने का आदेश देती है। मल्हार को पता चलता है कि महेश्वर में उसके विरुद्ध कुछ हो रहा है। वह अपने पिता तुकोजी से नहीं डरता

था पर रानी का भय उसके भीतर - बाहर छाया रहता था। उसे इस समय भी रानी का भय होता है और वह उस भय की रूपरेखा निश्चित नहीं कर पाता है। पैसे की कमी, यह भय, और वह उद्दंड महत्व-आकांक्षा उसकी समझ में नहीं आता है कि वह क्या करें? भोपत और सिन्दूरी को वह महेश्वर के महल से सम्पर्क बढ़ा कर, मौका पाकर कुछ हीरे - जवाहारत उड़ाकर सिमरोल भेजने और समय -समय पर वहाँ की गतिविधि से अवगत कराते रहने के लिए समझा - बुझाकर महेश्वर भेजता है। रानी आवश्यकता से अधिक नौकर - चाकर नहीं रखती थी, अतः सिन्दूरी को उनसे दया और शिक्षा से अधिक कुछ और नहीं मिलती है। भोपत यहाँ आकर चोरी चपाटी, हाथ सफ़ाई के अपने धंधे को अपना लेता है।

रानी के सम्मुख इसी समय एक साथ कई समस्याएँ उपस्थित होती है - दामाद यशवन्तराव फणसे के प्रायः बीमार रहने, मल्हरराव के उत्पातों तथा रामपुरा - मानपुरा के चन्द्रावत राजपूतों के विद्रोही की। चंद्रावत विद्रोह के दमनार्थ वह सेना पहले ही भेज चुकी थी। पर सभी समस्याओं में इसे ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समझ वह उसके दमनार्थ एक बड़ी सेना के साथ महेश्वर से प्रस्थान करती है। भिक्षुक - भिखारियों की भीड़ भी उनके साथ लग जाती है कारण रानी का दान-धर्म इस अभियान में भी नहीं टूटता है। सिन्दूरी और भोपत भी भिखारियों की भीड़ में सम्मिलत होते हैं। धमनार पहुँचने पर रानी

को चन्द्रावतों की हार तथा उनका पीछे किये जाने की कार्य जारी रहने की सूचना , मिलती है अत: वह वहीं रुक जाती है और अपनी कुछ सेविकाओं के साथ वहाँ की पहाड़ियों में स्थित बौद्ध मूर्तियों , पहाड़ी को छेदकर भीतर बनाये गये चैत्य और विहार को देखने जाती है।

रानी के पास मल्हार के उत्पातों की शिकायत आती रहती है अत: वह उसकी जाँच - पड़ताल का भार भारमल को सौंपती हुई कहती है -- लड़का है छटपन से ही उसे मैं ने बहुत प्यार - दुलार में पाला - पोसा है। उसका कोई अपराध साबित हो तो समझा - बुझा देना डाँट - फटकार भी दे सकते हो।" अपने दामाद के संबंध में यह जानकर कि उज्जैन के सिद्धवट पट नाग नारायण को बलि चढ़ाने का संकल्प करने के परिणाम स्वरूप वे अच्छे हो रहे हैं, वह उनके पास बलि चढ़ा देने के लिए लिखवा भेजती है।

मल्हर के व्यवहार से क्षुब्ध निराश लाचार बद्टसिंह आनन्दी का विवाह गौतमपुर के एक सौंधियो के साथ निश्चित करता है पर विवाह के अवसर पर वर और कन्या पक्ष की वैवाहिक प्रथा में मतभेद के कारण विवाह नहीं हो पाता है। बद्टसिंह को इससे आनन्दी पर क्रोध होता है, कारण वह उसे कहीं बैठा निश्चित हो जाना चाहता था। उसका आनन्दी के प्रति स्नेह उस दिन से कम हो जाता है। आनन्दी भी इसे महसूस करती है। वह मल्हर की स्मृति, उसके द्वारा

दी गई चोली को एक गठरी में बाँधकर सुरक्षित रख देती है।

मल्हार महेश्वर आता है। सिन्दूरी की महल में देख उसे सिमरोल का स्मरण हो आता है। उसे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि वह अब कुछ - कुछ सुनने और बोलने भी लगी है। महल में पहले से वर्तमान मल्हार की माँ रुक्मीबाई एक दिन मौका पाकर मल्हार के पास से वे रुपये निकाल लेती है जिसे उसने देपालपुर में वसूल किया था। इन रुपयों की पुर्नप्राप्ति के लिए वह रुक्माबाई उसकी भर्त्सना करती है, भला - बुरा कहती है और डाँटती - फटकारती भी है। रानी को इस प्रकार रुक्माबाई का पक्ष समर्थन करते देख क्रोधावेश में आ उन्हें एक चुनौती सी देता हुआ वह वहाँ से टल जाता है। रानी को अपने किये कर्मों पर बाद में "क्षोभ पश्चाताप होता है। वह दरबार में न्याय के लिए पेश किये गए कोटी पड़ाव के मनीराम और यशवन्त सिंह के विरासती मामले से संबद्ध कागजों की जाँच - पडताल कर फैसला मनीराम के पक्ष में देते हैं। यशवन्तसिंह के पास के सभी कागजात जाली निकलते हैं। इससे निबट वह मल्हार को अपने पास बुला उसे नाना प्रकार से प्रबोधने, समझाने - बुझाने और धर्म तथा सही कर्म के रास्ते पर लाने का प्रयत्न करती है। उसके स्नेहसिक्त मृदुल व्यवहार से मल्हार का क्रोध समाप्त हो जाता है और वह उसके सम्मुख अपने कर्मों का प्रायश्चित करने का संकल्प करता है।

महादजीसिंधिया के व्यवहार से असन्तुष्ट रानी उन्हें, पूना से जीवित नहीं लौटने का, शाप देती है और मल्हार द्वारा सिंधिया की सेना के सर्वनाश के हित सेना और रुपये माँग किये जाने पर वह उसे सब कुछ दे देती है। होलकर सेना की हार देती है और तुकोजी ससैन्य उत्तर की तरफ और मल्हार दक्षिण की तरफ भागता है। कुछ समयोपरान्त महादजी सिंधिया की मौत पूना में होती है इससे होलकर का मान पुन: ऊपर उठता है।

तुकोजी के कहने पर रानी मल्हार को पुन: महेश्वर बुला समझाती है। मल्हार उन्हीं की इच्छा के अनुसार आचरण करने का उन्हें विश्वास दिलाता है। महल में रहते हुए वह सिन्दूरी के साथ छेड़खानी करता है और उसके द्वारा आत्मरक्षार्थ विरोध किये जाने पर वह पकड़ा जाता है। रानी सिन्दूरी को अपने कमरे में सोने के लिए बुला लेती है। सिन्दूरी रानी को वे सारे कागजात, जो मल्हार ने उसे सिगरोल छोड़ते समय दिया था, दिखा देती है और उन्हें भोपत के साथ मल्हार के पूर्व - संबंध से भी अवगत कराती है। मल्हार उसी घटना की रात दल बल सहित रानी से बिना मिले नीमाड़ चला जाता है और उत्पात करना शुरू करता है। उसके कुकृत्यों से तबाह - परेशान लेने का परामर्श देते हैं। तुकोजी भी रानी के पास ऐसा ही करने के लिए लिख भेजते हैं। मल्हार महेश्वर के समीप ही नर्मदा के पास ऐसा ही करने के लिए लिख भेजते हैं। मल्हार महेश्वर के समीप ही नर्मदा के पास आठ - दस कोस की दूरी पर उत्पात

करने लगता है। उसका कुकृत्य रानी के लिए अब असह्य हो जाता है। अत: वह दुदरनेक फ्रांसीसी को उसे पकड़ लाने के लिए भेजती है। इस समय आनन्दी मल्हार को पकड़वाने में दुदुरनेक का सहायक बनती है और मल्हार पर तलवार से आक्रमण करने का अभिनय करती है। प्राण - रक्षा हेतु मल्हार पर तलवार से आक्रमण करने का अभिनय करती है। प्राण - रक्षा हेतु मल्हार अपनी पिस्तौली की गोली से उसकी हत्या कर देता है और बाद में उसे पहचान वह दुखी होता है। उसके हृदय में कसक उठती है -"वह मुझे चाहती थी, मैने उसका अपमान किया , मेरे हाथ से उसकी हत्या हुई।" वह दल सहित पकड़कर महेश्वर लाया जाता है और कुशलगढ़ किले में कैद कर लिया जाता है। उसे कैद सताने लगता है,रह - रह कर स्त्री-हत्या का परिताप कुर देता रहता है। वह अनशन और वस्त्र का त्याग करता है। उसके पकड़े जाने से राज्य में बहुत कुछ शांति स्थापित हो जाती है। उसके अनशन और वस्त्र त्याग का रानी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन तुकौजी का इस आशय मेरी हीरा - सा पुत्र, कुशलगढ़ में क्षीण होता चला जा रहा है, उसे छोड़ दीजिए अन्यथा मैं आत्मघात कर लूँगा - का पत्र प्राप्त कर उसे बाध्य हो अनिच्छा पूर्वक ही, तुकोजी के बुढ़ापे और दौर्बल्य का ख्याल कर मल्हर को स्वतन्त्र कर देना पड़ता है।

रानी पुनः रामपुरा- मानपुरा के राजपूतों के सिर उठाने पर उनसे युद्ध न कर सुलह कर लेती है। कैद से छूट मल्हार जब पुनः उत्पात करने लगता है रानी उसकी तरफ से अपना मन बिल्कुल हटा लेती है। सिंधिया के संबंध में वे सम्मति देती है। मेल - जोल से काम लो, लड़ाई की नौबत न आने दो।

और अंत में भाद्रकृष्णा चतुर्दशी के दिन रानी सिन्दूरी के सिर पर हाथ फेर उसे तथा उपस्थित परिजनों को आशीर्वाद दे अभय मुद्रा में अपनी इहलीला समाप्त करती है।

समीक्षा :--

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें धर्मप्रिय, न्यायप्रिय, कर्तव्यनिष्ठ, बुद्धि - विवेक- सम्पन्न हिन्दू नारी अहिल्याबाई की कथा वर्णित है।

यह उपन्यास अहिल्याबाई के जीवन से संबंध रखनेवाली सच्ची घटनाओं पर आधारित है। इसमें जिन स्थानों का वर्णन हुआ है वे आज भी है। अनेक घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, कुछ काल्पनिक। सिन्दूरी, आनन्दी और भोपत के नाम भर बदल दिये गये हैं, वैसे वास्तविक हैं। अन्य चरित्र ऐतिहासिक हैं, नाम भी उनके वे ही है।"(27)

उपन्यास में प्रधानता नारी - चरित्र अहिल्याबाई की है। आद्यन्त कथानक उनके और मल्हारराव के चरित्र अथवा व्यक्तित्व पर केन्द्रित है। उपन्यास की मुख्य कथा अहिल्याबाई से संबंधित है और उनके चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालती है। मल्हार राव की कथा यद्यपि उपन्यास में आदि से अन्त तक मुख्य कथा के साथ लगी चलती है पर है वह प्रासंगिक ही। इसका समावेश उपन्यास में अहिल्याबाई के चरित्र के एक पहलू - उसकी वात्सल्य संबंधी दुर्बलता को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से हुआ है। बद्दूसिंह (गणपतराव) और आनन्दी की प्रासंगिक कथाओं का संबंध मल्हारराव की कथा से है। आनन्दी की कथा प्रारंभ में बद्दूसिंह की कथा के साथ मिलकर एक होकर चलती है लेकिन बद्दूसिंह के हृदय परिवर्तन के बाद वह उसके अलग होकर अकेली चलती है और अंत में मल्हार राव की कथा को अंतिम मोड़ प्रदान करती है।

उपन्यासकार ने ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति मोह के कारण इस उपन्यास में विवरणात्मक शैली का प्रयोग अधिक किया है।

कुल मिलाकर वर्माजी का यह उपन्यास उनकी पूर्व प्रकाशित अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की तरह गरिमामय नहीं हो सका है कारण एक तो इसका फलक छोटा है, दूसरे, उपन्यासकार को यहाँ - वहाँ से बिखरे प्रसंग और घटनाओं को एकत्र करना पड़ा है और उन्हें समय -

समय पर मुख्य चरित्र (अहिल्याबाई) के साथ जोड़ उनके व्यक्तित्व के अन्तर्निहित सत्यों को दीप्त करना पड़ा है। फिर भी इतिहास और कल्पना के मधुर सम्मिलन से युक्त यह कृति भी अपनी मौलिकता रखती है।

3.3.5.10. भुवन विक्रम :—

कई सहस्र वर्ष पूर्व, अयोध्या के नृपति रोमक के शासनकाल में लगातार कई वर्षों से वर्षा नहीं होने के कारण कृषक और निम्नवर्गीय जनों की दशा दयनीय हो जाती है। राजा की तरफ से समुचित व्यवस्था के अभाव तथा व्यापारियों की शोषण - नीति के परिणाम स्वरूप नगरवासियों को भीषण अकाल का सामना करना पड़ता है। रोमक की अपूर्ण योजनाओं, कम वेतन की नीति तथा स्वार्थ बुद्धि के कारण श्रमिक वर्ग में असंतोष की लहर फैल जाती है। रोमक नगर के धनीमानी व्यापारियों के अन्नागारों से पीडितों का पेट भरने के प्रयत्न में दोनों का अप्रिय बन जाते हैं। हृदय से उदार प्रकृति का होने की वजह से वे विदेशी व्यापारियों की दास प्रथा तथा सवर्ण ब्राह्मणों की शोषक शूद्र व्यवस्था के हृदय से विरोधी हैं। उनके युवक पुत्र भुवन की चंचल, उद्दण्ड , उच्छृंखल, उजड्ड तथा वाचाल वृत्ति से क्षुब्ध कुपित उसके गुरु उपाध्याय मेघ इसकेलिए दोषी राजा के पुत्र के प्रति अतिशय प्रेम, लाड़ - प्यार को ठहराते है और उनके

विरुद्ध जनता में विरोध भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। राजा की उदारवृत्ति से क्षुब्ध, कुपित व्यापारी वर्ग भी आचार्य मेघ का साथ देता है। परिणामत: तत्कालीन व्यवस्थानुसार वहाँ की जनपद समिति स्थिति सुधारने तक रोमक को राजपद से च्युत कर शासनशक्ति मेघ वर्ग को सौंप देती है। दीर्घबाहु (धनाढ्य क्षत्रिय) नीलमणि, पुरोहित सोम और उपाध्याय मेघ एक समिति का गठन कर राज्य - कार्य संभालने लगते हैं। निराश रोमक नैमिषारण्य में स्थित महातत्व ज्ञानी ऋषि धौम्य के आश्रम में, उन्हीं के आश्रम में भुवन को शिक्षोपार्जन हेतु छोड़ स्वयं अपनी पराय के मूलभूत कारणों, संकटकाल में अपने दायित्व की खोज करने, जनमत से अवगत होने के अभिप्राय से जनपद का पर्यटन करना शुरू करते हैं जहाँ उन्हें विभिन्न प्रकार के विचार सुनने के लिए मिलते हैं। उन विभिन्न विचारों के आधार पर कोई निश्चित निष्कर्ष निकालने में वे स्वयं को असमर्थ पाते हैं। आश्रम के सात्विक वातावरण, ऋषि धौम्य के गुरु - गंभीर व्यक्तित्व के प्रभाव तथा सजग अनुशासन से भुवन की प्रकृति सुधरती है। उसकी चंचल वृत्ति समाप्त हो जाती है और थोड़े ही समय में वह समुचित ज्ञानार्जन कर लेता है, वेद के महत्वपूर्ण मंत्रों के अर्थ से अवगत हो जाता है, साथ ही उसमें कर्तव्य परायणता ,एकाग्रचित्तता भी आ जाती है। भुवन से पूर्व शुद्र जाति का कपिंजल जो अकाल - काल में नील से कर्ज लेने के कारण उसका दास बन गया था। नील के

अत्याचार से क्षुब्ध, पीडित हो भागकर ऋषि के आश्रम में आ गया था और उनकी आज्ञा से तप करने लगा था। भुवन ऋषि के आश्रम में पहले से वर्तमान आरुणि तथा कपिंजल के महत्व से प्रभावित हो अपनी जीवनधारा उचित मार्ग में प्रवाहित करता है। इस बीच वह गौरी नाम की एक परम रूपवान गुणवान पर निर्धन क्षत्रिय, कन्या ﴾जो रहनेवाली तो थी अयोध्या की पर वहाँ पड़े अकाल के कारण नैमिषार अरण्य की सीमा में ऋषि धौम्य के आश्रम के समीपवर्ती गाँव में अपने माता - पिता के साथ रहने लगी थी।﴿ के प्रति आकर्षित होता है और उसके साथ प्रेम करने लग जाता है। गौरी भी उसके प्रति आकर्षित होती है और उसके साथ प्रेम करने लग जाती है।

दोनों एक - दूसरे से मिलने के लिए बराबर उत्कंठित रहा करते हैं। भुवन जब कभी यदा - कदा उसके गाँव भिक्षाटन हेतु जाता है, गौरी उसे दरवाजे पर खड़ी मिलती है। वह उसके यहाँ से भी भीख लेता है। वह उससे मिलने के अभिप्राय से उसके दरवाज़े का फेरा भी लगाने लगता है। एक दिन गौरी की माँ द्वारा शंका प्रकट किये जाने पर वह गौरी को निकट भविष्य में अपनी धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है। भुवन और गौरी के इस प्रणय - व्यापार की बात जब ऋषि धौम्य के कानों तक पहुँचती है, वे भुवन को किसी भी स्त्री पर आँख उठाकर न देखने, किसी के दरवाले पर एक बार से अधिक भिक्षा माँगने के लिए नहीं

जाने की आज्ञा देते हैं। अपनी साधना की दृढ़ता के लिए इस आज्ञा को महत्वपूर्ण समझ भुवन इसका पालन सफलता पूर्वक करता है।

वर्षोपरान्त निराश रोमक ऋषि धौम्य के आश्रम में ज्ञान प्राप्त करने और अपने पतन का वास्तविक कारण जानने के उद्देश्य से पहुँचते हैं। उनके मन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में यह विचारधारणा बद्धमूल हो गई थी कि उनके पतन का वास्तविक कारण कपिंजल जैसे शूद्र का तप करना ही है। उनके मन में वर्तमान कपिंजल के प्रति हिंसात्मक भावना तथा राज्य लोभ की प्रबलता से अवगत हो ऋषि परीक्षा के उद्देश्य से उन्हें कपिंजल की हत्या कर पापमुक्त हो खोया राज्य प्राप्त करने का परामर्श देते हैं।

मोहान्ध, लालसाभिभूत राजा ऐसा करने के लिए चल पड़ते हैं। ऋषि की आज्ञा से भुवन उन्हें कपिंजल का स्थान दिखाने के उद्देश्य से उनके साथ जाता है। रास्ते में वह उन्हें सत्य का प्रकाश दिखा, राज्य - मोह के त्याग का पाठ पढ़ा, ऐसा दुष्कर्म करने से रोकता है। उसकी बातों को सुन राजा की आँखों पर पड़ा, मोहान्धकार का आवरण हट जाता है और उनकी आँखे खुल जाती है। ऋषि उन्हें सत्कर्म की प्रेरणा देते हैं।"§28§ रोमक को अब ज्ञात होता है कि उनके दुर्दिन का कारण किसी शूद्र का तपस्या कर उठना नहीं बल्कि अपने ही दोषों की वृद्धि हैं।

भुवन आश्रम की स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण हो ऋषि धौम्य की आज्ञा से, उनका आशीर्वाद तथा उपदेश प्राप्त कर अपने पिता के साथ ही अयोध्या लौट आता है। अयोध्या पहुँच रोमक अपनी प्राय: सम्पूर्ण सम्पत्ति और भूमि अकालग्रस्त पीड़ितों को दान कर देते हैं। अपने दान के क्रम को अखंड बनाये रखने के अभिप्राय से पणि [फिनीशियन] व्यापारी नील से ऋण माँगते हैं। पणि आचार्य मेघ के व्यवहार तथा धनाढ्यों की प्रबलता से असन्तुष्ट हो गया था। नील दीर्घबाहु को, अपनी पुत्री हिमानी से परिणय - संस्कार करा देने का प्रलोभन दे तथा मेघादि को धन दे अपने पक्ष में कर भारतीय जनता का अधिक से अधिक शोषण कर अपनी प्रभुसत्ता को सुदृढ़ बनाए रखने की चेष्टा में रातदिन लगा रहता था। अत: दानी रोमक की दिन - दिन बढ़ती लोकप्रियता से अपने हित को संकट में हुआ जान, चिंतित हो वह रोमक के पास भुवन और हिमानी के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव भेजता है। और बदले में, दहेज के रूप में, बहुत सा धन देने का वचन देता है। रोमक, यह सोचकर कि इस सम्बन्ध के स्थापित हो जाने से परस्पर का द्वेषभाव समाप्त हो जायगा और उन्हें निर्धनों के बीच बाँटने के लिए बहुत - सा द्रव्य भी प्राप्त हो जायगा यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं। नील की पुत्री हिमानी बड़ी कुटिल , क्रूर और वाचाल लड़की है। वह भी अपने पिता के षड्यन्त्र में उसका साथ देती है कारण एक बार भुवन द्वारा कोड़े से पिटाये जाने के

कारण वह उसी समय से उससे घृणा करने लगी थी और इससे प्रतिशोध चाहती थी अत: विवाह के समय अवसर निकाल भुवन का वध कर बदला चुकाना चाहती है।

भुवन को अपने माता - पिता की आज्ञा के पालनार्थ अनिच्छापूर्वक ही इस संबंध के लिए तैयार होना पड़ता है कारण एक तो वह हिमानी की चारित्रिक धृष्टता आदि से पूर्व परिचित है दूसरे, नैमिषारण्य में धौम्य ऋषि के आश्रम में रहते समय वह गौरी को अपनी धर्मपत्नी बनाने का वचन दे चुका है। गौरी के प्रति उसका प्रेम उसे ऐसा करने से रोकता है अवश्य पर भुवन यह जानकर कि नैमिषारण्य से अयोध्या अपने माता - पिता के साथ लौटते समय गौरी नदी में अचानक बाढ़ आ जाने के कारण डूब गई और यह सोचकर कि पिता की दानशीलता के क्रम में व्यवधान उपस्थित न हो सब कुछ स्वीकार कर लेता है। अयोध्या की वस्तुस्थिति से अवगत हो ऋषि धौम्य कपिंजल को तप की पूर्णता बता अयोध्या भेज देते हैं। वह पुन: नील के पास ही नौकर करने के अभिप्राय से जाता है कारण धनार्जन कर उसका ऋण चुका वह उसकी दासता से मुक्त होना चाहता है। नील को उसे पहचानने में धोखा होता है और वह उसे अपने यहाँ नौकर रख लेता है। कपिंजल की, वहीं गौरी से भेंट होती है। वह भी अयोध्या लौटते समय मार्ग में नदी की बाढ़ में माता - पिता को खो, जीविकोपार्जन हेतु नील की हृदयहीना दुहिता हिमानी की सेविका बनकर उसी के यहाँ रहने

लगी थी। वह इस नौकरी से प्राप्त आयको एकत्रित कर अकाल - काल में माता - पिता द्वारा के राजा रोमक के लिये गए ऋण को चुकाना चाहती थी। हिमानी ने उसका नाम रेवती रख दिया था। कपिंजल और गौरी दोनों एक - दूसरे को पहचान एक - दूसरे के भेद को छिपाये रख भाई - बहन की तरह मिल्जुल कर रहने लगते हैं और अपनी व्यवहार - कुशलता, कार्यक्षमता से नील और हिमानी के कृपा-पात्र बन जाते हैं। उन्हें शीघ्र ही रोमक और भुवन के विरुद्ध नील और मेघ के षड्यन्त्र का पता लग जाता है अत: वे उसके प्रति सजग दृष्टि रखने लगते हैं। नील कपिंजल के हाथों मेघ के पास षड्यन्त्र से सम्बन्ध गुप्त पत्र भेजा है। निरक्षर कपिंजल, उसकी आँखें बचा, गौरी से उस पत्र को पढ़वा, आशय समझ भुवन और रोमक के पास ले जाता है और उन्हें उसके रहस्य से अवगत कराकर ही उस पत्र को मेघ के पास पहुँचाता है। भुवन के पास उसकी भेंट धौम्य ऋषि आश्रम से आए आरुणि, वेद और कल्पक से होती है। उनके आगमन से उसे प्रसन्नता होती है। बातचीत के क्रम में वह गौरी की, राजा भुवन के प्रति सहानुभूति की भी चर्चा करता है। गौरी के अब तक जीवित होने के समाचार को सुन भुवन के पिता रोमक और माता ममता भी गौरी और भुवन के प्रेम के संबंध में जान-सुन प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।" (29)
इस तरह रोमक और भुवन नील के षड्यंत्र से पूर्णत: परिचित हो पूरी सावधानी के साथ बारात लेकर नील के यहाँ आते हैं। आचार्य मेघ

अपने दल को, अच्छी तरह ठीक - ठाक कर नील की पशुशाला में प्रच्छन्न रूप से रखकर स्वयं विवाह का पुरोहित बन जाते हैं। पूर्व योजनानुसार हिमानी अपने देश की प्रथा के अनुसार विवाह से पूर्व अपने देता बालदेव की पूजा कराने के लिए भुवन को एक कमरे में ले जाती है। अपनी विश्वासपात्र सेविका रेवती (गौरी) को वह अपने सहायक के रूप में साथ लेती है। पूजा से पूर्व भुवन की नजर गौरी पर पड़ती है और वह उसे तुरंत पहचान जाता है। गौरी की उपस्थिति से वह आश्वस्त होता है, फिर भी सावधान रहता है। पूरी सावधानी बरतते हुए मूर्ति को प्रणाम करने के लिए वह ज्यों ही झुकता है हिमानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार उसकी पीठ में छुरी भोंक उसका काम तमाम कर देना चाहती है, इसी समय भुवन की रक्षा के लिए पहले से तैयार सजग, सतर्क रेवती (गौरी) उसे धकेल कर बाँध लेती है। नील की इस अवसर पर सांकेतिक भाषा से अवगत भुवन वहाँ रखे शंख को उठाकर फूँकता है जिसे सुन पहले से तत्पर आरुणि दीर्घबाहु को, सोम मेघ को, रामक नील को जकड़ लेते हैं। नील की पशुशाला में छिपे, उनकी सहायता के लिए आये जन वेद और कल्पक द्वारा कौशल से पशुशाला के किवाड़ों की सांकल .. बाहर से चढ़ा देने के कारण शंख - ध्वनि को सुनकर भी भीतर ही तड़प कर रह जाते हैं। यही नहीं उनकी वहाँ घोर दुर्दशा भी होती है। बाहर के कोलाहल से भयाक्रान्त पशुशाला के पशु रस्सी तोड़कर उनसे भिड़ जाते हैं। किसी पर गधे और खच्चर की दुलती

पड़ती है किसी को गाय - भैंस के सींगों की ठोकर मिलती है। बाहर - भीतर सर्वत्र त्राहि - त्राहि मच उठती है। इस कारण मेघ और नील का षड्यन्त्र भी बरामद होता है। परिणामत: मेघ - वर्ग को देश - निकाले की सजा मिलती है। इसी समय कपिंजल अपने श्रम से अर्जित धनराशि को नील को सौंप, उसके ऋण को चुका उसकी दासता से मुक्त होता है। भुवन की माँ भुवन और गौरी के पूर्व प्रेम से अवगत तथा गौरी के इस समय के इस प्रकार के उपकार से उपकृत हो दोनों का परिणय -संस्कार करा देती है। इस समय गौरी अपने श्रम से अर्जित धनराशि को रोमक को दे माता - पिता द्वारा लिये गये ऋण से मुक्त होती है। रोमक को अयोध्या का खोया हुआ राज्य पुन: प्राप्त हो जाता है।

समीक्षा :--

उपन्यास की मुख्य कथा है - अयोध्यापति रोमक के अतिशय लाड़-प्यार से बिगड़े, चंचल, उद्दंड, वाचाल युवक पुत्र भुवन की प्रकृति में धौम्य ऋषि की छत्रच्छाया में रहने से सुधार, गौरी से प्रेम, बिछोह तथा अंत में मिलन और परिणय सूत्र में आबद्ध होना।

इस उपन्यास में आए पुरुष पात्रों में प्रधानता भुवन की है और नारी पात्रों में हिमानी और गौरी की। इन्हीं तीनों पात्रों का चरित्र इस उपन्यास में पूरी तरह स्पष्ट हुआ है। इनके अतिरिक्त

आए अन्य पुरुष और नारी - पात्रों में उल्लेख है - राजा रोमक, आचार्य मेघ, विदेशी व्यापारी नीलमणि, दीर्घबाहु, कपिंजल, ऋषि धौम्य और गौरी। गौण पात्रों में आरुणि, वेद, कल्पक, पुरोहित, सोम इत्यादि की गणना की जा सकती है।

उपन्यास की कथा विस्तृत एवं व्यापक है, फिर भी उसमें सफल कथानक के सभी अपेक्षित तत्वों यथा स्वाभाविकता , गतिशीलता जिज्ञासा आदि का सफल और समुचित निर्वाह हुआ है। आद्यन्त कथा विकासगति स्वाभाविक है। इसमें आई सभी घटनाएँ संश्लिष्ट हैं। आद्यन्त कथानक में जिज्ञासा भावना बनी रही है।

अपने अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की तरह इस उपन्यास की रचना के पीछे भी उपन्यासकार का उद्देश्य अतीत के माध्यम से वर्तमान को प्रेरणा, स्फूर्ति और शक्ति देना रहा है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि इस कृति में उनका उद्देश्य और आदर्श जितना स्पष्ट रूप में खुलकर प्रकाश में आया है उतना अन्य कृतियों में नहीं। यहाँ वे पाठक को आदर्श-ग्रहण की सीख देते जैसे लगते हैं। उन्होंने लिखा है -"उस काल के सलोनेपन, जीवत, संयम और सद्यता को हम आज के जीवन में उतार सकें तो क्या बात है --- बिना समय और अनुशासन के समाज की गाड़ी आगे नहीं बढाई जा सकती। "वर्तमान समाज की अनुशासनहीनता से जब प्राचीनकाल के समाज की संयमशीलता की तुलना करते है

तब आश्चर्य होता है कि क्या से क्या हो गया है।"§30§ तात्पर्य कि साम्प्रतिक देश - काल समाज में व्याप्त अनास्था , उदासीनता, संयमहीनता आदि विकृत हेय - प्रवृत्तियों से देश वासियों को त्राण किस प्रकार तथा कैसे मिल सकेगा। इसी के मार्ग दर्शन हेतु उनकी प्रवृत्ति इस उपन्यास को लिखने की हुई है। उपन्यास के कथानक के माध्यम से उन्होंने यही कहना चाहा है कि जिस माध्यम से भुवन और रोमक को धर्म और कर्म के सत्य स्वरुप का बोध हुआ था वही वर्तमानकाल के लिए भी प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। उन्होंने कहा भी है --"मानव सम्पूर्णतया कभी अशक्त नहीं होता, हो नहीं सकता- यदि ऐसा हो तो सृष्टि कार्य खंडित हो जाए। हमें अपने समाज में जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊँचे आदर्शों के प्रति गति - हीनता दिखलाई पड़ती है। वह विकास की क्रम की एक कड़ी मात्र है, जो चिरकाल तक नहीं रह सकती।"§31§ उन्होंने कथानक के मध्य ऋषि धौम्य के माध्यम से भी पाठक को खुला संदेश दिया है।

3.3.6 महारानी दुर्गावती :---

अगहन की पूर्णिमा के दिन मनियागढ़ में मनिया देवी के मन्दिर के समीप लगे मेले के अवसर पर उपस्थित गोड़वाने के राजा दलपतिशाह आस पास के जंगलों में एक बड़े शेर को तीन तीरों के प्रहार से मारने में सफल होते हैं। मन्दिर के समीप प्रदर्शनार्थ रक्खे शेर को देखने के लिए

भीड़ उमड़ पड़ती है। सभी राजा की अचूक निशानेबाजी की प्रशंसा करते हैं। अपने नगर के कुछ नर - नारियों के साथ वहाँ आयी, कालंजर के चन्देल राजा कीर्तिसिंह की पुत्री दुर्गावती की सहेली रामचेरी को शेर को देख आश्चर्य प्रगट न कर ` यह कहते हैं कि हमारे यहाँ होता तो एक तीर में चटकर दिया गया होता, सुन राजा उसे अपने एक तरुण साथी मोहनदास से अपने पास बुलवाते हैं। उससे दुर्गावती की अचूक निशानेबाजी, संगीत और चित्रकला के प्रति उसकी रुचि और साहस से अवगत होने पर उनके मन में उसे देखने की इच्छा बलवती होती है। इस क्रम में रामचेरी और मोहन एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। कालंजर लौट रामचेरी दुर्गावती को दलपतिशाह के सौन्दर्य और शौर्य से न केवल अवगत कराती है वरन् उनका एक चित्र बनाकर भी उसे देती है। उनके शौर्य - पराक्रम से पहले से बहुत कुछ अवगत दुर्गावती उससे उनकी प्रशंसा सुन और उनके चित्र को देख उनके प्रति न केवल आकर्षित होती है वरन् उन्हें मन - ही - मन अपना आराध्यदेव स्वीकार उनका चित्र हिफाजत से रखवाती है। इस समय तक वह कई वंशों के राजकुमारों को वरण करने से नहीं कर चुकी है। इस समय दलपतिशाह को वरण करने के मार्ग में उसके सम्मुख एक बड़ी रुकावट यह है कि वे राजगोंड है और वह चंदेल। राजगोड़ों को अपने से बहुत नीचा समझ उसका छुआ पानी तक नहीं पीनेवाले चंदेल इस सम्बन्ध को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

दुर्गावती कीर्तिसिंह की एकमात्र संतान थी। उसकी माँ का देहांत हो गया था, अतः कीर्तिसिंह ने उसे बड़े लाड़ - प्यार से पाला-पोसा था। उसे उन्होंने पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। वह बाण - विद्या, तलवार चलाने, शिकार खेलने में निपुण, कुशाग्रबुद्धि की लगभग अट्ठारहवर्षीया कन्या थी। कीर्तिसिंह उसके साथ राजकीय समस्याओं पर विचार - विमर्श किया करते थे। उसकी चतुर और विश्वसनीय सहेली रामचेरी भी ऐसे अवसरों पर उसका साथ दिया करती थी। बातचीत के क्रम में रामचेरी दलपतिशाह का प्रसंग उठाती है और राजगोंड क्षत्रिय है या नहीं -- इस सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा प्रकट करती है। दूसरे दिन कीर्तिसिंह दलपतिशाह के पास मनियागढ़ कालंजर शिकार खेलने के लिए आने का निमन्त्रण भेजते हैं। दलपतिशाह को उनका निमन्त्रण स्वीकार्य होता है। दुर्गावती दलपतिशाह के प्रत्यक्ष दर्शन कर और उनके शौर्य - पराक्रम को देख काफी प्रभावित होती है। एक रात शिकार के क्रम में दलपतिशाह एक घायल पर क्रुद्ध शेरनी के आक्रमण से दुर्गावती की रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगाकर करते हैं। कीर्तिसिंह उनके इस प्रयत्न से प्रभावित हो उन्हें दुर्गावती के उपयुक्त वर समझ, उनसे दुर्गावती के परिणय - संस्कार के अपने निश्चय से उन्हें अवगत कराते हैं।

दलपतिशाह के कालंजर - त्याग के समय पूर्व निश्चित योजना के अनुसार दुर्गावती और रामचेरी सुरंग के रास्ते से उनसे आ मिलती हैं

और उनके साथ मनियागढ होते हुए सिंगौरगढ़ पहुँचती हैं। वहीं दुर्गावती की शादी दलपतिशाह से और रामचेरी की मोहनदास से वैदिक रीति के अनुसार बड़ी धूमधाम के साथ होती है। उनके भागने की सूचना पा सुधरसिंह कुछ दूर तक उनका पीछा कर लौट जाते हैं।

विवाहोपरान्त दुर्गावती राज्य कार्य में अपनी सहायता का हाथ बँटाना शुरू करती है। दलपतिशाह समझता है कि अब उसे दुर्गावती के रूप में सही और महान् नेतृत्व मिला है। दुर्गावती राजा के साथ मदनमहल, संग्राम-सागर, त्रिपुरी, मेघाघाट, बाजनामठ, माहिष्मती, दमोई, चौरागढ़ आदि स्थानों का भ्रमण करती है और जगह - जगह आवश्यकतानुसार मंदिर तालाब आदि बनवाने का परामर्श देती है।

दुर्गावती के पलायन की सूचना कीर्तिसिंह को सधरसिंह मिलती है। महोबा से कालंजर लौटने पर वे विषण्ण सुधरसिंह को प्रबोधते हैं। दुर्गावती के हाथ से निकल जाने के कारण सुधरसिंह के मन में जलन थी और रामचेरी पर क्रोध फिर भी उन्हें अपना भविष्य आशामय दिखाई पड़ता है। शेरशाह के आक्रमण से कालंजर की रक्षा हेतु कीर्तिसिंह उनसे राय - सलाह ले चौरागढ़ दलपतिशाह के पास सहायतार्थ पत्र भेजते हैं। उसी समय दुर्गावती के परिणय में कीर्तिसिंह का पुरा हाथ है, सब कुछ उन्हीं की स्वीकृति और निर्देशन में हुआ है, वे प्रत्यक्षत: तो कुछ नहीं जताते है पर मन - ही - मन बल का उत्तर

बल से और छल का छल से देने का संकल्प करते हैं। कालंजर पर शेरशाह के आक्रमण के समय दलपतिशाह के मांडू और मालवा के सूबेदारों के साथ युद्ध में उलझे रहने के कारण उनकी सहायता कीर्तिसिंह को नहीं मिल पाती है। वे सुधरसिंह की सहायता से उसका मुकाबला करते हैं अवश्य पर सुधरसिंह के विश्वासघात के कारण मुगल सेना किले के अन्दर प्रवेशकर उनका वध करती है और सुधरसिंह की रेतीगढ़ की जमींदारी अपने अधीन कर उन्हें भगा देती है।

वीर नारायण जब तीन वर्ष का होता है, दुर्गावती विधवा हो जाती है। प्रचलित रिवाज के अनुसार वह , वीरनारायण और जनहित की बात सोच सती नहीं होती है। चन्द्रसिंह रूठकर चाँदा चला जाता है। रानी राज्य की संभाल ध्यान, अध्यवसाय और दृढ़ता के साथ, आरम्भ करती है। वह राज्य के सामन्तों और राजाओं की तिविध, उसकी आवयकताओं की वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के अभिप्राय से चौरागढ़ वराहमान, हरियागढ़,माहिष्मती, भीमकुण्डी आदि स्थानों का भ्रमण करती है। वह राज्य की पहली विपद जनकष्ट को समझ स्थान - स्थान पर तालाब बनवाने का परामर्श आधार सिंह को देती है।

एक दिन शिकार के हित ग्वालियर आए दिल्ली के बादशाह अकबर की भेंट महन्त गोपानन्द से होती है। गोपानन्द रानी से

कहता है कि रानी दुर्गावती को इस बात के लिये आश्वस्त - विश्वस्त अकबर उसका शुभेषी है, पर इस बात के लिये प्रसन्न हैं कि रानी ने बहादुरों को कई लड़ाइयों में परास्त किया, वह आवश्यकता पड़ने पर उनकी सब प्रकार से सहायता करने के लिए तैयार है, अपने व्यवहाचरण से उनका विश्वासपात्र बन जाते हैं। वे कुछ दिनों बाद गढ़वाने से यह संदेश - इस समय आपकी किसी सहायता की आवश्यकता नहीं, बस कृपा बनी रहे-लेकर दिल्ली लौट आते हैं। एक महीने बाद अकबर के यहाँ से आए फरमान ---- "····· आप महान एक औरत है, आपका काम राज करना नहीं है। महल में मौज करें····· अपने दीवान आधारसिंह को अपने हाथी के साथ भेज दे, वरना खैर न समझे।"§32§ --- का जवाब रानी किंचित मात्र भी विचलित हुए बिना भेजती है --"मैं तुम सरीखे पुरुष की अपेक्षा राज्यदण्ड धारण करने के अधिक योग्य हूँ।·······।"§33§

इसी समय कड़ा मानिपुर से आसफ खाँ का भेजा सोने के एक पिंजरे और एक पत्र जिसका आशय था -- स्त्री होकर राज्य मत करो, इस पिंजरे में बन्द रहो - से युक्त, एक खरीता आता है उसके उत्तर में रानी सोने के एक पीजन के साथ उसके पास लिखता भेजती है -- "हे अकबर तुम राज्य करने योग्य बिल्कुल नहीं हो। तुम तो पीजन से रुई धुना करो"

एक दिन रानी को उनसे अकबर के दिल्ली से प्रस्थान करने और आसफ खाँ के मनियागढ़ पर अधिकार होने के साथ - साथ उसकी गतिविधि की सूचना मिलती है। उनके सहायतापूर्ण कार्यों से प्रसन्न वह गोपानन्द को विजयश्री प्राप्त होने पर एक बहुत बड़ी जागीर देने का वचना देती है जिसे जान-सुन शिष्यों को प्रसन्नता होती है। वे सोचते है -- यदि आसफ खाँ हारा तो इधर बड़ी जागीर। दुर्गावती हारी तो उधर जागिर बनी-बनाई। गोपानन्द को अकबर की बातों पर विश्वास नहीं होता है, फिर भी, वे कुछ - न - कुछ करते रहना चाहते हैं। आसफ खाँ मनियागढ़ से धीरे - धीरे आगे बढ़, आसपास के छोटे - छोटे गढ़ों और गढ़ पहाड़ी पर अधिकार कर दमोह के उत्तरीय पहाड़ी क्षेत्र में आ ठहरता है। समाचार मिलने पर रानी स्वयं किले से बाहर निकलकर दमोह की पहाड़ियों में उसका मुकाबला छापा मार करती है। रानी गोपानन्द और उनके शिष्यों को अपना सहायक विश्वासपात्र समझकर भी उनसे अपना कार्यक्रम छिपाती है -- परिमाणत: आसफ खाँ को गोपानन्द के शिष्यों से प्राप्त सूचना के आधार पर कार्य करने से निराशा हाथ लगती है। परिणामत: एक दिन क्रोधावेश में आ वह उनके तीन शिष्यों की हत्या करवा देता है। एक दिन सुरंग के रास्ते से नदी में स्नान करने के लिये गये गोपानन्द की मुठभेड़ आसफ खाँ के सिंगौरगढ़ किले में प्रवेश करने के हित आए चार सैनिकों से होती है। गोपानन्द घायल होकर अचेत होते हैं।

उनके घावों की मरहम पट्टी के लिये, कोपीन हटाये जाने पर उनकी बाँह पर गुदे महाराज सुघरसिंह रेती - राम को देख सभी आश्चर्य होता है। उनके कोपीन धारण करने और सुरंग के मार्ग से नदी में एकांत में, स्नान करने जाने का रहस्य सबकी समझ में आ जाता है। रानी दुर्गावती अपना विचार मुझे संदेह हुआ था पर विश्वास नहीं हुआ था -- प्रकट कर भी उन्हें दुर्गति - ग्रस्त मानव समझ उनका उपचार होने देती है। घायल गोपानन्द को किले के भीतर लाते समय उनके शिष्य सुरंग का दरवाजा बन्द करना भूल जाते हैं, परिणामत: मुगल सेना उस रास्ते से अचानक किले में प्रवेश कर मार - काट शुरू करती है। किले की रक्षा असंभव समझ रानी सबके साथ आधी रात समय गढा के लिये प्रस्थान करती है। सुघरसिंह को भी वह साथ ले लेती है यह सोचकर कि मुगल उनका वध किये बिना नहीं रहेंगे। सिंगौरगढ पर आसफ खाँ का अधिकार हो जाता है। महारानी अधिकांश सैनिकों और सामग्री को अपने साथ रख बाकी को गढा भेज, चौरागढ की दिशा में प्रस्थान करती है। इसी समय उन्हें पाटन से भागकर आए कुछ सैनिकों से पाटन गढ किले पर आसफ खाँ के अधिकार होने और मुगलों के एक बड़े दस्ते के चौरागढ की तरफ जाने की सूचना मिलती है, अत: वह चौरागढ जाने का संकल्प त्याग द्रुतगति से गढा की तरफ मुड़ती है। उनका गढा पर घेरा डाले मुगल सैनिकों से मुकाबला होता है। मुगल सेना हारकर तितर-बितर हो जाती है।

महारानी महसूस करती है कि मुगल तोपों का सामना करने की क्षमता गढ़ा में नहीं है अत: वह गढ़ा छोड़ छापमार युद्ध करते - करते चौरागढ़ पहुँचने का निश्चय मन में धारण कर गढ़ा का त्याग करती है। नर्मदा नदी में वर्षा के कारण अचानक बाढ़ आ जाने से उन्हें गढ़ा के दक्षिणी-पश्चिमी जंगलों में रुकना पड़ता है। इसकी सूचना पा आसफ खाँ बहुत बड़ी सेना के साथ गढ़ा मोर्चाबन्दी करता है। रानी उसका मुकाबला करती है और उनकी सभी मोर्चों पर, विजय होती है। पुन: दूसरे दिन वीरनारायण दक्षिणी मुगल मोर्चे पर आक्रमण कर उसे मार भगाने में सफल होता हुआ एक तीर के लगने से घायल होता है। रानी अपने सरदारों - मियाँ भिखारी सभी और जोधा - की वीरनारायण को जैसे बने तैसे शीघ्र चौरागढ़ पहुँचाने के लिये भेजती है और स्वयं आसफ खाँ की सेना का मुकाबला करती है और बिछिया पहाड़ी और भूरह पर्वत के बीच युद्ध करती हुई मुगलों को तीरों के प्रहार से घायल होती है। अपना अंतिम समय निकट आया देख जीते - जी मुगलों के अधिकार में पड़जाने के भय से वह स्वयं अपने हाथों अपनी छाती में कटार भोंक इस लोक की यात्रा समाप्त करती है। उनका घायल हाथी सरमन वहीं गिर, उनके शव को पूरी तरह ढंक, उन्हें मुगलों के हाथ में पड़ने से बचाता है। घायल महावत गनू भी वहीं हाथी के समीप गिरता है। मृतप्राय हाथी उस पर सूँठ का सिरा रख देता है। अधारसिंह कुछ बचे सैनिकों के साथ चौरागढ़ चला जाता है। गोड़वाने

का एक व्यक्ति भी जीवित नहीं बचता है। वह स्थान बिल्कुल निर्जन हो जाता है। दूसरे दिन कुछ गोड़ ताकते - झाँकते वहाँ आते हैं। और मृतप्राय गन से सबकुछ जान बड़ी कठिनाई से हाथी की लाश को रानी के शव पर से हटा उसका दाह करते हैं। गनू का भी प्राणांत हो जाता है।

दो महीने के उपरान्त आसफ खाँ चौरागढ़ पर आक्रमण करता है। वीरनारायण मोहनदास आदि किले के आन्द से उसका मुकाबला करते हैं पर उसकी तोपों के सम्मुख उनका शौर्य अधिक समय तक नहीं ठहर पाता है। परिणामत: वे जोहर का निश्चय करते हैं। वीरनारायण आदि सभी पुरूष युद्धभूमि में लड़ते - लड़ते प्राण त्यागते हैं और राम रामचेरी आदि महिलाएँ सती हो जाती हैं। आसफ खाँ को लूट का बहुत माल हाथ लगता है पर वह अकबर के पास उसका कुछ अंश भेज सब डकार जाता है। "अकबर को हाथ में बनाये रखने के लिये वह जाल रच दो सुन्दर युवतियों को उसके पास भेज देता है यह कहकर इनमें से एक दुर्गावती की बहन है और दूसरी एक राजा की पुत्री, जिसकी शादी की वीरनारायण से होनेवाली थी।"《34》 वे युवतियाँ भी ऐसा ही कहने के लिए सिखला दी जाती है। यह छल और झूठ पूरी तौर पर बरता जाता है। कुछ समयोपरान्त देश की उस मूर्तिमन्त निर्मल - ज्योति दुर्गावती के अवशेष पर निकटवर्ती दीन जनता एक चबूतरा बना देती है और श्वेत फूल एवं श्वेत पत्थर के कंकड़ चढ़ाने लगती है।

आज भी जो कोई उस समाधि के पास से निकलता है मस्तक झुकाकर श्वेत पत्थर चढ़ा देता है।

समीक्षा :---

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यास की मुख्य कथा है - चन्देलवंश में उत्पन्न दुर्गावती का राजगोड़ दलपतिशाह से वैवाहिक संबंध स्थापित होने विधवा होकर शासन - भार संभालने और अंत में अपनी आन - बान शान की रक्षा हेतु आसफ खाँ से लड़ते हुए प्राणोत्सर्ग करने की कथा।

उपन्यास की मुख्य कथा तीन खंडों में बाँटी जा सकती है -- दुर्गावती की, दलपतिशाह से परिणय संस्कार होने से पूर्व की कथा, परिणय - संबंध स्थापित होने के बाद से विधवा होने की पूर्व की कथा, विधवा होकर शासन - भार संभालने के बाद की कथा।

पूरे उपन्यास में नारी पात्र सिर्फ दो है -- दुर्गावती और रामचेरी। इन दोनों में प्रधानता दुर्गावती की ही है। पुरुष पात्रों भी संख्या अधिक है जिनमें मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं - कीर्तिसिंह, दलपतिशाह, मोहनदास, आसफ खाँ, वीरनारायण, अकबर, सुधरसिंह, अधारसिंह, बाज बहादुर, गनू इत्यादि।

उपन्यास की कथा आद्यन्त दुर्गावती के चरित्र और व्यक्तित्व पर ही आश्रित है। सभी पात्र एवं घटनाएँ उसी के इर्द - गिर्द

मंडराती है। सभी पात्रों एवं घटनाओं का संबंध उससे जुड़ा हुआ है। उपन्यासकार का मन जितना दुर्गावती के चित्रण में रमा है उतना अन्य किसी पात्र के चित्रण में नहीं, अत: उपन्यास का प्रधान चरित्र वही है और उसके आधार पर उपन्यास का नामकरण सब प्रकार से सार्थक और उचित है।

उपन्यास की कथा में आद्यन्त रोचकता, गतिशीलता, स्वाभाविकता बनी रही है अवश्य पर स्थान - स्थान पर परिचयात्मक विवरण के आ जाने से कथा की गति में शिथिलता आ गई है, फिर भी उपन्यासकार को अपने अभीष्ट की सिद्धी - महारानी दुर्गावती के शौर्य, पराक्रम जन - हित - चिंतन, कठिनाइयों के सम्मुख सिर न झुकाने सशक्त मनोबल आदि के वर्णन में सफलता मिली है, इसमें संदेह नहीं। उपन्यास के प्रमुख पात्र दुर्गावती का अन्त दुखात्मक है पर वह प्रेरणादायक और स्फूर्तिवर्द्धक है।

3.37 रामगढ़ की रानी :---

यह ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें सन् 1857 की क्रान्ति में अंग्रेजों के विरुद्ध बड़ी बहादुरी के साथ, साहसपूर्वक लड़ते - लड़ते वीर-गति प्राप्त करनेवाली मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई के शौर्य, पराक्रम, रणकौशल की कथा वर्णित है। उपन्यास की कथा इस प्रकार है ---

खुड़देवरा के लोधी ठाकुर उमरावसिंह के पास बहुत सी माल गुजारी बाकी थी अत: इसके लिए जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर की कचहरी में सन् 1857 के फरवरी - मार्च महीने में, उपस्थित होना पड़ता है जहाँ उनकी उमेठी हुई मूछे सीधी करवायी जाती है। यह उन्हें बुरा लगता है और वे अपने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय मन ही मन करते हैं इसी तरह जब पुरवा के राजा शंकर साह का सरबराकर कारिन्दा गिरधारी दास रिवाजानुसार "धरीचा" पुनर्विवाह के लिए करके रूप में दस रूपये वसूल कर अपने मालिक को देता है, उसे डिप्टी कमिश्नर के आज्ञानुसार उस रकम को सरकारी खजाने में जमा करना पड़ता है। इस घटना से कचहरी के बाहर बैठे लोगों को रंज होता है। उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड से जबलपुर आया एक अंग्रेजी व्यापारी अंग्रेज ईसाई पादरी के साथ कपड़े की दूकान पर जाता है। दूकान पर जगतसिंह और पण्डित कर्णदेव के व्यवहार में उसे अशिष्टता, अभद्रता नजर आती है अत: वह उनकी बेअदबी की शिकायत डिप्टी कमिश्नर से करने की धमकी देता है। लेकिन जगतसिंह पर उसकी धमकी का कोई असर नहीं पड़ता है। वे स्पष्ट शब्दों में चुनौती देते हैं ---

" कर दो शिकायत, हम राजपूत न कभी दबे हैं और न कभी दबेंगे।" (35)

पादरी को विश्वास है कि एक - न - एक दिन सभी हिन्दू, ईसाई बन जायेंगे लेकिन जगतसिंह की इस स्पष्टोक्ति -"आप चाहे हिन्दू हो जायें, पर हम लोग अपना धर्म कभी नहीं छोड़ेंगे।" (36)

- से उसके विश्वास को धक्का लगता है, फिर भी वह विचलित नहीं होता है। दोनों [जगतसिंह और कर्णदेव] महसूस करते हैं --"इन विदेशियों ने हमारे देश को हड़पा, धरती माता की छाती पर पैर रौंदे, रोजगार नष्ट किये, अब धर्म की गर्दन काटने पर उतारू है।-- एक दिन अवश्य आयेगा जब हम स्वतन्त्र होकर रहेंगे।"[37]

इस समय रामगढ़ का राज्य तो समाप्त हो चुका था पर वहाँ का अन्तिम राजा विक्रमादित्य बहुत बड़ा मालगुजार था। वह पागल कहा जाता था इस कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उच्च पदाधिकार ने रामगढ़ क्षेत्र को कोर्ट कर लिया था और उसके पदाधिकारी रामगढ़ में बैठकर हुकूमत करने लगे थे। शौर्य और सुन्दरता की सम्मिलित मूर्ति अवन्तीबाई [विक्रमादित्य सिंह की पत्नी] पति की सेवा, उनकी देखभाल, उनकी सुख - सुविधा का ख्याल तो किया ही करती है, साथ ही , देश की राजनीतिक गतिविधि में भी रुचि रखती है। इसके दो पुत्र - अमानसिंह और शेरसिंह हैं। अमरावसिंह से डिप्टी कमिश्नर के व्यवहार तथा परदेशियों के हिन्दुओं को बेध रमकर डालने के निश्चय को सुन उसे क्रोध होता है और वह अपना निश्चय --"जबतक हमारे तन में रक्त की एक बूंद है तबतक कोई हमारा धर्म नष्ट नहीं कर सकेगा --- अन्याय के प्रति जीवनपर्यन्त लड़ूँगी। सिर दे दिया जायगा, परन्तु धर्म नहीं दिया जायगा। --- इन परदेशियों को अब अपने देश की छाती पर और अधिक होल नहीं भूनने दिया जायगा।"[38]

-प्रकट करती है। वह अंग्रेज अफसरों से किसी बात की शिकायत और फरियाद अनावश्यक समझती है कारण वह जानती है - होना इनसे कुछ नहीं है। उसकी समझ से - असली काम है साधारण जनता से हिलमिल कर रहना, परदेसियों को देश से बाहर धकेल देना। हथियार से अधिक महत्वपूर्ण वह हृदय और हाथ को समझती है और प्रदेश के लोधी ठाकुरों, गोंडों को उठाने की आवश्यकता महसूस करती है। काम सावधानी और दृढ़ता के साथ किया जावे, फल भगवान के हाथ में है -में उसकी आस्था है।

अंग्रेज़ों के व्यवहार से क्षुब्ध, कुपित जबलपुर के मुखिया सरदारों - यथा खड़देवरा के ठाकुर जगतसिंह, जबेरा के मालगुजार, कदिव, सुकरी वर्गी के बहादुर सिंह आदि की बैठक पुरवा में महारानी दुर्गावती के वंशज शंकरसाह की हवेली में होती है। उमराव सिंह अवन्तीबाई का प्रतिनिधि बनकर उसमें सम्मिलित होते हैं, गिरधारी भी। सभी महसूस करते हैं कि अंग्रेज़ों को देश से बाहर निकालना इस समय हम लोगों का सबसे बड़ा कर्तव्य है। देश की स्थिति - परिस्थिति पर विचार - विमर्श कर सबकी राय से शंकरसाह, रघुनाथ साह (शंकरसाह के पुत्र) , जगतसिंह, उमराव सिंह, बहादुर सिंह आदि डिप्टी कमिश्नर के बंगले पर शिकायत और फरियाद करने जाते हैं पर कुछ परिणाम नहीं निकलता है बल्कि उससे दोनों (अंग्रेजों और मुखिया सरदारों) के बीच कटुता बढ़ती ही है।

इस परिणाम से अवगत रानी प्रमुख मुखिया सरदारों के पास एक पुड़िया --"जिसमें एक छोटा - सा टुकड़ा कागज का रखा था और काँच की एक बहुत सादा चुड़ी। कागज पर लिखा था -- देश की रक्षा करने के लिए या तो कमर कसो या चूड़ी पहनकर घर में बन्द हो जाओ। तुम्हें धर्म - ईमान की सौगन्ध है जो इस कागज का पता हैरी को दो --"{39} भेजते है। उमराव सिंह को वह स्वयं पुड़िया देती है। वह जबलपुर में स्थित देशी पल्टन के मुखियों से सम्पर्क स्थापित करने का विचार उमरावसिंह के सम्मुख रख इसके लिये शंकरसाह और रघुनाथ साह से आग्रह कर उन्हीं के ऊपर यह कार्य - भार सौंपने की बात कहती है। जनता अंग्रेजी के व्यवहार से क्षुब्ध थी ही। शंकर साह रानी की इस सजगता, प्रयत्नशीलता की प्रशंसा करते हैं और दोनों बाप - बेटों घूम - घूमकर कवि सम्मेलन, सभी आदि के द्वारा इस उद्देश्य का प्रचार करते हैं। गिरधारी भी उनका साथ देता है। वे बावन नम्बर की देशी पल्टन के सिपाहियों सरदारों से भी सम्पर्क स्थापित करते हैं। सूबेदार बलदेव तिवारी उनसे यदा - कदा मिलकर देश की वस्तुस्थिति पर विचार - विमर्श करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता करने का विश्वास दे तो हैं। वे बावन नम्बर की देशी पल्टन के सिपाहियों, सरदारों से भी सम्पर्क स्थापित करते हैं। सूबेदार बलदेव तिवारी उनसे यदा-कदा मिलकर देश की वस्तुस्थिति पर विचार - विमर्श करते हैं और

आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता करने का विश्वास देते हैं।

रानी भी चैन से नहीं बैठती है। वे अपने राज्य के गाँव - गाँव में घूम प्रमुख व्यक्तियों को अपनी योजना से अवगत कराती है साधारण जनता के हितकार्य में लगी किसानों को उद्बोधित करती रहती हैं। पति की सेवा - सुश्रूषा में भी कसर नहीं लगाती है। जबलपुर के अंग्रेज अफसरों को बाहरी समाचार मिलते रहते हैं। विक्रमादित्य सिंह की अधिक अस्वस्थता के कारण रामगढ़ में कवि सम्मेलन करने से रोके जाने के कारण गिरधारी स्वयं को अपमानित हुआ महसूस करता है। उस समय वह अपना क्षोभ जिन शब्दों में प्रकट करता है उससे अंग्रेजों को वस्तुस्थिति का स्पष्टताभास मिलता है। पुड़िया के वितरण से अवगत वे चौकस, चिंतित थे ही, अत: गिरधारी को अपने काम का आदमी समझ वे उसे अपने सम्पर्क में लाने के लिये प्रयत्नशील होते है। डिप्टी कमिशनर रुपयों का लोभ दे गिरधारी को अपने सम्पर्क में ले आता है। उसके कहने पर गिरधारी देशी पल्टन की छावनियों में जा अंग्रेजों की प्रशंसा के गीत गाने लगता है। इसकी सूचना जब शंकरसाह को बलदेव तिवारी से मिलती है वे उसे अपनी नौकरी से अलग कर देते हैं। बावन नम्बर की देशी पल्टन के सिपाहियों सूबेदारों के मुखिया सरदारों से मिलते - जुलते रहने के रहस्य से अवगत हो अंग्रेज उनकी स्वच्छन्दता पर रोक लगाते हैं जिससे उनका क्षोभ बढ़ता है। इस बीच रानी कम्पनी सरकार के एक अधिकारी को, किसानों

का अपमान करने, उन्हें गाली देने के कारण, न केवल डाँटती - फटकारती है बल्कि उसके चेहरे पर एक चाँटा जड़ उसे वहाँ से हटा देती है। वह इसकी शिकायत डिप्टी कमिश्नर के पास लिख भेजता है। कुपित, क्षुब्ध, स्वतन्त्र गिरधारी अंग्रेज़ों को शंकरसाह, रघुनाथ साह रानी की गतिविधि का पता देता है, शंकरसाह के घर की तलाशी करवाता है, परिणामतः शंकरसाह और रघुनाथ साह तोप के मुँह पर रख उड़ा दिये जाते हैं। इस संवाद से रानी का क्रोध उमड़ पड़ता है। इस समय वह विधवा हो गई रहती है। वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध खुला विद्रोह करती है यह निश्चय कर कि देह में एक बून्द रक्त जबतक रहेगा इन फिरंगियों से लडूँगी। न चैन लूँगी न चैन लेने दूँगी। वह रामगढ़ से कोर्ट ऑफ वार्ड्स के कर्मचारियों को निकाल बाहरसिंह, सरयू प्रसाद सिंह आदि की सहायता भी मिलती है। वे अंग्रेज़ी पल्टन का मार्ग रोकते हैं। मंडला के डिप्टी कमिश्नर कप्तान वाडिंगटन से भी रानी का युद्ध होता है। वाडिंगटन की सेना पीछे हट जाती है। इसी समय अंग्रेज़ों की सहायता के लिये नागपुर से आई एक बड़ी फौज की सहायता से अंग्रेज़ों का हिण्डिया, रामनगर आदि स्थानों पर पुनः अधिकार हो जाता है।

विजयराघव गढ़ के राजा सरयू प्रसाद सिंह गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और उन्हें काले पानी की सजा मिलती है पर जाते समय मार्ग में वे आत्मघात करते हैं। परिस्थिति से अवगत रानी अपने लिये अंग्रेज़ों

से छापामार युद्ध ही श्रेयस्कर समझ पहले शाहपुरा के जंगल में , पुन: देवहर गढ़ के जंगल में मोर्चाबन्दी करती है। इस समय अंग्रेज़ी सेनों की ओर आये आत्मसमर्पण के संवाद को वह यह कहकर ठुकरा देती है कि लड़ते - लड़ते मर भले ही जाऊँ पर परदेसियों के भार से दबूँगी नहीं। वाडिंगटन, बार्टन, कोक्बर्न के दस्ते तथा रींवावाली सेना की सम्मिलित शक्ति से उनका युद्ध होता है। वे लड़ती है पर बाँये हाथ में गोली लगने से जब बन्दूक छूटकर गिर जाती है, अपनी हार निश्चित समझ जीते जी बैरी के हाथ अपना अंग न छुआने के अभिप्राय से वे उमरावसिंह से तलवार माँग अपने पेट में भोंक लेती हैं। अचेत रानी को गिरफ्तार कर वाडिंगटन फौजी अस्पताल में ले जाता है। मृत्यु शय्या पर पड़ी रानी स्वयं को इस विद्रोह का दोषी स्वीकार कर किसानों को बेकसूर बतलाती है। उनका प्राणान्त हो जाता है। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित वाडिंगटन विद्रोहियों को मुक्त कर देता है, उमराव सिंह को फाँसी की सजा मिलती है। अवन्तीबाई का इलाका अंग्रेज जब्त कर लेते हैं और उनके उत्तराधिकारी पुत्रों - उमानसिंह और शेरसिंह - के लिये अट्ठाइस सौ रूपये साल के लगभग हक परवरिश नियुक्त करते है।

समीक्षा :--

उपन्यास की मुख्य कथा है - रामगढ़ की रानी का अंग्रेज़ों के

विरुद्ध सैन्य संगठन, खुला विद्रोह और लड़ते - लड़ते वीरगति प्राप्त करना। इसके अतिरिक्त उपन्यास में आई प्रासंगिक कथाएँ हैं ---

क· पुरवा के शंकरसाह और रघुनाथ की कथा।

ख· शंकरसाह के कारिन्दा गिरधारी की कथा।

ग· खड़देवरा के उमराव सिंह की कथा।

घ· अंग्रेज अफ्सरों की कथा।

ङ· विक्रमादित्य सिंह की कथा।

इन सभी प्रासंगिक कथाओं में प्रधानता उमरावसिंह की कथा की है। इसकी कथा मुख्य कथा के साथ - साथ लगी चलती है और इसकी समाप्ति के बाद होती है। उपन्यास की कथा का प्रारम्भ इसी प्रासंगिक कथा से होता है। उमराव सिंह के माध्यम से शंकरसाह, गिरधारी, अंग्रेज़ अफ्सरों की कथाएँ रानी की कथा (मुख्य कथा) से आ जुड़ती है। सभी प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा को विकास -गति प्रदान करती है। उनका उपयोग उपन्यास में साभिप्राय ही हुआ है।

उपन्यास में आए पुरुष पात्र हैं - उमराव सिंह, शंकरसाह, रघुनाथ साह, ठाकुर जगतसिंह पण्डित कर्णदेव, गिरधारी, वाडिंगटन बहादुरसिंह, सरयू प्रसादसिंह आदि पर इनमें प्रधानता चार की है - उमराव सिंह, रघुनाथ साह, शंकरसाह , गिरधारी। नारी पात्र सिर्फ एक है -- रामगढ़ की रानी। यही उपन्यास का प्रधान चरित्र है।

उपन्यास के सभी पात्रों का सम्बन्ध इससे है। अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की मुख्य संचालिका यही है अत: उपन्यास का इस प्रधान चरित्र के आधार पर नामकरण सार्थक और उचित है।

उपन्यास में आद्यन्त रोचकता, स्वाभाविकता, गतिशीलता, उत्सुकता बनी रही है।

3.3 सोती आग :--

इस ऐतिहासिक उपन्यास "सोती आग" की रचना वर्मा जी ने सन् 1967 ई• में की है। इस उपन्यास का कथानक सन् 1729 ई में दिल्ली में हुए भीषण दंगे पर आधृत है।

उपन्यास का कथानक इस प्रकार है - अठारह वर्ष के युवक गुलाब खाँ की शादी आजम खाँ की पुत्री शबनम से निश्चित होती है, पर कोकीजू स्वार्थन्धतावश बीच में पड़कर शबनम की शादी शैशनुद्दौला से कराती है और गुलाब खाँ को प्रलोभन देकर शाही महल में रखती है। उस समय बादशाह की बेगमें अपनी अतृप्त वासनाओं को बुझाने के लिये बुर्कापोश तरुणों को विस्तृत शाही महल में चलाकी के साथ छिपाकर रखती थी। गुलाब भी उन्हीं बुर्कापोश तरुणों में से एक बनता है। इससे पूर्व वह शबनम से मिल उसके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करता है। वह शबनम का मौसेरा भाई लगता है, अत: अब शबनम उसे बहन के प्यार

के अतिरिक्त और कुछ देना नहीं चाहती है पर गुलाब उससे संतुष्ट नहीं होता है और निराश लौटता है।

उस समय दिल्ली में दो दल हिन्दुस्तानी और तूरानी (विदेशी) संगठित थे। तूरानी दल उन विदेशियों का था जो हिन्दुस्तान में पैसे और प्रभाव की आकांक्षा से आये थे। यह दल हर समय से भूमि, सम्पत्ति और जनता को पीट - पाटकर भी सत्तारूढ़ रहने में प्रयत्नशील था। नीति उसकी थी पेट भरू आक्रमणात्मक। इस दल के प्रधान थे - आसफजाह निजामुलमुल्क , सादत खाँ, बरहानुलमुल्क, एतेमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ इत्यादि। आजम खाँ भी इसी दल का था। हिन्दुस्तानी दल के प्रधान थे -- जफर खाँ, रोशनुद्दौला, शेर अफगन और जयपुर के राजा सवाई जयसिंह। शुभकर्ण भी इसी दल के थे। यह दल इस देश को अपना देश समझता था और हिन्दुओं तथा पठानों की सम्मिलित शक्ति से निर्मित हुआ था। यह दल जनता के सम्पर्क में था। इस दल से सशंक बादशाह मुहम्मदशाह ने कमरुद्दीन को अपना वजीर बनाया था। कोकीजू, जो मुहम्मदशाह को प्रेमिका थी, वे अपने सौंदर्य और बुद्धि - कौशल से बादशाह की पूरी तरह अपने कब्जे में कर लिया था। वह चाहती थी तख्तता उस पर बैठना, अत: अधिकार हथियाने की आकांक्षा से ग्रस्त वह हिन्दुस्तानी दल का पक्ष समर्थन करती है और इस तरह उसकी मार्फतदारी से इस दल

को भी उस समय महत्त्व मिल जाता है। वह रौनकुद्दौला को कमरुद्दीन को वजीर पद से हटा शबरात हो जाने के बाद वजीर पद दिलाने का न केवल निश्चय करती है बल्कि बादशाह को भी इस बात के लिये राजी कर लेती है।

होली के दिन गुलाब एक बार शबनम से मिलने जाता है पर इस बार भी निराश लौटता है। वह शाही महल के वातावरण बुर्कापोश जीवन से बहुत जल्द ऊब जाता है, अत: वह कोकीजू से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर जब घर लौटता है, पुन: शाही महल में लौटकर नहीं जाने का निश्चय कर, कोकीजू की कठोरता से अवगत आत्मरक्षार्थ वजीर कमरुद्दीन की शरण में जा, उसे कोकीजू के षड्यन्त्रों से अवगत करा उसका विश्वास पात्र बन जाता है। उसे शबनम के खोने का दुख है। वह सोचता है --"शबनम के साथ मेरी शादी जरूर हो जाती, लेकिन हिन्दुस्तानी गुट के उन पाजियों ने अपना पाया मजबूत करने के लिये मुझे बरबाद कर दिया। शबनम बेचारी कुछ कर ही नहीं सकती। खैर••••। सोचते - सोचते उसका मन हिन्दुस्तानी दल के प्रति और अधिक कुढ़ जाता है।

इसी समय हिन्दुस्तानी दल के एक मुल्ला को शाही जुमा मसजिद का इमाम बनाया जाना तूरानी दल को बहुत खटकता है। उन्हें पहले से बादशाह द्वारा हटाए गए जजिया, जो उनके विचार से हिन्दू

और मुसलमान के बीच की एक बड़ी राजनीतिक पहचान थी,

अब वे सोचते हैं --"क्यामत आने में कसर ही क्या रह गई?" §40§ वजीर को भी दुहरी चोट लगती है। सबको हिन्दुओं पर, हिन्दुस्तानी दल पर रंज होता है और वे मौके की तलाश में रहने लगते हैं।

शबरात आने के कुछ दिन पहले से ही हिन्दू और मुसलमान बालक सादुल्ला खाँ के चौक मेंम्र प्रसन्नता की उमंग में, बालहठ, चपलतावश जूताफरोशों के मना करने पर भी पटाखे छोड़ते हैं। एक बालक उस समय उस रास्ते के गुजरती शुभकर्ण §शेर अफगान के दीवान और जवाहर खाने के नायब§ की पालकी के पास सुर्ख और छिछुओं में आग लगाकर छोड़ता है जिसके बड़े - बड़े परे पालकी में बैठे शुभकर्ण के दरबारी लिबास पर पड़ उसमें जगह - जगह सुराख कर देते है। इससे क्रुद्ध शुभकर्ण की आज्ञा प्राप्त कर उसके अंगरक्षक सिपाही हिन्दू - मुसलमान बालकों को पकड़कर मारने - पीटने लगते हैं। सिपाहियों के इस आचरण में शबरात का अपमान लक्ष्य कर जूताफरोश शुभकर्ण से इस कर्म के लिए न केवल प्रतिवाद करते है बल्कि बालकों की रक्षा के लिए दौड़ भी पड़ते हैं। सिपाहियों का हाथ रुकता न देख तथा शुभकर्ण को पहचान उनकी भीड़ में गर्मी आ जाती है और वे सिपाहियों से उलझ उनकी अच्छी मरम्मत करते हैं। क्रुद्ध शुभकर्ण हवेली लौट जूताफरोशों को उनके लिये दंड देने के लिये सिपाहियों का दल भेजता है। ये सिपाही एक बालक को

पकड़कर बेभाव पीटने लगते हैं, हाजी हफीज खाँ जब उसकी रक्षा के लिए आते हैं क्रोधावेश में आ वे उसकी हत्या कर देते है, भय भी अत: आत्मरक्षार्थ, वे सपरिवार शेर अफगान की हवेली में शरण लेते हैं। दूसरे दिन शबनम शेर अफगान की हवेला पर पहुँच शुभकर्ण की पत्नी देवकी आदि की सब प्रकार से रक्षा करने तथा तबतक के लिये वहीं बनी रहने का वचन देती है जबतक मामला पूरी तरह शान्त नहीं हो जाता।

दूसरे दिन घटना से अवगत हो गुलाब जूताफरोशों को हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध न केवल उत्तेजित करता, भड़कता है बल्कि उन्हें तूरानी दल के प्रधानों वजीरुद्दौला, आजम खाँ आदि से सब प्रकार की सहायता दिलवाने का वचन भी देता है। उत्तेजित जूताफरोशों की भीड़ हाजी की लाश को शुभकर्ण की हवेली पर रख शेर अफगान के पास पहुँच उससे शुभकर्ण तथा उसके सिपाहियों को उनके हवाले कर देने की माँग करती है। शेर अफगान उचित तहकीकात के बाद अपराधी को उचित दंड देने का उन्हें विश्वास देता है पर उसकी बातों से अप्रभावित भीड़ उसी समय जफर बाग से लौटती बादशाह की सवारी के पास पहुँच फरियाद करती है। चिड़ - चिड़ाहट में आकर बादशाह वजीर को आज्ञा देता है -- "शुभकर्ण जहाँ कहीं भी हो गिरफ्तार करो और इन्साफ करो।" {4} इससे वजीर को प्रसन्नता होती है और वह उसी समय एक ख्वाजा की शादी फरमान बजा लाने के लिये शेर अफगान की हवेली पर भेजता है। शुभकर्ण की सब प्रकार से, हर

हर हालत में रक्षा के लिए कटिबद्ध शेर अफगन ख्वाजा को खाली हाथ, निराश लौटा देता है।

जूताफरोशों का विरोध आन्दोलन का रूप पकड़ता है। कुछ नये नारों का सृजन होता है जिसमें प्रधान है - जजिया लगाओ। जूताफरोशों को अपने पक्ष में करने तथा उनके दंगे को राजनीतिक रूप देने के लिये स्वार्थान्ध वजीर हाजी की लाश को शुभकर्ण की हवेली को तोड़ वहीं दफनाने तथा उस पर मस्जिद बनवाने की शाही आज्ञा प्राप्त करता है। गुलाब के कहने पर जूताफरोश वैसा ही करते भी हैं।

वजीर गुलाब खाँ तथा आजम खाँ गुप्त मंत्रणा कर शाही जुमा मस्जिद में सब लोग इकट्ठे हो सलाह - मशविरा कर लेने का निश्चय करते हैं। शाही फरमान के अनुसार रौशनुद्दौला को भी उसमें सम्मिलित करने की वजीर की बात गुलाब को बुरी लगती है

कोकीज को गुलाब के भागने तथा उसे पकड़कर दंडित न कर सकने की बात बराबर कसकती रहती है।

11 मार्च, 1729 के दिन, जुमा की दोपहर की नमाज के शुरू होने के पहले ही मस्जिद का आंगन इतना भर जाता है कि एक दो रकातें भी मुश्किल से हो पाती हैं। हिन्दुस्तानी दल का काजी भीड़ का हो - हल्ला शांत करने के अभिप्राय से उन्हें डाँटता, फटकारता है। बदले में जूताफरोश भी उसे बुरा - भला कहते हैं। बात बढ़ती है और

जूताफरोश काजी और उसके सहायकों पर टूट पड़ते हैं इस गड़बड़ी की खबर मिलते ही वजीर और शैशनुद्दौला ससैन्य शान्ति स्थापनार्थ वहाँ पहुँच उसकी बातों का विरोध करता है। इससे जूताफरोशों को उस पर रंज होता है। इसी समय शेर अफगान को वहाँ आया देख जूताफरोशों का दल बेकाबू हो जाता है और सभी एक - दूसरे पर टूट पड़ते हैं। मसजिद के भीतर और बाहर घमासान युद्ध छिड़ जाता है, भीषण मारकाट होती है। शेर अफगान और शैशनुद्दौला को हल्की चोटें लगती हैं। इसी समय मसजिद के बाहर भीड़ के एक भाग में खड़ा गुलाब खाँ, भीड़ के इरादे - शेर अफगान की हवेली पर जा बेगमों, विशेष कर शबनम को तबाह - परेशान करने को सुन सन्नाटे में आ जाता है और उसी क्षण भीड़ की नज़र बचा शबनम के रक्षार्थ शेर अफगान की हवेली पर पहुँचता है। शबनम से इस बार भी उपेक्षा पाकर भी वह बलवाइयों से उसकी रक्षा के प्रयत्नों में घायल होता है और मर जाता है। उसकी लाश रातों - रात उसी के [गुलाब के] मकान में दफन दी जाती है। उसके इस प्रकार मर जाने की बात सबसे छिपा दी जाती है। सभी यही जान पाते हैं कि वह शेर अफगान की हवेली के बाहर कहीं मारा गया है। शबनम को उसके मारे जाने से व्यथा होती है, कोकीजू उसे अपने मन - मस्तिष्क से हटा देती है। शेर अफगान शुभकर्ण को सपरिवार कुछ दिनों के लिये दिल्ली से बाहर सुरक्षित स्थान में उसी रात पहुँचवा देता है।

वजीर के सहायतार्थ मसजिद पहुँचा आजम खाँ दंगे के समय आत्म-रक्षार्थ मसजिद के ऊपरी भाग में शरण लेता है। वातावरण कुछ शांत होने पर वहाँ से सड़क पर कूदने में असमर्थ उसके, पास सटे एक कुम्हार के छपरे, जिसके नीचे मिट्टी के बर्तन भरे पड़े थे, कूदने से छप्पर टूट जाता है और उसके मोटे पैर छप्पर को छेदकर नीचे कमरे में लटक उसमें रक्खे बर्तनों की हानि पहुँचाते हैं जिससे क्रुद्ध कुम्हार एक डंडे से उसके पैरों की अच्छी मरम्मत करता है बाद उसके लहूलुहान पैरों को देख उसके प्रति दयार्द हो तथा उसके वस्त्रों से उसके कोई बड़ा आदमी होने का अनुमान कर उसे नीचे उतारता है और उससे अपने कर्मों के लिए क्षमा - याचना कर उसे . हवेली पर पहुँचा देता है। आजम खाँ लज्जावश इस घटना को छिपाने का भरसक प्रयत्न करता है पर असफल होता है।

उस दिन के भीषण दंगें में पठानों को नीचा देखना पड़ा वजीर के दल का बोलबाला रहा इससे शहर भर में जूताफरोशों और उसके समर्थकों के बीच वजीर के गुट की प्रशंसा होती है। उस दिन से वह और लोक-प्रिय और बादशाह का कृपापात्र बन जाता है। वजीर जूताफरोशों आदि विदेशियों की प्रसन्नता के लिये बादशाह से जजिया फिर से लगाने का आग्रह करता है पर कोकीजू की सलाह से वह मनुष्य पर नहीं कागज पर लगता है। इससे हिन्दुओं तथा हिन्दुस्तानी दल को

प्रसन्नता तथा जूताफरोशों को गम होता है यह सोचकर कि व्यर्थ दूसरों के बहकावे में पड़कर इतना रक्तपात किया। वे भविष्य में इस प्रकार के बहकावे में नहीं आने का निश्चय करते हैं।

कुछ दिनों के बाद रिवाज के अनुसार अन्य नर - नारियों के साथ शबनम जब हाजी और गुलाब की कब्र पर चादर और फूल चढ़ाने जाती है -- गुलाब की कब्र पर चादर और फूल चढ़ा वह उसकी शांति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हुई रो पड़ती है। वह मन - ही - मन कहती है --"गुलाब! गुलाब मुझे माफ कर देना।

समीक्षा :--

उपन्यास की प्रधान कथा - गुलाब खाँ को शबनम के प्रति प्रेम आसक्ति, विवाह निश्चित हो जाने पर भी हिन्दुस्तानी दल, विशेष-कर कोकीजू के षड्यन्त्र से विवाह नहीं हो पाने, बराबर शबनम से उपेक्षित होकर भी उसकी प्राण - रक्षा के प्रयत्नों में गुलाब खाँ के प्राणोत्सर्ग करने की है।

इस उपन्यास में प्रधानता कथानक की उतनी नहीं है जितनी एक घटना सन् 1729 ई॰ में हुए दिल्ली के भीषण दंगे की है। इसका नाम पहले उपन्यासकार ने "दिल्ली का दंगा"《42》 ही रक्खा था, लेकिन बाद में उसे बदल कर " सोती आग" कर दिया। उपन्यास का यह

नाम "सोती आग" सब प्रकार से सार्थक और उचित है कारण उपन्यास का कथानक "दिल्ली के दंगे" घटना - विशेष की चर्चा मात्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसमें निराश प्रेमी गुलाब के, अपनी प्रेमिका की रक्षा के हित, प्राणोत्सर्ग करने तथा उसके उत्सर्ग से प्रभावित परिवर्तित चरित्र शबनम की एक झलक भी दिखाई गई है।

उपन्यासकार का अधिक ध्यान पात्रों के चरित्र - चित्रण पर नहीं घटना - विशेष पर केन्द्रित है। यही कारण है कि उपन्यास में पात्रों का समुचित विकास नहीं हो पाया है, फिर भी, इतना तो अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि इसमें आए सभी पुरुष - नारी के चरित्र की निजी विशिष्टताएँ कम या अधिक मात्र में उपन्यास में अवश्य स्पष्ट हो गई हैं। उपन्यास के कथानक में आद्यन्त रोचकता गतिशीलता, कुतूहलवृत्ति बनी हुई है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

****

1· परिचय: गढ़कुंडार - वृन्दावनलाल वर्मा पृ-13

2· अपनी कहानी, परिचय, गढ़कुंडार- वृन्दावनलाल वर्मा पृ-14

3· अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा पृ-121·

4· वही - वही पृ-141·

5· परिचय : गढ़ कुंडार - वही पृ-13·

6· वर्माजी का दिनांक 17-3-51 का पत्र डॉ·सिंह के नाम
उपन्यासकार - वृन्दावनलाला वर्मा पृ-294·

7· वही वही पृ-313·

8· परिचय, विराटा की पद्मिनी- वृन्दावनलाल वर्मा पृ-12·

9· उपन्यास वृन्दावनलाल वर्मा : डॉ·शशिभूषण सिंहल पृ-63-64·

10· परिचय: विराटा की पद्मिनी - वृन्दावनलाल वर्मा पृ-12·

11· वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य पृ-116·

12· परिचय, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ-4·

13· कचनार - वृन्दावनलाल वर्मा पृ-6·

14· वही - वही पृ-18·

15· वही - वही पृ-26,28

16· वही - वही पृ-254·

17· वही - वही पृ-418·

18. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - चतुर्वेदी महेन्द्र पृ. 7.

19. अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 163-164.

20. माधव जी सिंधिया - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 15

21. ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप - गोविन्द - पृ. 17.

22. आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध - तिवारी नित्यानन्द - पृ. 14

23. टूटे काँटे - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 35, 103.

24. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा - दत्त सोम - पृ. 93

25. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी - गुप्त शान्ति स्वरूप - पृ. 16

26. अहिल्याबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 58

27. परिचय अहिल्याबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 59

28. भुवन विक्रम - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 192.

29. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता - कमलेश माथुर पृ. 305

30. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन - कृष्णा अवस्थी - पृ. 106

31. भुवन विक्रम परिचय - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 11

32. महारानी दुर्गावती - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 263.

33. हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास - उषा सक्सेना पृ. 163.

34. महारानी दुर्गावती - परिशिष्ट - वृन्दावनलाल वर्मा
पृ. 4

35. रामगढ़ की रानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 17

36. - वही - पृ. 16

37. वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य - मोहिनी सहाय - पृ. 18.

38. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा - शशि भूषण सिंहल
पृ. 23

39. रामगढ़ की रानी - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 40 - 41

40. सोती आग - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 99

41. - वही - पृ. 63

42. महारानी दुर्गावती - परिचय - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 2

चतुर्थ अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास स्रोत और प्रेरक तत्व

4· वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास स्रोत और प्रेरक तत्व

-=-

4·1· ऐतिहासिक वातावरण का सृजन

4·2· अतीत के झरोखे से वर्तमान में

4·3· इतिहास - राजनीति और जनसाधारण

4·4· ऐतिहासिक विकास में वर्मा की आस्था

4·5· प्रेरणास्रोत - राजदर्शों और रोमांस

4·6· वर्मा की रोमांस - स्फूर्ति

4·6·1· स्फूर्ति तत्व मानव के अन्तर में

4·6·2· मानव का अंतरंग और प्रकृति

4·7· प्रकृति और बुन्देलखण्ड

4·8· बुन्देलखण्ड और उत्सव प्रियता

4·9· प्रणय

4·10· युद्ध और प्रेम

4. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास स्रोत और प्रेरक तत्व

4.1. ऐतिहासिक वातावरण का सृजन :-

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास को सजा - सँवार कर नवीनरूप प्रदान करने का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा को है । वर्मा अपने रचना परिमाण, अपनी इतिहास सम्बन्धी धारणा तथा स्फूर्तिमय जीवन दृष्टि के कारण इस क्षेत्र के प्रकाश स्तम्भ बन गए हैं । उनके प्रमुख बारह ऐतिहासिक उपन्यास है । उनके उपन्यास रचना - काल लगभग चालीस वर्षों का रहा है । अन्तिम बीस वर्षों में उनकी लेखनी विशेष सक्रिय रही । उनकी रचनाओं का काल - पट विशद है, वह उत्तर वैदिक काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक फैला हुआ है । इन रचनाओं में भारत के मध्ययुगीन इतिहास की अभिव्यक्ति हुई है । वर्मा का मन

उत्तर मध्यकालीन भारत के चित्रण में अधिक रमा है। भारतीय इतिहास का युग - विभाजन स्थूल रूप से हिन्दू, मुस्लिम तथा अंग्रेज़ी शासन - काल के अन्तर्गत करना उपयुक्त है। इन शासकों के अनुसार, क्रमशः भारतीय इतिहास के प्राचीन तथा आधुनिक काल आते हैं। भारत का मध्यकाल अन्य देशों के मध्यकाल की अपेक्षा अधिक दीर्घ है। इसका प्रारम्भ अन्तिम प्रमुख हिन्दू शासक पृथ्वीराज चौहान के पतन से माना जाता है और इसका प्रसार अंग्रेज़ों के आगमन काल तक है। युग - प्रवृत्ति की दृष्टि से, यह काल सन् 1857 के भारतीय विद्रोह तक प्रच्छन्न रूप से चलता है। उस विप्लव के उपरान्त राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का रूप बदल जाने के कारण आधुनिक काल का वास्तविक प्रारम्भ होता है। "भुवन-विक्रम" को छोड़कर, वर्मा के शेष सभी उपन्यास इस सुदीर्घ मध्यकालीन के चित्रण कार्य में संलग्न हैं।

4.2 अतीत के झरोखे से वर्तमान में :---

वर्मा भारतीय संस्कृति के प्रेमी, आस्थावान कलाकार हैं। वे दृष्टिकोण में सतर्क और संतुलित हैं। इतिहास उन्हें उत्तेजित नहीं करता, गम्भीरतापूर्वक सोचने - विचारने को विवश करता है। उनका अतीत-चिन्तन क्षण - भर को भी वर्तमान का पल्ला नहीं छोड़ता।" वे वर्तमान की समस्याओं और प्रश्नों को लेकर अतीत में विचरते हैं,

और भविष्य की आशाओं के महत्व खड़े करते हैं।"§1§

इतिहास को वर्तमान के लिए अपनाने पर भी, वे इतिहास के, प्रति न्याय बरतना नहीं भूलते। वे उपन्यास में, जीवन - सत्य को प्रस्तुत करते समय, उसके बाह्य शरीर - इतिहास को विश्वसनीय, प्रामाणिक बनाते हैं। वे तथ्यों के शोध, उपयुक्त चयन तथा आकलन में तत्पर रहते हैं।

वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों के कथा - स्रोत ख्यात इतिहास, स्थानीय इतिहास, अवशिष्ट वातावरण तथा लोक - कथाएं हैं। इनमें वे अपनी कल्पना का योग देते हैं। उनकी कल्पना, जीवन की अनुभूत घटनाओं से अधिक प्रभावित रहती है। "वे इतिहास से खोज - बीन कर तथ्य जुटाते हैं और उन्हें विचार, विवेचन तथा कल्पना से कार्य - कारण - श्रृंखला प्रदान करते हैं। विदेशी या उनसे प्रभावित इतिहासकारों द्वारा "तोड़े - मोड़े" तथ्य उन्हें यथावत ग्राह्य नहीं है। वे उनके स्थान पर, परम्पराओं तथा किम्वदन्तियों का भी मन्थन कर, आवश्यक सामग्री प्राप्त कर लेते हैं।"§2§ राष्ट्र के उत्थान पतन की दृष्टि से लिखे गए इतिहास, अनेक मानव-तत्व से युक्त घटनाओं का तथा उल्लेखनीय सजीव व्यक्तित्वों की उपेक्षा कर देते हैं। ऐसी अंधकारावेष्टित सामग्री को वर्मा ने जिला "गजेटियरों" आदि

"स्थानीय इतिहास" के साधनों से संचित किया है। वे ऐतिहासिक प्रसंग के घटना स्थल पर जाकर वहाँ के वातावरण में अवशिष्ट विगत तत्व को देखते - परखते और ग्रहण करते हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों का रंगमंच बुन्देलखंड का भू भाग रहा है। बुन्देलखण्ड के आज के वातावरण में भी एक विशेषता है - उसमें पुरातन की गंध। वहाँ के निवासी आधुनिक नागरिक सभ्यता से अब तक प्राय: अछूते हैं।

वे अपने पुरखों के स्थान में बसे हुए, पुरातन परम्पराओं को पैतृक सम्पत्ति की भाँति हृदय - कोश में संजोये चले आ रहे हैं। वे निर्धन हैं, अपढ़ हैं और आज के युग की दृष्टि में पिछड़े हुए भी, किन्तु उनकी गाँठ में हैं, राजा, सामंतों और बुन्देलखण्डी साधारण जन की शौर्य स्वामिभक्ति और स्वाभिमान की "सनक" की अटूट कथाएँ बुन्देलखण्ड में यत्र - तत्र बिखरे हुए ऐतिहासिक भवनों स्मारकों और मूर्तियों के भग्नावशेष भी विगत को पुनर्जीवित करने में सहायक हैं। निर्जन खंडहरों की जीर्ण ऊँची - नीची दीवारें आकाश से आँख -मिचौनी करती टूटी - फूटी छतें, ध्वस्त बुर्जे, उनमें विचरते वन्य पशु, पास बहते नदी - नाले, टौरियों, पहाड़ियों और जंगल भावुक कथाकार के कान में, अपनी मूक भाषा में, बहुत कुछ कह देते हैं। इस वातावरण में रमकर वृन्दावनलाल वर्मा की उर्वर कल्पनागत युग के सजीव, साकार स्वरूप का पुनर्निर्माण करने में सफल हुई हैं।

यहाँ स्पष्ट है, वर्मा इतिहास के मूलस्वरूप की यथासाध्य रक्षा करते हुए, उसे अपने अनुभव - अनुभूति से स्वस्थ, सप्राण बनाते हैं और कल्पना का रंग देकर उसे गति प्रदान करते हैं।

4.3 इतिहास - राजनीति और जनसाधारण :---

वर्मा इतिहास के इतिवृत्त के तल से भूतकालीन आर्थिक, सामाजिक धार्मिक तत्वों को खोज निकालना उपन्यासकार के लिए आवश्यक मानते हैं। उनकी रुचि का विषय जन साधारण है, उसकी संस्कृति और मानस का वह राजनीतिक परिस्थितियों के प्रकाश में अध्ययन करते हैं। वर्मा के उपन्यासों का विश्लेषणकर उनमें प्रतिबिंबित युग का दर्शन करना, यहाँ उपयुक्त होगा। उन्होंने राजनीतिक घमासान में भी जन-साधारण को बड़ी कुशलता और सूक्ष्मता से परखा है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का सम्बन्ध भारतीय मध्य युग की राजनीतिक उथल - पुथल वाले किसी - न - किसी काल से है। इन कालों में देश किसी सर्वमान्य केन्द्रीय सत्ता के अभाव में राजा, नवाबों की परस्पर लड़ाइयों से त्रस्त होता रहा है। आये दिन के आक्रमणों तथा राज्य - लक्ष्मी की अतिचंचलता के कारण आज कोई साधारण सामन्त, राजा होता है तो कल कोई कुलीन राजा, गली का भिखारी होगा। दिल्ली के तख्त पर जो शासक होता था, वह या तो सरदारों के हाथों की कठपुतली था, या अपना मार्ग निष्कंटक बनाने की धुन में युद्ध और वध - कार्य

में रत था। शासन - कार्य व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन-मात्र रह गया था, प्रजा के प्रति कर्तव्य - पालन का ध्यान किसी को न था। उस घड़ी समाज के साधारण जन की शासन व्यवस्था के प्रति सहज आस्था लडखड़ा उठी थी। शासक तथा शोषित, दोनों वर्गों के मध्य परस्पर उपेक्षा की गहरी खाई थी।

वर्मा के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक - सामाजिक परिस्थितियाँ, इस प्रकार हैं, तेरहवीं शताब्दी के अन्त में §गढ - कुण्डार का काल§ दिल्ली में गुलाम वंश के अन्तिम प्रभावशाली सुल्तान बलवन का प्रताप-सूर्य अस्त हो रहा था। चारों ओर उखाड़ - पछाड़ जोरों पर थी। मन चले योद्धा युद्ध और शान्ति भंग के अवसरों की ताक में रहते थे। मुसलमान आक्रमण जब - तब हिन्दू प्रजा पर टूट पड़ते और एक - एक किलेबन्द राजा को हरा देते। जहाँ वे पीठ फेरते, उन किलों को हिन्दुओं की कोई जाति पुन: अपने अधिकार में कर लेती। "जिझौती" §बुन्देलखण्ड§ में केवल कुण्ढार ऐसा राज्य था, जहाँ सत्तर - पचहत्तर वर्षों से कुछ शान्ति थी, किन्तु राजा जिन जागिरदारों को अपने अधीन समझने के भ्रम में था, वे सब अपने को दो - दो , चार - चार गाँवों का स्वतन्त्र नरेश समझते थे। "उनके "राष्ट्र" की परिभाषा, प्राय: अपने गाँवों तक सीमित थी। प्रजाजन इस काल में दबे हुए थे। परस्पर जाति - पाँति और ऊँच - नीच का भेद - भाव अधिक था। समाज के एक वर्ग के, दूसरे वर्ग से सम्पर्क में आने के अवसर बहुत कम थे।"§3§

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में (मृगनयनी) सिकन्दर लोदी दिल्ली का सुल्तान था। उस काल में क्या गुजरात क्या मालवा और क्या राजस्थान, बहमनी सल्तनत, बिहार, बंगाल - चारों ओर अराजकता तथा जनपीड़न का बोलबोला था। स्वर्ण - संचय की कामना, मार - काट की आकांक्षा, स्त्रियों के अपहरण की वासना, राज्य - स्थापना के लोभ और किसी भी प्रकार "अपने मजहब" के विस्तार के मोह को लेकर, पठान और तुर्क आक्रमक भारत में प्रविष्ट हुए थे। इन सब स्वार्थों का सामूहिक नाम था, भारत में स्थान - स्थान पर, सल्तनतें स्थापित हुईं।

उस बहिश्त की प्राप्ति ने सुल्तानों, उनके सरदारों तथा सिपाहियों को निर्बल, निकम्मा बना दिया था। "हिन्दू परलोक - भूख, निराशावाद और आपसी लड़ाइयों के कारण दुर्बल हो ही गए हैं।"(4)

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में (महारानी दुर्गावती) अधिकांश भारत में अशान्ति और उपद्रव का साम्राज्य था। चारों ओर आपाधापी और लूटमार मची हुई थी। विदेश से यहाँ आकर बसे आक्रमणकारी जन वंशानुक्रम से चलनेवाले किसी भी शासक के "खानदानी" हक को नहीं मानते थे। वे केवल सशक्त बाहुओं के बल और लोहे की धार के सामने सिर झुकाते थे। ऐसे योद्धाओं में शेरशाह का उदय हुआ। वह अपने युग का सर्वश्रेष्ठ शासक था। किसानों को शान्ति मिली, जन हित के काम किये गये, किन्तु उसने अपने राज्य विस्तार

क्रम में अत्याचार बरतने में कसर नहीं रखी। छोटे - छोटे राजा किलों में बन्द होकर आत्मरक्षा के लिए लड़ते थे। उन्हें तीर - तलवार का और बुर्जों, दीवारों पर एकत्र किये गए भारी-भारी पत्थरों का भरोसा अधिक था। युद्ध - काल न होने पर सिपाही किलों में कम रहते थे। वे गाँवों में दूर - दूर फैलकर खेती करते थे।

शेरशाह के मर जाने पर देश में अराजकता ने अधिकबल पकड़ा, अभी अकबर के राज्य का प्रारम्भ - काल था। स्थान-स्थान के राजाओं, सामन्तों, सरदारों के अधिकार - वृत्तों में जन साधारण विभाजित था। उसका कोई संगठन, स्वतन्त्र अस्तित्व का दृष्टिकोण न था। राज्य का अधिकारी प्रबल हुआ तो लोग उसका साथ देते रहते थे, अन्यथा अपनी असमर्थता, पृथकता अवगत कर शासक वर्ग से तेल - पानी की भाँति अलग रहते थे।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में {विराटा की पद्मिनी} दिल्ली का शासन फर्रुखसियर के दुर्बल हाथों में था, सैयद भाइयों की गुटबन्दी जोरों पर थी। दिल्ली के सहायक तथा शत्रु, अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर चुके थे। वे नाम मात्र को दिल्ली के अधीन थे और

परस्पर प्राय: लड़ा करते थे। ऐसी दशा में, प्रजा अपने भाग्य के भरोसे रहती थी। प्रजाजनों के जंगलों और पहाड़ियों की भयंकर गोद में छिपे हुए छोटे - छोटे गढपतियों की शरण का ही आसरा था। रह जाते थे अपने घरों में, केवल दीन - हीन किसान, जो हल - खेती छोड़कर कहीं नहीं जा सकते थे उन्हें पेट के लिए, राज्य कर के लिए, लुटेरों की पिपासा के लिए खेतों की रखवाली करती थी। यदि कहीं से घुड़सवार सेना आ जाती, तो खेतों में अन्न का एक दाना और भूसे का तिनका भी न बचता। उस काल में जिस प्रकार राजा, नवाब स्वार्थ रक्षा में रत रहते हुए दिन में दो - चार घंटे नाच-रंग, दुराचार सदाचार के लिए निकाल लेते थे, उसी प्रकार प्रजा अपनी थोड़ी सी भूमि और छोटी - सी सम्पत्ति की रक्षा की चिन्ता करते हुए भी देवालयों में जाती, कथा - वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी। संध्या के समय लोग भजन गाते थे। परस्पर सहायता के लिए यथावकाश के प्रस्तुत रहते थे। "बड़ों के पतन की इस विषमयी छाया में भी, छल - कपट और बेईमानी का विशेष प्रचार नहीं हो जाया था।"(5)

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में (टूटे काँटे) दशा और भी गिरी हुई थी। भरतपुर, आगरा और मथुरा के आसपास विभिन्न प्रकार के जाटों ने अपने - अपने समूह बनाए और वे गढपति बनने लगे। "मुसलमान आक्रामकों द्वारा बहुधा सताये जाने पर, उन्होंने भी लूटमार का व्यवसाय अपना लिया था।"(6)

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में (माधवजी सिंधिया) मुगल साम्राज्य अन्तिम साँसे गिन रहा था। दिल्ली का पौरूषहीन बादशाह " "हिजडों - कुंजडों" के घरेलू षड्यन्त्रों से छुटकारा न पाता था। शहर के मुसलमान ही आपस में लड़ते नहीं अघाते थे। कहीं शिया-सुन्नी का झगड़ा, तो कहीं हिन्दुस्तानी, ईरानी-तुरानी का प्रसाद। हथियार बन्द गुण्डे दिन - दहाड़े किसी भी घर में घुसकर , जो चाहते उठा लाते। दिन में दस - पाँच का जत्था भी बिना लुटे - पिटे, एक स्थान से अन्यत्र न जा सकता था। इसका प्रभाव भारत के दक्षिण से उतर तक फैल गया था। शिवाजी ने मराठों को संगठित कर शक्ति-शाली बनाया था, किन्तु बाद में सत्ता ब्राह्मण पेशवाओं के शिथिल हाथों में चले जाने पर मराठों में परस्पर ऊँच - नीच का भेद - भाव बढ गया। उनमें स्वार्थपरता, ईर्ष्या और पर जीवियों की बाढ - सी आ गयी। सैनिक वृत्ती महाराष्ट्रीय युवकों की प्रवृत्ति के अनुकूल होने के कारण दशहरे के बाद फसल कटने पर, वे सिपाही बन जाते थे। उन्हें छावनी के नियम - संयम म से अरुचि थी और उनमें थी लूटमार की लपक। उत्तर भारत का किसान उस युग में सर्वशोषित था। उसी निरीह के बूते पर साधु - सन्त, निकम्मे, नीच राजा - नवाब तथा महत्वाकांक्षा योद्धा मौज - मजा कर रहे थे। अहमदशाह अब्दाली का भारत - आक्रमण और रक्तपात भारत की चरम दुर्गति का सूचक है। ब्रज के निरीह जन तलवार के घाट उतरे और वहाँ की हिन्दू स्त्रियों

ने परम्परानुसार जल में डूबकर, विष खाकर प्राण त्यागे। "इन लोगों का पुरुषार्थ कण्ठी माला तक सीमित था, जीवन में भक्ति और शक्ति के समन्वय का अभाव उन्हें ले बैठा।"[7]

उस युग में [अहिल्याबाई] प्रजाजन साधारण गृहस्थ, किसान, मजदूर एकमात्र अवलम्ब धर्म अन्धविश्वासों, भय-त्रासों और रूढ़ियों की जकड़ में कस गया था। न्याय में शक्ति न रह गई थी और न लोगों का उसमें विश्वास।

जनता को उस समय [कचनार] अपनी खेती, शिल्प और व्यवसाय के लिए सुदृढ़ शासन चाहिए था। वह स्वयं से नायक को जन्म दे सकती थी, किन्तु स्वयं नेतृत्व का भार ग्रहण करने में असमर्थ थी। इसलिए कुशासन, त्रास और मारकाट के साथ नायकों की संख्या बढ़ती गई। जनता की आर्थिक अवस्था हिलते हुए, पानी भरी थाली में पड़े, तिनकों जैसी थी। फिर उसका "ईमान" डिगा बना हुआ था पर वह श्रमशील थी।

५.५ ऐतिहासिक विकास में वर्मा की आस्था :---

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में जिस युग का चित्रण किया है, उसका घोर पतन देखकर पाठक का सिहर उठना स्वाभाविक है। उनका उद्देश्य अवसादमय अतीत में रमकर रह जाना नहीं है।

वे अतीत का अग्राह्य चित्रित कर, पाठकों को उसके ग्राह्य के प्रति सजग करना चाहते हैं। वे ग्राह्य अलोक को उभारने के लिए, अग्राह्य रूपी अंधकार को पृष्ठभूमि में रखना आवश्यक समझते हैं। "उनका मत है कि वर्ण्ययुग में मनुष्य की निम्नतम ही नहीं, उसकी उच्च और उच्चतम वृत्तियों के दर्शन होते हैं।" ‡8‡

सृष्टि - क्रम की कुछ जर्जर कड़िया देखकर वे हतोत्साहित नहीं होते, ये उनकी दृष्टि में अल्पकालीन और अस्थायी हैं। इनके गहन तल में जो जीवनधारा प्रवाहित है, उसमें बैठकर उसे समझने तथा उससे सामर्थ्य - संचय करने में वर्मा संलग्न रहते हैं। वर्मा की इस धारणा के स्पष्टीकरण के लिए, उनके उपन्यास "भुवनविक्रम" में व्यक्त उनके दृष्टिकोण का सविस्तार उल्लेख यहाँ उपयुक्त होगा। वे लिखते हैं --- विक्रम का क्रम अनन्त है और मानव की वह ओजस्विता भी। किसी - किसी युग में विकास क्रम में कुछ कड़ियाँ सड़ी-गली और निर्बल भी दिखाई पड़ती है। हमारे ही देश में नहीं पृथ्वी के अन्य भागों में भी। इनके होते हुए भी मानव विकास - मार्ग पर अग्रसर होता रहता है, भले ही समीचीन रूप से वह दिखलाई न पड़े। मानव सम्पूर्णतया कभी अशक्त नहीं होता, हो नहीं सकता। यदि ऐसा हो तो सृष्टि का कार्य खंडित हो जाय। हमें अपने समाज में जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊँचे आदर्श के प्रति

गतिहीनता दिखलाई पड़ती है वह विकास क्रम की एक कड़ी मात्र है जो चिरकाल तक नहीं रह सकती।

".... अपनी कठिनाई स्पष्ट समझ में आ जाए और मति-विभ्रम न हो तो दृढ़ संकल्प के आश्रय से मनुष्य अवश्य आगे बढ़ सकता है।"‡7‡

समाज में जब विभ्रम और भय का घुन लग जाता है, आस्था निर्बल हो जाती है, संकल्प चंचल हो उठता है, पर-शोषण बढ़ जाता है, अहंकार, दम्भ और अनृत के हठ की बाढ़ आ जाती है तब विकास क्रम की कड़ी गल्ती दिखलाई पड़ने लगती है।

4.5 प्रेरणास्रोत - "राजदर्शी"और " रोमांस :--

वर्मा इतिहास के विक्रम - क्रम की जर्जर कड़ियों के मूल कारण पर प्रकाश डालकर, अपनी रचनाओं द्वारा, पाठकों को जीवन में स्वास्थ्य एवं गति लाने की प्रेरणा देते हैं। उनके उपन्यासों में, प्रेरित करनेवाले मुख्य सूत्र दो हैं -- एक, प्रकाश - स्तम्भ ऐतिहासिक महान पुरुष या नारी - पात्र, ताजा , स्फूर्ति देनेवाला रोमांस। समाज में व्यवस्था एवं शान्ति - स्थापना की दृष्टि से क्षत्रिय का धर्म सर्वोपरि है। क्षत्रिय से तात्पर्य है, शासन और राजनीति का सूत्रधार व्यक्ति। वर्मा ने समाज सेवी नेता को "राजदर्शी" की संज्ञा

दी है। ऐसे महापुरुषों को वे प्रेरणा स्रोत के रूप में उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं। वे "राजदर्शी" पात्रों को उपन्यासों में चित्रित करते समय तन्मयतावश उनके ऐतिहासिक चरित्र को जीवनी का रूप दे बैठते हैं। वर्मा के उपन्यासों, झाँसी की रानी - लक्ष्मीबाई, मृगनयनी , अहल्याबाई, माधवजी सिंधिया, रामगगढ की रानी तथा महारानी दुर्गावती में यह तथ्य भली भाँति स्पष्ट है।

वर्मा, जीवन के दिग्दर्शन के लिए जीवनी - तत्व का आश्रय लेते हैं, और जीवन को सजीव बनाने के लिए "रोमांस" का। रोमांस शब्द का यहाँ विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया जा रहा है। इस अर्थ के स्पष्टीकरण से पूर्व, रोमांस के पूर्व प्रचलित रूप का परिचय देना आवश्यक है। रोमांस अंग्रेजी के पुराने साहित्य में उपन्यास की एक पूर्वज विधा के रूप में था। रोमांस विलक्षण कथा होती थी। यह कथा साधारण जीवन से दूर की और कल्पना - प्रधान थी। इसमें प्रेम, साहस, शौर्य की स्वाभाविक - अस्वाभाविक एवं अति कल्पनारंजित घटनाओं का बाहुल्य रहता था। अपनी स्वच्छन्दता, अव्यावहारिक स्वप्निल उड़ान के कारण, रोमांस को यथार्थजीवी उपन्यास से भिन्न विधा माना गया है। रोमांस असाधारण-चमत्कार पूर्ण कथा है। यह पाठकों को अपने नवीन वातावरण और कल्पना से, उत्तेजना और स्फूर्ति प्रदान करती है। इस विधि से मानव-चरित्र तथा समाज के गम्भीर चित्रण की आशा नहीं की जा सकती।

५.६ वर्मा की रोमांस - स्फूर्ति :--

वर्मा के प्रसंग में "रोमांस" शब्द का विधा के रूप में नहीं, वरन् एक प्रवृत्ति विशेष के अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है। रोमांस वर्मा की जीवन सम्बन्धी धारणा का एक अंग है, यह उनकी एक दृष्टि है। उनकी रोमांस विषयक परिकल्पना में असाधारण, अलौकिक, अव्यवहारिक तत्व की स्वीकृति नहीं। उनका रोमांस रोजमर्रा के एकरस जीवन को ताजगी, नवीनता, स्फूर्ति प्रदान करता है। उनका साधन साधारण, सरल, नित्य का, चिर - परिचित जीवन है। इसी स्वाभाविक भूमि से वर्मा ने विवेक, संतुलन, कर्मठता तथा अंतर्दृष्टि द्वारा रोमांस के प्रेरक तत्व जुटाये हैं। उनके रोमांस की यदि एक शब्द में व्याख्या की जाए, तो उसका अर्थ है "स्फूर्ति"।

वे मानव - जीवन को विविध अवयवों द्वारा स्फूर्ति प्रदान करना चाहते ४ हैं। उनका रोमांस, जीवन से कहीं दूर नहीं, जीवन में ही है, अपनी मिट्टी, अपने चारों ओर की प्रकृति और अपने समाज में है। वह पलायन नहीं करता, कर्मठ बनने की शक्ति देता है, कार्य-परिवर्तन द्वारा। इस कार्य परिवर्तन में ताजगी रहती है।

3.6.1 स्फूर्तितत्व - (क) मानव के अन्तर में :---

मानव के पीड़ित जीवन में आनन्द की एक झलक लाने के लिए, उसे रोमांस, स्फूर्ति देने के लिए, वर्मा उसी के अन्तर में बैठते हैं। उमंग का नित्य - स्रोत मानव के हृदय में ही है, केवल उसे प्राप्त करने की आस्था चाहिए। जैसे, नूरबाई (टूटे काँटे) की वृन्दावन पहुँच कर, कृष्ण कन्हैया के जी भरकर दर्शन करने की चिर प्रतीक्षित इच्छा पूरी होती है। वह युग घोर संकटों और पीड़ाओं का है। स्वयं नूरबाई ने न जाने, जीवन के कितने उतार -- चढ़ाव देखे हैं और वह अपने विगत की ग्लानि में गली जा रही है। कृष्णमूर्ति की मोहिनी छवि के एकाग्र दर्शन ने उसे अपूर्व जीवन-अवलम्ब प्रदान किया है। उसकी आस्था ने जो स्फूर्ति दी है, वह द्रष्टव्य है। वह सोचती है -- "यह कन्हैया की प्रतिमा है। मनुष्य ने अपनी छोटी - सी सीमित कल्पना द्वारा उसकी झिलमिल झाँकी की एकाध रेखा को जितना पकड़ पाया उतनी को खड़ा कर लिया। आहत जीवन फटे - टूटे दिल, क्षतविक्षत मानस, निराश्रय-दरिद्रता, दलित मानव, घायल की आह, और बेपनाहों की कराह को, निपट अँधेरे में, जितना और जैसा दिखलाई पड़ गया उसी को छाती से लगा लिया। और यदि हम इसको न मानें, कह दें कि, किसी बड़े पहाड़ का यह छोटा - सा टुकड़ा ही तो है, तो? तो फिर अथाह की थाह कैसे मिलेगी? जलते

हुओं को शीतल जल कहाँ से प्राप्त होगा? जिनको दर्द के मारे कभी चैन नहीं मिलता, कभी नींद नहीं आती, हर तरह से डर के मारे जिनका रोम - रोम प्रत्येक क्षण थर्राया करता है, जो सदा मौत को सिर पर खड़ा देखकर न तो जीवन के रस को समझ पाते हैं, न उसका आसूवादन कर पाते हैं और न मरने की घड़ी में शान्ति को छू पाते हैं - न सावन हरे न जेठों पीले और जो कभी भी यह नहीं समझ पाते कि उजाला क्या है और अंधेरा क्या है, या उन दोनों के बीच में कुछ है, उनके सिर पर कौन हाथ फेरेगा? उनकी पीठ पर कौन उनके काँटो को सहने योग्य बनाएगा? कुछ सामने दिखलाई पड़नेवाला, कोई स्वप्नों में मुस्करानेवाला, कोई कान में सदा - सर्वदा मीठी तानें सुनाने वाला।"§10§

अच्छी नींद के बाद सवेरे की अरुणिमा देखने के लिए जी क्यों ललचाता है? चलते रास्ते बगीचे के फूलों को देखकर एक क्षण ठहर जाने के लिए मन क्यों मचलता है? मानव-प्रकृति। मानव त्याग तक अपनी तात्कालिक एकरूपता §मोनोटनी§ पर हावी होने के लिए करता है। रोमांस इस प्रकृति का बड़ा साथी है।

1.6.2 मानव का अन्तरंग और प्रकृति :---

वर्मा जीवन जीने की, और जीने के लिए विषम परिस्थीतियों से भी जूझने की प्रेरणा देते है। संघर्षरत मनुष्य को अटूट शक्ति देने के लिए, वे उसे आस्थावान बनाना चाहते हैं और उसके हृदय को निर्विकार कर उमंग से ओतप्रोत कर देना चाहते हैं। स्वार्थ एवं अहम् भावना के कारण मनुष्य अपना सहज रूप खो बैठा है। वह निज की वृत्तियों में सामंजस्य, संतुलन स्थापित न रखने के कारण समाज और प्रकृति में अपने आपको अकेला, अधूरा और उखड़ा - उखुड़ा - सा पाता है। उसकी अन्त:प्रकृति जिस समय व्यग्र और विरूप हो उठती है, उस क्षण वह उसे बाह्य प्रकृति के संयोग, संस्पर्श से सहज, स्फूर्तिमय बना सकता है। प्रकृति का अर्थ ही है, स्वाभाविक, जिसके निर्माण में मनुष्य का हाथ नहीं लगा है। मानव के मन की सहज वृत्तियाँ तथा उसके बाहर दिखनेवाले पेड़ - पौधे, पहाड़, नदी, नाले, सूरज, चन्द्रमा पशु-पक्षी आदि अपने प्रकृत स्वरूप है। "वर्मा का "रोमांस" बाह्य प्रकृति से मानव मन का योग कराके मानव को सजीव, सशक्त बनाता है।"।।।

वर्मा के पात्र प्रकृति से जीवनदायिनी शक्ति किस प्रकार ग्रहण करते हैं, उसका एक उदाहरण देखिए : दलीपसिंह (कचनार) बीमारी से उठा है, दुर्बल और चिड़चिड़ा है। नव - विवाहिता पत्नी से मन का

मेल न खाने पर अन्य मनस्क भी है। वह जंगल में शिकार खेलने जाता है और शिकार की उत्तेजना में मन का अवसाद डुबा देना चाहता है। वह साथियों सहित जंगल में पहुंच गया। हँकाई हुई और उसे शिकार में जानवर मिलने की आशा बँधी। इस बीच में प्रकृति ने क्या चमत्कार किया देखिए ----

"प्रभात हो गया। प्रकाश फैल गया। दलीप ने अपनी बगल में एक पेड़ देखा। पत्तों का नाम - निशान नहीं, परन्तु फूलों से लदा हुआ। चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद रंगवाले फूल। वह पेड़ धीरे - धीरे इन फूलों को टपका रहा था।

"दलीपसिंह फूलों का टपकना देखता रहा। शीघ्र ही पेड़ के नीचे चौक - से पुर गये। वह फूल बीनने के लिए अपने स्थान पर से उठा और पेड़ के नीचे पहुँचा। कुछ फूल उसके ऊपर भी टपके। धीरे - धीरे, बड़ी - बड़ी बूँदों जैसे, चू - चू जाते थे। उसने उठाकर सूँघे। भीनी-भीनी महक थी।"

इसी बीच उसके पीछे एक साँभर आकर भाग गया। दलीपसिंह शिकार में जो पाने आया था, वह उसने सहज ही प्रकृति से पा लिया था। वर्मा लिखते है ---

"दलीपसिंह आनंद विभोर था। उसको साँभर के भाग जाने का जरा भी खेद नहीं हुआ। उसका मन नाचने और गाने के लिए उमँगा--"।

सोनेसाह ने पूछा, "आपके पास साँभर आया था, बन्दूक नहीं चलाई?"

दलीपसिंह ने कहा "मैं उस पेड़ के नीचे फूल देखने उठ गया था। कैसा सुहावना है। क्या नाम है इस पेड़ का काकाजू?"

सोनेसाह हँसने लगा। "बोला, राजा इसका नाम व्याकुल है। कोई - कोई इसको बेकल भी कहते हैं।

दलीपसिंह ने कहा "व्याकुल! बेकल! बड़ा सुन्दर और कितना सार्थक नाम है। उसको चैन ही नहीं। कैसे फूल - पर - फूल टपकाये चला जाता है।" अन्त में संध्या के समय सभी लोग थके, पिटे घर लौटे - केवल दलीपसिंह अब भी प्रसन्न दिखलाई पड़ता था।

वर्मा के उपन्यासों में प्राकृतिक सौन्दर्य और जन - मन के उल्लास के चित्र सहज, स्वाभाविक बन पड़े हैं। उनके चित्रण में प्रवाह और सादगी है। देखिए, सावन के दिन अनोखी मस्ती लेकर आए हैं। प्रकृति और पृथ्वी - पुत्र किसान, दोनों गतिशील हैं ---

"सावन लग गया। चारों ओर हरियाली का राज्य छा गया। पुरवाई बहने लगी। किसानों ने हल की मूठें पकड़े हुए सहरे गाये। नदी-नालों के नाद ने उनका साथ दिया।

प्रकृति से यह उल्लास, ग्राम अथवा नगर में, कहीं भी संचित किया जा सकता है। यहाँ असाधारण की अपेक्षा नहीं, केवल व्यक्ति की ग्राहक दृष्टि चाहिए। तड़का हो रहा है, यह परजीवी पुजारियों के प्रमाद-अवसाद का काल है, किन्तु अपने जीवन को नया मोड़ देने वाली, श्रमजीवी नूरबाई(टूटे कूँटे) को, इसमें उमंग से उद्वेलित करने की क्षमता है --"पौ नहीं फटी थी। क्षितिज पर अर्गल नहीं खिंचे थे। चिड़िया नहीं चहकी थी। मन्दिरों के पुजारी, जागते - सोते कुपथ की डकारें ले रहे थे।

झींगुर झंकार रहे थे। हवा चल उठी थी। ठंडक में गरमी और गरमी में ठंडक। नूरबाई जाग पड़ी। न अंगडाई, न जमुहाई, तारों पर बड़ी - बड़ी आँखें पसार दीं। लगा जैसे वहाँ कोई हो, कोई मुसकान वाला, कोई तान वाला। बिस्तर में उछल पड़ी। मोहन सो रहा था। जागते हुए बोली,"चले यमुना में स्नान करेंगे।"

प्रकृति विश्व क्रीडा में रमी हुई साक्षात् कविता है। उसे देखने, समझनेवाले को स्वत: उल्लास और गति प्राप्त हो जाते हैं। झील का और जल - जीव दुर्गावती को "रोमांस" प्रदान करते हैं --" दुर्गावती ने थोड़ी दूर पर उत्तर पश्चिम में एक विस्तृत झील देखी। घेरा होगा उसका कोई बाईस - तेईस कोस। रवि-रश्मियाँ उसमें स्नान कर रहीं थीं। सारसों के झुंण्ड पंक्ति बाँधे उड़ते दिखलाई पड़े। सुनहली किरणें,

नीला जल वृक्षों की हरियाली और उड़ते सारसों की मोतियों जैसी चमक ने दुर्गावती की देह में स्फूर्ति भर दी।

1.7 प्रकृति और बुन्देलखण्ड:---

मानव - जीवन को स्वाभाविक बनाने और ताज्गी, स्फूर्ति प्रदान करने के लिए वर्मा ने अपने उपन्यासों में प्रकृति का आश्रय लिया है। प्रकृति - चित्रण उनकी मुख्य प्रवृत्ति है। उनके युद्ध, आखेट, यात्रा और खेती- बाड़ी के प्रसंगों की पृष्ठभूमि में ग्राम्य तथा वन्य प्रकृति के दर्शन होते हैं। वर्मा बुन्देलखण्ड में जन्में हैं, उन्होंने उसके प्राकृतिक क्षेत्रों का चाव से पर्यटन किया है। तीव्रगामी नदियों, लम्बे - चौड़े, हरे - भरे, टूटे - फटे खण्डहरों के भयावह सौन्दर्य को उन्होंने निकट से परखा है। प्रकृति की उस रोमांस - भरी गोद में घटी विगत घटनाएँ तथा हृदयस्पर्शी परम्पराएँ मिलकर, एक हो, उनके अन्तर में समागयी है। जिस प्रकार तुलसी ने राम से हार्दिक तादात्म्य स्थापित कर लिया था, वैसे ही वे और बुन्देलखण्ड एकात्म हो गये हैं। उनकी यह अनुभूति, उपन्यासों में, पाठकों का हृदय बरबस बुन्देलखण्ड की ओर खींच लेती है। नदियों की गरजती धारें, जमीन के गहरे भरके ﴾गड्ढे﴿ टौरियों ---पहाड़ियों के उतार - चढ़ाव, घने जंगल, रंग - बिरंगे महकते फूल, वन में उगते सूर्य की मनोहर छटा और जल - प्रवाह पर ढलते सूर्य की छितरती किरणें पाठक को

भुलाये नहीं भूलतीं। ये दृश्य उसके हृदय के किसी कोने में अपनी भव्यता, भयानकता के विचित्र सौन्दर्य की मीठी टीस छोड़ जाते हैं।

बुन्देलखण्ड जलवायु की दृष्टि से पग - पग पर कठोर प्रकृति की अड़चनों से भरपूर है। यदि यहाँ वर्षा के उपरान्त भरभरा कर बहते हुए तेज नाले, हरी घास ओढे मैदान, भीगी पहाड़ियों और हरियाली से लदे भाप-सी छोड़ते ऊँचे - नीचे पेड़ मोहक हैं, तो यहाँ की गरम लू के धूल भरे झोंके, सूखे वन, तपती धरती तथा नंगी सूखी पहाड़ियाँ भी ग्रीष्म ऋतु में निवासियों के जीवन-मार्ग में चुनौती सी देते जान पड़ते हैं। उपन्यासों में, प्रकृति के सरस और शुष्क दोनों रूपों पर, वर्मा की दृष्टि रही है। दोनों को उन्होंने आत्मीयता से देखा है और दोनों से जीवन-शक्ति संजोयी है।

4.8 **बुन्देलखण्ड और उत्सवप्रियता :---**

वर्मा के रोमांस में प्रकृति - प्रेम के अतिरिक्त जन-जीवन के उत्सवों युद्ध, आखेट तथा प्रणय - कथाओं को स्थान मिला है। उनके उपन्यासों में चित्रित जर्जर बुन्देलखण्डी जन कठोर प्रकृति और विषम परिस्थितियों की गोद में पल्ते - रहने के कारण अपने अन्तर में एक अन्य व्यक्तित्व छिपाए हुए हैं। उसका वह व्यक्तित्व निर्भीक है जो घोर कठिनाइयों से जूझने वाला और मौज का क्षण मिलने पर मस्ती से झूम उठनेवाला है। निर्द्वन्द्वता का केवल एक क्षण ही उसे सजीव बनाए रखता है

और शक्ति देता है, भविष्य की बाधाओं से भरपूर टक्कर लेने की। उसके त्यौहार और उत्सव, ऐसे सुखद ह क्षणों से ओतप्रोत है। वर्ष के विभिन्न कालों में नवीन रूप धारण करती प्रकृति उसमें उमंगों की हिलोरों पर हिलोरें उठा देती है। उसका कृतज्ञ मन परमेश्वर के आगे नत हो जाता है। वह इन अवसरों पर भजन - पूजन करता है, उसके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। फिर बारी आती है उसके हृदय में दबे हुए उल्लास की दुगुने वेग से बाहर फूट पड़ने की। बुन्देलखण्डी नर - नारी फागें और राछरें गाते हैं और नाचते - कूदते भाव - विभोर हो जाते हैं।

युद्ध, आखेट तथा प्रणय के वर्णनों में, वर्मा के उपन्यासों के प्राण बसते हैं। उनके युद्ध - चित्रों में सैनिकों की सतर्कता, परिस्थिति की आशंका और मुठभेड़ों की नाटकीयता दृश्यों को साकार कर देती है। वर्मा की कल्पना में गतकालीन युद्धों के नक्शे स्पष्ट हैं। अपने युद्ध - दृश्यों में वे पैदलों, सवारों, हाथियों, घोड़ों, तोपों, मुठभेड़ों तथा तलवारों के भांजने और बन्दूकों - तीरों की बौछारों को व्यवस्थित रीति से प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में व्यक्तिगत द्वन्द्वों की उपेक्षा सेनाओं की मुठभेड के चित्र अधिक विशद और रोचक बन पड़े हैं।

5.9 प्रणय :—

प्रणय – चित्रण, वर्मा की रोमांस विषयक धारणा का प्रमुख अंग है। प्रणय में वे प्रेमी और प्रेमिका के मध्य एक दूरी का वातावरण बनाए रखते हैं। अतः उनके रोमांस में चुंभन, आवेग, सौजन्य और दृढ़ता आ विराजे हैं। प्रेमी और प्रिय के जीवनाकाश में विपत्ति, विछोह और आशंका के घुमड़ते – गरजते बादलों के मध्य प्रणय की रह – रह कर कौंध जानेवाली दामिनी, पाठकों को विचित्र लालसा और टीस दे जाती है। प्रेमी और प्रेयसी को समीप लाते समय वर्मा द्रवित और सतर्क हो उठते हैं। ऐसी बेला में नारी का मूक – निश्शब्द, कोमल समर्पण है और पुरुष भी अत्यन्त विनीत, नियन्त्रित, कोमल और दृढ़ है। दोनों की हृदय गति में संयम और स्थिरता है कि वासना का उद्दाम वेग वहाँ ठिठक – सा जाता है। प्रेमियों का हृदय हल्की हिलोरें लेता है, जैसे नाव के आसपास मन्द – मन्द गुन गुनाता –सा जल। क्षुब्ध सागर के ज्वर भाटे का वहाँ अभाव है।

स्त्री और पुरुष सृष्टि में परस्पर पूरक और प्रेरक हैं। उनके समीप आने और सहयोग में स्फूर्ति है। संयम और सन्तुलन का पुट आ जाने पर उनकी इस स्फूर्ति में स्थायित्व और नित्य नवीनता के तत्व आ जाते हैं। वर्मा के ये पात्र पहले शारीरिक सौन्दर्य और कर्मों के आकर्षण में बँधते हैं। फिर प्रेम की भावना उनके मन की गहराइयों को

छूती है, और अन्त में आध्यात्मिक स्तर तक जा पहुँचती है। इस प्रकार की मुख्य प्रणय - कथाएँ दिवाकर -तारा[गढ़ कुण्डार], कुंजर - कुमुद [विराटा की पद्मिनी],, दलीपसिंह-कचनार[कचनार], मानसिंह-मृगनयनी [मृगनयनी], मोहन - नूरबाई [टूटे काँटे], माधवजी * सिंधिया - गन्ना बेगम [माधव जी सिंधिया] आदि की हैं।

युद्ध और प्रेम :---

यहाँ वर्मा के रोमांस - प्रधान उपन्यासों की मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण अभीष्ट है। इनमें युद्ध और प्रेम की प्रधानता है, किन्तु ये उत्तरोत्तर जन-साधारण के जीवन-चित्रण से अधिक युक्त हो गए हैं। वर्मा के प्रारम्भिक उपन्यास "गढ़ कुण्डार" का विषय प्रेम और युद्ध हैं। इसके प्रारम्भ में, रात्रि में नागदेव और अग्निदत्त भरतपुरा की गढ़ी में ठहरते हैं। नागदेव, सोहनपाल की पुत्री, हेमवती के प्रति आकृष्ट है। नाग और अग्निदत्त के परस्पर वार्तालाप से दोनों के प्रणयसूत्रों का परिचय मिलता है। इसके तुरन्त बाद गढ़ी पर मुसलमानों का आक्रमण होता है। वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए नागदेव घायल होता है, किन्तु हेमवती की उपस्थिति से उसे स्फूर्ति मिलती है। यही क्रम, पूर्ण उपन्यास का है। नाग तथा हेमवती के सम्बन्ध की समस्या उपन्यास की मूल समस्या है। इसी के कारण संहारक युद्ध होता है और उपन्यास अपने "अन्त" पर पहुँचता है। अपने प्रणय में कुंठित अग्निदत्त भी इस

युद्ध - धारा में आ मिलता है। उपन्यास में चित्रित दिवाकर और तारा का प्रणय समर्पण प्रधान तथा आध्यात्मिक स्तर पर है। इसीलिए वह युद्ध - निरपेक्ष है। इसका विकास व्रत, पूजन-अर्चन तथा पुष्प मालाओं के पुनीत वातावरण में होता है।

"विराटा की पद्मिनी" भी प्रेम और युद्ध - प्रधान उपन्यास है, किन्तु इसकी कथा में अन्य तत्वों का समावेश भी हुआ है। यहाँ नारी कुमुद में दैवी तत्व का आभास है। फलस्वरूप उसके तथा कुंजर के प्रणय में अनोखी गरिमा आ गई है। उनका प्रणय निरन्तर युद्ध - संकट में पलता है। उपन्यास का उत्तरार्द्ध प्रकृति और युद्ध के दृश्यों से आपूर्ण है। इस उपन्यास में वर्मा ने सर्वप्रथम एक बुंन्देलखंडी चरवाहे को प्रविष्ट कराके लोक - जीवन को प्रस्तुत किया है। चरवाहे का भोलापन, सादगी, विपन्नता और उसका प्रकृत जीवन कुछ ही पृष्ठों में भली - भाँति उभरे हैं। शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास "गढ कु डार" की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। इसकी गति संतुलित है। इसके परिच्छेद संक्षिप्त हैं, चार पृष्ठों से भी कम है। कहीं - कहीं अप्रत्याशित संशयजनक स्थिति का सुन्दर विकास हुआ है। उदाहरण के लिए दलीपनगर नगर का राजा देवीसिंह विराटा के मन्दिर में आता है। बाहर उसका अपने चिर शत्रु कुंजरसिंह से विवाद हो चुका है। दोनों परिस्थिति - वैचित्र्य के कारण तत्काल परस्पर लड़ने और वैर चुकाने को विवश है। देवीसिंह की, अंधिकाशच्छादित

मन्दिर में दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में रामदयाल, गोमती, कुमुद, नरपति से, अप्रत्याशित भेंट होती है । एका एक बात बढ़ जाती है । कुंजरसिंह भी देवीसिंह से युद्ध करने मन्दिर में घुस आता है । आकस्मिक रक्तपात को रोकने के लिए नरपति चुप के से दीपक को फूंक से बुझा देते है । सभी योद्धा अंधेरे में जैसे - तैसे आत्मरक्षा करते हुए मन्दिर से बाहर आ पाते हैं । यह सम्पूर्ण दृश्य अपनी गति और संशयात्मक स्थिति के कारण विशेष नाटकीय तथा सजीव बन पड़ा है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. "आजकल" (मासिक पत्रिका, जुलाई 1957) पृ 18
2. कचनार, परिचय- वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 6
3. वृन्दावन लाल वर्मा साहित्य और समीक्षा
   डा. सियाराम शरण प्रसाद - पृ. 115
4. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ - डॉ. सुरेश सिन्हा - पृ. 31
5. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन डॉ. सुमित्रा त्यागी
6. हिन्दी उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 62
7. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता डॉ. सुखदेव शुक्ल - पृ. 25
8. हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास डॉ. प्रेमनारायण टण्डन-पृ. 46
9. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डॉ. श्रीकृष्णलाल - पृ. 52
10. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा डॉ. रामदरश मिश्र - पृ. 112
11. भुवन विक्रम परिचय - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ. 2
12. मृगनयनी - वही - पृ. 207

पंचम अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास दृष्टि

5· वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास-दृष्टि

5·1· भाषा और इतिहास के सह संबंध

5·2· समय और संस्कृति

5·3· इतिहास : एक अविस्मृत सत्य

5·4· रोमांस उपन्यास का प्राण तत्व

5·5· इतिहास पात्र-परिकल्पना

5·6· साहित्य और समाज का इतिहास

5·7· मानवता का आविष्कार

5. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : इतिहास-दृष्टि

5.1. परिचय :-

श्री वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के उन साहित्यकारों में से एक है, जिन्होंने अपना जीवन सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट साहित्य सेवा के लिए समर्पित किया है। कहानी, नाटक, शिकार कथा और उपन्यास आदि विविध साहित्य विधाओं को वर्मा जी की लेखन प्रतिभा का प्रसाद मिला है। यद्यपि इन सबका अपना अपना महत्व है, किन्तु उनकी साहित्यिक कीर्ति का आधार स्तम्भ मुख्यत: इतिहास दृष्टि है। 1927 में उनका पहला उपन्यास गढ़कुण्डार प्रकाश मे आया। इस कृति की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और इसी से हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की शुरूआत मानी। " 1930-31 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों इस रचना के लिये वर्मा जी को स्वर्ण पदक

प्राप्त हुआ ।"[1] वर्मा जी ने अतीत और वर्तमान दोनों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है । लगन, कुण्डलीचक्र, संगम, प्रत्यागत, कभी-न-कभी आदि उपन्यासों के कथानकों का चयन लेखक ने समकालीन समाज और परिस्थितियों से किया है । गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, मुसाहिबजू, झाँसी की रानी, माधव जी सिंधिया, मृगनयनी आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास है । " अब क्यों हों " मराठा इतिहास पर आधारित वर्मा जी अधूरी औपन्यासिक कृति है । " सोना " नामक उपन्यास की आधार उत्तर भारत की एक बहु प्रचलित लोककथा है । जिसे लेखक ने औपन्यासिक शिल्प संवार कर एक नवीन प्रयोग किया है ।

उक्त कृतियों में से " विराटा की पद्मिनी " को हिन्दी के ऐतिहासिक रोमांसों में सर्वश्रेष्ठ और प्रतिनिधि कृति घोषित किया गया ।"[2] " झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई " और " मृगनयनी " उनके बहुचर्चित और सर्वाधिक प्रशंसित उपन्यास है । " मृगनयनी " को उत्तर प्रदेश सरकार ने 1951 में पुरस्कृत किया । इस कृति पर उन्हें " डालमिया पुरस्कार " भी प्राप्त हुआ ।[3]

1958 में आगरा विश्वविद्यालय ने वर्मा जी को डि॰लिट्॰ की मानक उपाधि दी । सन् 1965 में भारत सरकार ने वर्मा जी को " पद्म विभूषण " की उपाधि से अलंकृत किया । अपने जीवन काल में वर्मा जी को जितनी सराहना प्राप्त हुई उतनी हिन्दी के बहुत कम साहित्यकारों को हुई होगी ।

5.2. भाषा और इतिहास के सह सम्बन्ध :-

वर्मा जी के साहित्य ने न केवल हिन्दी भाषा-भाषियों में लोक प्रियता अर्जित की अपितु इतर भाषाओं में भी उसका व्यापक प्रचार प्रसार किया। भाषा के इतिहास को समाज के विकास के साथ जोड़कर देखा जाएं तो भाषा के इतिहास के साथ-साथ समाज और संस्कृति का इतिहास भी सामने आएगा। साहित्य की भाषा में भाषा की सामाजिकता के साथ-साथ साहित्यकार की निजी सृजनशीलता भी प्रकट होती है। साहित्य के इतिहास और भाषा के इतिहास के महत्वपूर्ण संबंध की समस्या का सामना हिन्दी साहित्य के प्रत्येक इतिहासकार को करना पड़ता है। वर्मा जी के उपन्यासों के अनुवाद इस बात के स्पष्ट स्वयं सिद्ध प्रमाण हैं। " झाँसी की रानी " उपन्यास का मराठी, कन्नड़ और सिन्धी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।" [4]

हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य इतिहासकारों और आलोचकों ने वर्मा जी के कृतित्व पर अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार किया है तथापि ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में उनकी श्रेष्ठता और वैशिष्ट्य को सभी ने स्वीकार किया है।

आचार्य शुक्ल ने दो उपन्यासों के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में एकमात्र वर्मा जी के अस्तित्व को मान्यता देते हुए लिखा है -- " वर्तमान काल में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में केवल बाबू वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास के मध्ययुग के आरम्भ में बुन्देलखण्ड की स्थिति को देखकर दो गढ़ कुण्डार और विराटा की पद्मिनी बड़े सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। विराटा की पद्मिनी की तो कल्पना अत्यन्त रमणीय है।" [5]

डा॰ श्री कृष्णलाल · अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की दशा संख्या और श्रेष्ठता दोनों दृष्टि से अत्यन्त हीन निरूपित करते हुए यह स्वीकार करते है कि " वृन्दावन-लाल वर्मा " ने अवश्य कुछ उत्तम ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। उनके गढ़कुण्डार में मध्यकालीन बुन्देलखण्ड की संस्कृति, उसकी सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति और वातावरण का सुन्दर चित्रण मिलता है।" [6] डा॰ प्रभाकर माचवे ने ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का सिंहावलोकन करते हुए लिखा है -- " साहित्य के इतिहास में संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास केवल चार-पाँच ही हैं और वे हैं राहुल सांस्कृत्यायन, भगवतीशरण उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, रांगेयराघव, चतुरसेन शास्त्री, और इन सबमें गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से सर्वाधिक और अच्छा लिखने वाले

श्री वृन्दावनलाल वर्मा जी है ।" उक्त उद्दरणों से यह स्पष्ट होता है कि वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में आरम्भ से ही चर्चा का विषय रहे और विद्वानों ने इस क्षेत्र में वर्मा जी को अग्रगण्य माना ।

5·3· समय और संस्कृति :-

वर्मा जी के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि भारतीय इतिहास की तेरहवीं शताब्दी से लेकर 19 वों शताब्दी तक की कालावधि है । इस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों का इतिहास सम्मत चित्रण करते हुए वर्मा जी भारतीय संस्कृति की उस छटपटाती आत्मा की खोज में व्यस्त रहे हैं जो पराधीन होकर भी अपनी मुक्ति के लिये निरन्तर संघर्षरत रही । 19 वीं शती के आरम्भ में आपसी फूट के घुन से क्षीण मराठा संघ के होल्कर सिन्धिया, गायकवाड, भोसले आदि प्रमुख स्तम्भों को भी अपनी कूटनीति से अंग्रेज हिला चुके थे । इस नई जाति की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड अन्य प्रांतों की तरह सम्मोहित और सम्प्राभावित हो चुका था । परन्तु तब तक उसकी जकड़ में इतनी कठोरता नहीं आई थी कि परम्परायें और स्थानिक रीतियाँ बिल्कुल निर्जीव हो जाये ।

साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या एक जटिल, लेकिन जरूरी समस्या है । इसकी जटिलता के कारण ही साहित्य के इतिहास लेखन पर विचार करने वाले कुछ लोग इसकी चर्चा से बचते हैं और कुछ दूसरे लोग इसे अनावश्यक बताते हुए छोड़ देने की सलाह देते हैं । हाल के वर्षों में पश्चिम में साहित्य के इतिहास के नए सिद्धांतों और नई दिशाओं पर जो बहसे हुई है उनमें भी काल विभाजन की समस्या पर चर्चा हुई है । इतिहास ग्रन्थों में भी काल-विभाजन की पुरानी पद्धति ही दिखाई देती है, कालों का नामकरण भी राजाओं और लेखकों के नामों के आधार पर ही होता है ।

5·4· इतिहास : एक अविस्मृत सत्य :-

ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से मानवीय जीवन के आन्तरिक सत्यों की खोज एवं किसी युग के सांस्कृतिक निर्माण जैसे गम्भीर लक्ष्यों को ध्यान में रखकर इतिहास और कल्पना के मधुमय संयोग से " उच्च - कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा हुआ ।" [8] डॉ· शिवनारायण श्रीवास्तव की इस औचित्यपूर्ण स्थापना का समर्थन प्रकारान्तर से हिन्दी के अनेक आलोचकों ने किया है । उनके लिये इतिहास न तो कल्पना की विलास स्थली मात्र है और न निर्जीव तथ्यों का संग्रह, बल्कि वह अतीत और वर्तमान के मध्य कार्य कारण की अविच्छिन्न श्रृंखला है । वर्मा जी ने चतुरसेन शास्त्री के

समान " इतिहास-रस " के निमित्त सत्य को मनमाने ढंग से तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत करने में रुचि नहीं दिखाई, तथापि उनके साहित्य पर नीरसता का आरोप नहीं लगाया जा सकता । एक सिद्ध कलाकार के समान उन्होंने रूखे फीके तथ्यों को सरस प्रसंगों, मार्मिक स्थितियों एवं विवेक सम्मत कल्पनाओं से संवार कर इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि तथ्य और कल्पना के जोड़ पहचाने नहीं जा सकते ।

जिस प्रकार प्रसाद ने अपने नाटकों में भारतीय इतिहास की विवादास्पद घटनाओं और चरित्रों से सम्बन्धित वास्तविक निष्कर्षों तक पहुँचने के लिये ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त समकालीन साहित्य, पुराण एवं बौद्ध धर्म ग्रन्थों की छानबीन करके तथ्यों का चयन और पुनर्सम्पादन किया, उसी प्रकार वर्मा जी ने कतिपय ऐतिहासिक भ्रमों के निवारण हेतु उपन्यासों की रचना की । " यही कारण है कि " माधव जी सिंधिया " को लेखन के पश्चात् प्रकाश में आने के लिये आठ वर्षों को लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी ।" [1]

लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त वर्मा जी ने जनश्रुतियों एवं मौखिक परम्परा में सुरक्षित मान्यताओं को अपनी संस्थापनाओं का आधार बनाया है । बहुत कुछ अतिरंजना होते हुए भी इनमें निहित श्रद्धा के सूत्र को उन्होंने विदेशी इतिहास लेखकों के द्वारा विकृत, मनगढ़न्त तथ्यों से अधिक मूल्यवान माना है । वर्मा जी स्काट की

भाँति अतीत के चित्रण मात्र की खींच से इतिहास की ओर प्रवृत्त नहीं हुए थे और न ही उनका उद्देश्य वर्तमान से पलायन करके अतीतोन्मुख होना था। उन्होंने तो वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिये अतीत से उपजीव्य खोजने की चेष्टा की है। इस प्रक्रिया का स्पष्टीकरण वर्मा जी के शब्दों में इस प्रकार हैं, " मैं आपको कभी सैकड़ों वर्ष पीछे ले जाता हूँ और कभी उससे भी अधिक परन्तु इतिहास की उदासीनता में आपको फिर भी जकड़े रखता हूँ। किसी देश का इतिहास भूत और वर्तमान से अलग रह कर नहीं चलता।

वर्तमान समस्याओं का हल अचेत मन पर हमला करने से ज्यादा आसान होगा और सचेत मन पर हमला करने से कम। फिर वहीं उनके अचेत मन में प्रवेश करके जो कुछ करना चाहता हूँ कर डालता हूँ। वे जब उपन्यास को समाप्त करने के बाद वर्तमान में लौटते हैं तब अपने आपको कुछ अधिक सशक्त, स्फूर्तिमय और बढा हुआ पाते हैं।

वर्मा जी की उपन्यास कला का कौशल इस बात में निहित है कि इतिहास के सर्वमान्य तथ्यों को खण्डित न करते हुए भी वे भारतीय शौर्य की भग्न विरूप प्रतिमा को पुन: प्रतिष्ठित करने में सफल हुए हैं। उनके उपन्यास का केवल विदेशी इतिहासकारों द्वारा लगाये असमर्थता, कायरता, कर्तव्य विमुखता, संगठन की अक्षमता आदि

आक्षेपों को निराधार सिद्ध करने में समर्थ हुए हैं अपितु भारतीय मानस को उत्साह और आत्मविश्वास की ऊष्मा और ऊर्जा भी दे सके हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में इतिहास तथ्यों का निर्जीव पुंज नहीं अपितु अनुभूति और प्रेरणा का विषय बन कर आया है। ऐतिहासिक तथ्य हृदय रस से रिक्त होकर ही उपन्यासों के कलेवर में ढले हैं। इस विशिष्टता को लक्ष्य करके डा॰ रामदरश मिश्र ने उचित ही कहा है "वर्मा जी ऐतिहासिक सामग्रियों का उपयोग अपेक्षाकृत मानवीय कोमल प्रवृत्तियों के सफल अंकन के लिए ही किया है। इन्होंने इतिहास की उन्हीं सामग्रियों को ग्रहण किया जिनके उपन्यास की मनोरंजकता तो बनी ही रहे, साथ-साथ जीवन के विविध पक्षों का पारस्परिक संघर्ष और उनमें उदात्त वृत्तियों की विजय भी अंकित होती चली गई।" [10] भारतीय और विशेषकर बुन्देलखण्ड के इतिहास को उन्होंने हृदय और मस्तिष्क दोनों से आत्मसात किया और परम्परा और जन श्रुतियों के कोमल तन्तुओं से टूटी हुई इतिहास की कड़ियों को जोड़कर कथात्मक कौशल सहित प्रस्तुत किया है। लगता है वर्मा जी के पास कथानकों का एक समृद्ध भण्डार था जिसमें शौर्य साहस, प्रेम, स्वामि भक्ति, शत्रुता, बलिदान आदि विविध भावों के कथासूत्र संचित थे। अधिकांश ऐतिहासिक कथानकों में तथ्य, कल्पना और वास्तविक अनुभूतियों का कलात्मक

संयोजन हुआ है, इससे एक ओर वैविध्य आया है और दूसरी ओर अतीत की घटनाओं में भी जीवन के आत्मीय स्पन्दन का आभास होता है ।

वर्मा जी के उपन्यासों के कथानक प्राय: संतुलित रूप से सुसंगठित होते हैं। घटनाओं का बाहुल्य होते हुए भी लेखक उसे भूल भुलैया नहीं बनता अपितु कार्य कारण की अविच्छन्न श्रृंखला में प्रस्तुत कर कलात्मक सौन्दर्य से युक्त रखता है । डॉ· रामविलास शर्मा के अनुसार वर्मा जी इस युग के सबसे अच्छे कहानी कहने वाले हैं जहाँ और उपन्यासकार कथानक की ओर से उदासीन रहने लगे हैं और रस की सृष्टि के लिये तरह-तरह की रसिकता का सहारा लेने लगे हैं वहाँ वर्मा जी अपनी सरस कथा से पाठक का मन बाँधे रहते है और अन्त तक उसकी उत्सुकता रखते हैं ।" [11]

कथा की सुनियोजित श्रृंखला के मध्य मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना वर्मा जी ऐसी परिस्थितियों और वातावरण के मध्य करते हैं कि उनकी प्रभविष्णुता कई गुना बढ़ जाती है । मन्दिर पवित्र वातावरण में नयनतारा का बेले की कलियों की माला के मिस मौन प्रणय निवेदन, युद्ध क्षेत्र के चीत्कारों से तनिक हटकर चाँदनी में प्रसव पीड़ा से कराहती मानवती के प्रति अग्निदत्त की पश्चाताप दग्ध आत्मस्वीकृति, आसन्न संध्या और चतुर्दिक सन्नाटे में वेतवा की चट्टानों पर खड़ी देवी से पवित्र कुमुद के प्रति कुंजर का समर्पित

प्रणय निवेदन, निर्जन खलियान में तारों को साक्षी बनाकर अटल-लाखी का अनोखा पाणिग्रहण, झाँसी छोड़ते हुए नानी लक्ष्मीबाई की फूले पलाश से ... भेंट, बालवीर विश्वासराव की पानीपत के युद्ध में भेजते हुये प्रचण्ड माता गोपिकाबाई की सजल नयन मार्मिक विदाई, गुरु के अनुशासन में बंधा गौरी की देहरी पर भुवन का विचलित और स्थिर होना , तोपों के मुहरों से बांधे जाते रघुनाथ राव शंकर राव का अविचलित बलिदानी भाव आदि ऐसे स्थल हैं जो उपन्यास समाप्त हो जाने पर भी पाठक के हृदयपट पर छाये रहते हैं ।

कतिपय प्रसंगों के दृश्य विधान में वर्मा जी का शब्द-चयन और स्थिति संयोजन चित्रकार की तूलिका का कौशल ग्रहण कर लेता है । कुमुद की जल समाधि का दृश्य, राई की गढ़ी की रक्षा करती हुई लाखी का बलिदान, झाँसी की रानी का देहित नैय पावक : कहते हुए गौरवपूर्ण बलिदान, वृन्दावन की कुंजों में नूरबाई का भाव विह्वल नृत्य आदि दृश्य अंगूठी में जड़े नगीने की तरह अपनी कलात्मकता में अनुपम है ।

युद्ध और आखेट के चित्रण में वर्मा जी को अद्वितीय सफलता मिली है । सिद्ध योद्धा के समान युद्ध पूर्व रणोल्लास और मध्ययुगीन शूरवीरों के आकुल उतावलेपन से लेकर शस्त्र संचालन की त्वरा, पैतरों की पुत्ती, व्यूहों की अनेक विधि रचना, आमने-सामने के युद्धों के दाँवपेंच, सेनाओं का टुकड़ियों में सिमटना-झपटना इन सब स्थितियों

का इतना सजीव और यथार्थ चित्र वे प्रस्तुत करते हैं कि पूरा समयकाल की विस्तीर्ण दूरियों के व्यवधान पार कर आँखों के सामने साकार हो जाता है ।

वर्मा जी के युद्ध प्रसंग ड्राइंग रूम की कुर्सी पर बैठे-बैठे कलम से जड़े गए युद्ध नहीं हैं बल्कि उन मैदानों, पहाड़ियों की दूनी और गढ़ कोटों पर घन्टों घूम-घूम कर, उन परिस्थितियों से साधरणीकृत होकर चित्रित किए गए युद्ध हैं । वर्मा जी ने स्वयं उन युद्धों में सक्रिय भाग नहीं लिया किन्तु उन पुराने लोगों के मुँह से उन शौर्य गाथाओं को अनेक बार सुना था जिनका जीवन्त पीढ़ी दर पीढ़ी लोहे से लोहा बजाते बोता था ।" [12] बुन्देलखण्ड के वातावरण में आज न उस शौर्य की अनुगूंज शेष है । वही गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी, दुर्गावती और माधव जी सिंधिया के अनेक युद्धस्थलों पर बार-बार उभर उठी हैं । युद्ध के एक से एक सजीव चित्रण इन उपन्यासों में भरे पड़े हैं ।

हिन्दी साहित्य में श्री राम शर्मा की " राम " की शिकार संबंधी कथाओं को छोड़कर आखेट चित्रण नहीं के बराबर हुआ है । जबकि वर्मा जी के उपन्यासों में आखेट का आनन्द पूरी सरंगीनी, रोमांचकता और यथार्थता के साथ प्रगट हुआ है । शिकार के गढों में टार्च के प्रकाश के सहारे साहित्य रचना करने वाले लेखक के औपन्यासिक

चरित्रों को भी यदि आखेट प्रेम का प्रसाद मिल जाये तो आश्चर्य ही क्या । उनके पुरुष पात्र ही नहीं, मृगनयनी, लाखी और दुर्गावती जैसे सुन्दरियाँ भी अचूक लक्ष्य बेधक है । जंगली भैसों, अरनो, बनैले दुर्दान्त सुअरों और शेरों की दहाड़ उनके लिये भय का विषय नहीं मनोरंजन का साधन है । इन चित्रणों में साहस और जीवन की दीप्ति, जीवन का तरुण उल्लास, स्थानीय रंगों की चमक और भावनाओं के माधुर्य की छटा एक दूसरे को पराजित करती सी प्रतीत होती है । जो आलोचक वर्मा जी के साहित्य पर " जड़ आदर्शवाद "[13] का आरोप करते हैं वे इन सजीव स्थलों को या तो विस्मृत कर देते हैं अथवा अपनी मान्यताओं के प्रति अतिरिक्त मोह के कारण जीवन के सहज उल्लसित पक्ष को बहुत हल्का करके देखने के आदी है ।

5·5· रोमांस उपन्यास का प्राण तत्व :-

सत्य और तथ्य के प्रति अगाध आस्था रखते हुए भी जीवन की एक सरसता से उबरने के लिये, सभ्यता और स्फूर्ति के संचार के लिए वर्मा जी रोमान्स को आवश्यक मानते हैं । उनके उपन्यास ऐति - हासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित होते हुए भी रोमान्स के तत्वों से ओत प्रोत हैं । साहस, सौन्दर्य, शौर्य और प्रेम इस रोमान्स के मूल तत्व हैं । वर्मा जी के उपन्यासों का रोमान्स " जीवन की यथार्थ स्थितियों में साहस, उमंग, त्याग और बलिदान की अपनी

विशिष्ट भंगिमा से असाधारण तत्व प्राप्त करता है । "[14] न परिस्थितियाँ अविश्वसनीय होती हैं और न पात्र अपरिचित । प्रेम को जिस भावना को कृष्ण की परम्परा के समान अत्यन्त गोपनीय रखा जाता है । असाधारण स्थितियों में वह दृष्टि की नेत्रों की उलझन हट और होठों की थरथराहट बन कर अनायास ही प्रकट हो जाती है ।" अधिकांश प्रणय प्रसंग जीवन मृत्यु की सन्धि बेला में मुखर हुए हैं, जहाँ दैहिक कामनाओं के स्पर्श तक का अवकाश नहीं ।"[12] वर्मा जी के रोमांसों में प्रणय की तीव्रता के साथ त्याग और बलिदान की भावनाओं ने लालसा प्रेरित उद्दामता के स्थान पर सौम्य गरिमा की सृष्टि की है । इनकी सबसे बड़ी सफलता साधारणीकरण की क्षमता है। एक क्षण के लिए भी पाठक उपन्यास की रोमांटिक घटनाओं और पात्रों को वायवी या असम्भव समझकर अविश्वास नहीं कर सकता । युद्ध की विभीषिका की उपेक्षा करके तारा के "दिवाकर" को तलघेर से निकालने का सफल प्रयास, लाखी का रस्सी काटकर नटों के षड्यंत्रों को विफल करने की तत्पर सूझबूझ कचनार का गुसाइयों के शिविर में शरण लेना आदि घटनाओं में भी रोमांचकता है। पर पूरी शत्रुपुरी को "चिपचुम्बन से वश में कर लेने जैसी अद्भुत अतिमानवीय नहीं ।"[16] इसका एकमात्र कारण यही है कि वर्मा जी के रोमांस कपोल कल्पित नहीं बल्कि

वास्तविक और घटित अतीत की प्रतिध्वनियाँ हैं । स्थूल आवेगों को उत्तेजित करने की अपेक्षा उनके उन्नयन की प्रेरणा इनका मुख्य प्रभाव है । राजनीति के छल छन्दों और ऐतिहासिक युद्धों के तुमुल कोलाहल में दुरागत वंशीरव के समान सुखद रोमांस वर्मा जी के उपन्यासों की निजी विशिष्टता है ।

उक्त विवेचनों से यह स्पष्ट होता है कि वर्मा जी के उपन्यासों में तथ्य और कल्पना, इतिहास और रोमांस का " अद्भुत समन्वय हुआ है । अधिकांश मुख्य कथायें इतिहास प्रसिद्ध हैं और प्रासंगिक कथायें युगानुकूल कल्पना से उद्भुत, जैसे गढ़ कुण्डार में नागदेव हेमवती प्रसंग इतिहास सम्मत है किन्तु मानवती-अग्निदत्त और दिवाकर तारा की प्रासंगिक कथायें काल्पनिक हैं, इसी प्रकार मानसिंह-मृगनयनी की ऐतिहासिक मुख्य कथा के साथ लाखी और अटल की प्रासंगिक कथा काल्पनिक है । झाँसी की रानी में भी रानी लक्ष्मीबाई के स्वतंन्त्रता संघर्ष की मुख्य इतिहास प्रसिद्ध कथा के साथ मोतीबाई-खुदाबख्श झलकारी पूरन और मुंदर रघुनाथ सिंह की संक्षिप्त प्रासंगिक कथायें उभरी हैं। इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी इतिहास सम्मत सत्ता संघर्षों, राजनैतिक उत्थान-पतन के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करने के लिए काल्पनिक प्रसंगों का विधान हुआ है । लेखक की उर्वर कल्पना सदैव युगीन सम्भावनाओं से सम्बद्ध रही है अतः काल्पनिक

कथाओं में भी ऐतिहासिक भ्रम उत्पन्न करने में वर्मा जी को अपूर्व सफलता मिली है । इतिहास और कल्पना के संतुलित कलात्मक समन्वय से उस युग का संश्लिष्ट चित्र सामने आ जाता है । डा॰ प्रभाकर माचवे के शब्दों में पूरा उपन्यास पढ़ जाने के बाद उस काल के वातावरण का सजीव पुनर्निर्माण सफल जान पड़ता है जैसे गढ़कुण्डार या लक्ष्मीबाई में ।" 17

5.5 इतिहास पात्र परिकल्पना :-

सुसंगठित रोचक कथानकों के साथ अमर पात्रों का सृजन करने वाले उपन्यासकारों में वर्मा जी का नाम विशेषत: स्मरणीय है । व्यक्तित्व स्थापना या चरित्र निरूपण एक ऐसी कड़ी है जो ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वर्मा जी का स्वतन्त्र स्थान निर्धारण करती है । वर्मा जी के उपन्यासों की विराट रंगशाला में प्रमुख और गौण पात्रों की संख्या लगभग 500 है । इतिहास के विविध कालखण्डों और जीवन की अनेक विविध परिस्थितियों से चुने इन चरित्रों की स्पष्ट, पुष्ट और सजीव रेखायें वर्मा जी के व्यापक जीवनानुभव और रूप विधायिनी कल्पना की सूचक हैं ।

वर्मा जी के कथानकों के समान उनका चरित्र-चित्रण भी उद्देश्यपूर्ण है । उनके पात्र न केवल कथासूत्रों से अविच्छिन्न रूप से गुंथे रहते हैं प्रत्युत अपनी विशेषताओं से नई परिस्थितियों को जन्म देते और

घटनाक्रम को विकसित भी करते हैं । वे अपने युग के देशकाल को प्रस्तुत करने के साधन मात्र नहीं है बल्कि युगीन कोलाहल में मानवता की पुकार को मुखर करने वाले हैं ।

वर्मा जी के पात्रों की बहुरंगी दुनिया में सबसे आकर्षक है उनकी महीयसी नायिकायें । उपन्यासों में प्रसंगवश मानवती, कलावती, उम्दा बेगम जैसी साधारण नारियाँ भी आई हैं पर उन्हें वर्मा जी के प्रतिनिधि नारी पात्र नहीं कहा जा सकता । वर्मा जी ने अपने नारी चरित्रों को असाधारण रूपलावण्य के साथ शालीनता, कोमलता के साथ शक्तिमत्ता एवं प्रणयोत्कण्ठा के साथ उदारता, त्याग और बलिदान के उच्च मानवीय गुणों से समन्वित करके विशेष गौरवमयी बना दिया है । सौन्दर्य, ममता और सहृदयता के परम्परागत गुणों के साथ वे अपरिमित शक्ति और अपराजय शौर्य की स्वाभिमानी है । तब तक की सुकुमार अबला कही जाने वाली नारी का मानों मृगनयनी, कचनार, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई और अवन्तीबाई में कायाकल्प हो गया हो, " वर्मा जी के नारी पात्रों को भीट्टनी और अरुणा के समान किसी उद्धारकर्ता की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वे तो अपनी प्रजा, देश के गौरव, धर्म और संस्कृति की रक्षा के निमित्त समरांगण में कूद पड़ने वाली हैं ।" [18]

वर्मा जी के पात्रों और कथानकों में प्राय: संतुलित और घनिष्ट सम्बन्ध है। कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण अन्योन्याश्रित है। न तो उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों के समान घटनाचक्र के व्यामोह में चरित्रों की उपेक्षा की है और न मनोविश्लेषण-वादी उपन्यासकारों के समान मनोग्रन्थियों के विश्लेषण-विवेचन में कथा-सौष्ठव और कुतूहल की बलि दी है। वर्मा जी अधिकतर अपने क्रिया-कलापों द्वारा चरित्र का परिचय देते हैं जिसमें कथोपकथन या वार्तालाप भी उनके व्यक्तित्व के उद्घाटन में पर्याप्त सहायक हुए हैं। इसके अतिरिक्त कथावस्तु को गति प्रदान करने एवं वातावरण का देशकालानुकूल निर्माण करने में भी अन्य उपन्यासकारों की भाँति संवादों से सहायता ली गई है। जीवन की विविध परिस्थितियों के व्यापक अनुभव और अपने पात्रों से गहरी आत्मीयता के कारण संवादों में सहज प्रवाह और एक प्रकार की बेतकल्लुफी दिखाई देती है। अधिकांश संवाद संक्षिप्त व उत्तर-प्रत्युत्तर की चुस्ती से पूर्ण है जिनकी गति कथानक को रोचकता के साथ क्षिप्रता प्रदान करती है। वर्मा जी के संवादों की बड़ी विशेषता है उनकी पात्रानुकूलता। राहुलजी के समान उनके पात्र लेखक के सिद्धान्त-प्रचार को विवश नहीं हुए हैं। उनके भाव, विचार शब्द और भंगिमा अपनी ही है। पात्रानुकूल-औचित्य के साथ वर्मा जी के संवादों में प्रसंगानुकूलता के भी दर्शन होते हैं। प्रणय प्रसंगों में वार्तालाप शीलयुक्त स्निग्ध माधुर्य, मतभेदों में

तीखी चुंभन, क्रोधावेश में भभक और उत्तेजना तथा करुण प्रसंगों में हृदयस्पर्शी बोधकता प्राय: देखी जा सकती है । फिर भी यह मानना पड़ेगा कि वर्मा जी के उपन्यासों में नैसर्गिक सरलता, खुरदरी स्निग्धता और अल्हड़ सौन्दर्य अधिकांश उपन्यासों को जीवन्त स्पर्शी से विशिष्ट माधुर्य प्रदान करते है ।

5·6· साहित्य और समाज का इतिहास :-

" साहित्य का इतिहास समाज के इतिहास से पूरी तरह स्वतंत्र और विच्छिन्न नहीं होता, इसलिए साहित्य के इतिहास के इतिहासकार को समाज के इतिहास के बोध और वैज्ञानिक धारणा की आवश्यकता होती है । समाज के इतिहास के बोध और वैज्ञानिक धारणा के अभाव में साहित्य और समाज के संबंध का ठीक-ठीक बोध कठिन होगा ।" ﴾ मैनेजर पाण्डेय ﴿ समाज के इतिहास की कोई धारणा न होने पर साहित्य का इतिहासकार साहित्यशास्त्र की अंधे की लाठी को तरह पकड़कर अनुमान और अटकल बाजी के कदमों से साहित्य के इतिहास की यात्रा करने का प्रयास करता है । यह समझना बहुत मुश्किल नहीं है कि ऐसी यात्रा के कैसे परिणाम हो सकते है ।

वर्मा जी व्यक्ति को अंधेरे से उजाले की ओर ले जाने के लिए सतत प्रयत्नशील है। उनके हृदय की यह एकान्त इच्छा है कि समाज सत्-पथ पर बना रहे। उसकी उन्नति हो, विकास हो और समाज के प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक व्यवहार ऐसा हो जिस पर देश गर्व कर सके।

भारतीय समाज में व्यक्ति के साधारण धर्म और कर्तव्यों की व्यवस्था की गई है जिन्हें मानना प्रत्येक व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य समझा जाता है। इन साधारण धर्मों में धैर्य, क्षमा, चौर्या भाव, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सत्य, आक्रोश आदि धर्म सम्मिलित किये गये है।

वर्मा जी के अनुसार कोई भी इतिहास, यदि उसका सम्बन्ध राष्ट्रीय जीवन के उत्पादक की यथार्थ परिस्थितियों से रहा है और उसमें जनता के कर्म की संस्कृति को एकदम नगण्य नहीं बना दिया गया तो विकास की धारणाओं से नस्ल और वंश, जाति और वर्ण के साथ व्यक्ति और उसके नायकत्व की हजारों हजार छवियों के रहते हुए भी जीवन के स्रोत क्षीण नहीं हो पायेंगे, उनमें विविधता रहेगी और वे बहुमुखी होकर प्रवाहित होते रहेंगे। लोक जीवन के प्रवाह से इतिहास और उसकी अवधारणायें ठोस निश्चयात्मकता के रूप में

रहती है । समाज की भौतिक ऊर्जा के शिथिल पड़ जाने से उसके रचनात्मक कर्म में व्यवधान आने लगता है, जीवन के श्रम की गति मंद पड़ जाती है और तब इतिहास के मानववाद में ऊँच - नीच के भेदों का महत्व बढ़ने लगता है।

सामाजिक उन्नति के लिए वर्मा जी धर्म का यह सरल, आडम्बर-विहीन एवं लोकोपकारी रूप समाज के सम्मुख रखते हैं। मनोवृत्ति को शुद्ध रखना चाहिए, आत्मा के रूप में परमात्मा का अंश मनोबल की सहायता से किसी न किसी जन्म में मनुष्य को मुक्ति दे देता है, वासनाओं से अलग रहकर जो कर्म किया जाता है वहीं सुकर्म है, वर्तमान जन्म की तपस्या से पूर्व जन्म का असफल मनोरथ सिद्ध हो जायेगा ।

वर्मा जी इतिहास को अतीत की कथा ही नहीं मानते । वे इतिहास को जीवन्त शक्ति मानते हैं । वर्मा जी के उपन्यास भारतीय सामाजिक नैतिक आदर्शों का सार है । वर्मा जी के उपन्यासों में अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती कचनार आदि कतिपय आदर्श नारियाँ समाज के इतिहास की उन्नति का अनुमान करती हैं तथा अन्य व्यक्तियों को इस पथ पर चलने की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देती हैं ।

साहित्य का इतिहास संघर्षों से संचालित साहित्य में हुए परिवर्तनों और विकास को उपस्थित करता है । वर्मा जी के अनुसार समाज का इतिहास और साहित्य मनुष्य को सामाजिक एकता के सूत्र में आबद्ध करने का प्रयत्न करता है । समाज का इतिहास से सामाजिक संगठन में ही आचार-विचार, आदर्श आदि की एकता, संगठन शक्ति एवं सामूहिक विकास की प्राप्ति होती है ।

5·7· मानवता का आविष्कार :-

वर्मा जी के उपन्यास धर्म संकीर्णता से मुक्त हैं । उनके आदर्श पात्र धर्म में फैले अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों को व्यर्थ तथा निरर्थक समझते हैं । उनकी धारणा है कि धर्म जीवन को ऊँचा उठाने की, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति करने की प्रेरणा देता है । धर्म के संकुचित रूप को न अपना कर वे उसके विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाते हैं । उनके प्रत्येक कार्य, प्रत्येक विचार तथा प्रत्येक भाव उसी परम उज्ज्वल, परम पवित्र परमात्मा की ज्योति से आलोकित रहते हैं ।

युग-युग से उपेक्षित, अपमानित तथा कलंकित जीवन व्यतीत करने वाली वेश्या के लिए भी लक्ष्मीबाई के हृदय में सहानुभूति का स्थान है। वेश्या होने के नाते ही वह उन्हें त्याज्य नहीं समझती। पवित्र वातावरण एवम् लक्ष्मीबाई का सत्संग प्राप्त कर वेश्या पुत्रियाँ मोतिबाई तथा जूही-अपना जीवन सफल करती हैं।

इसी प्रकार दासी जीवन की निरर्थकता, निस्सारता तथा निरुपयोगिता से द्रवित होकर लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई एवम् दुर्गावती अपनी सेवा में नियुक्त की गई दासियों को सखी तथा बेटी के प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती हैं।

वर्मा जी के आदर्श पात्रों का मानवतावादी दृष्टिकोण उन्हें उच्चता तथा महानता के शिखर पर पहुँचा देता है। उनके हृदय की कोमलता, संवेदनशीलता तथा मानवता ही उन्हें पर दुख दूर करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। दुर्गावती धन-संचय महान कार्य करते हैं, इसी दृष्टिकोण के कारण करते हैं। दुर्गावती धन-संचय करके वैभव-विलास का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा जन हित के कार्य करती है। अहिल्याबाई सरल, सादा जीवन अपनाती है तथा धर्म और कर्तव्य की वेदी पर अपना समस्त सुख-वैभव न्योछावर कर देती है।

लक्ष्मीबाई तथा अवन्तीबाई जनता के दुख से पीड़ित हो उठती हैं। अंग्रेजों के अत्याचार तथा अपमान से जनता की रक्षा करने के लिये वे महलों को वैभवपूर्ण, विश्रामदायिनी गोद छोड़कर रण प्रांगण को अपनी सुख-सेज बनाती हैं। ऐश्वर्य का जीवन त्यागकर कष्टों तथा विपत्तियों को गले लगाती हैं। मानवतावादी विचारधारा इन महान नारियों के प्रत्येक सत्कार्य को परिचालित करती है।

वर्मा जी के उपन्यासों के अधिकांश पात्रों के जीवन की आधार शिला धर्म है। धर्म से संचालित उनका जीवन विकसित होकर महान हो उठता है। उनकी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं, विचारों तथा आचरणों को धर्म की छाया शुद्ध, विकसित तथा परिमार्जित कर देती है।

वर्मा जी के उपन्यासों में धर्म शब्द नितान्त व्यापक, महनीय एवम् सारगर्भित है। मानव-जीवन की ऐसी कोई भी दिशा नहीं, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जो धार्मिक भावना से शून्य हो, यहाँ तक कि राजनीति में भी वर्मा जी ने धर्म का आश्रय लिया है।

5•8• निष्कर्ष :-

वर्मा जी का साहित्य कोरे मनोरंजन या कलात्मक बारिकियों का साहित्य नहीं है वह शक्ति और मूल्यों का साहित्य है । उसमें शैलीगत पालिश और चमत्कार नहीं, अपितु वेग, प्रवाह और महा - काव्योचित गरिमा व उदात्तता का सम्यक समावेश है । " झाँसी की रानी " जैसी उनकी कृतियाँ मुर्दों में प्राण फूँक सकती है । सैध्दान्तिक विवेचन और प्रसार से दूर भारतीयता को मस्तक ऊँचा करके जीवित रहने की प्रेरणा दे सकती है । इसी विषय को लेकर लिखे गए " बेकारी का मजार ", " झाँसी की रानी ", " गदर " " साँझ का सूरज ", " आजादी की राह में ", " नाना राव पेशवा " आदि उपन्यासों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी का साहित्य केवल ज्ञानवर्ध्दक और संवेगात्मक ही नहीं, प्रेरणात्मक भी है ।

इतिहास पर आधारित होते हुए भी उनके सभी उपन्यासों का सम्बन्ध समकालीन जीवनमूल्यों से है । उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान ऐसी घटनाओं को उठाया है, जिनका प्रासंगिक महत्व आज की आकांक्षाओं के अनुरूप है । इस दृष्टि से उनके उपन्यासों को दुहरे अर्थो से भर दिया है । वे कृतियाँ हमारे इतिहास की उज्ज्वल घटनाओं की साक्षी भी हैं और साथ ही उनका सीधा संबंध आज के युग बोध

से भी है । उन्होंने मृत अतीत को पुर्नजीवित या पुर्नस्थापित ही नहीं किया है बल्कि उस प्रिय प्राण अतीत के जीवन्त अंशों को निकालने की चेष्टा भी की है ताकि वे अंश हमारी समकालीन आकांक्षाओं को सार्थकता दे सके ।

वर्मा जी में इतिहास ज्ञान और विधायक कल्पना दोनों का योग हैं । इसी कारण ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए भी उच्चकोटि की साहित्यिक कृतियों का निर्माण कर सके । उनके उपन्यासों की मुख्य विशेषता है कि उनके कथानक ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं करते और कल्पना तत्व के समावेश से रोचक भी बने होते हैं । इतिहास के संबंध में वर्मा जी का कहना है कि - इतिहास अपने सही एवं यथार्थत्व रूप में पाठकों के सामने आवें । उन्होंने स्पष्ट लिखा है — "मेरी सम्मति से इतिहास के साथ खिलवाड़ करना अनुचित है ।"

इतिहास के गौरवपूर्ण अध्यायों के प्रति आकृष्ट उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों दृष्टियों से उनका सच्चा और प्रामाणिक विवरण दिया है । जिस किसी भी व्यक्ति, घटना और स्थान के संबंध में उन्होंने लिखा है, उसके संबंध में विख्यात ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रारंभ में इतिहास के स्रोतों का जो परिचय दिया है उससे इस बात का स्पष्टाभास मिलता है कि इतिहास का अध्ययन कितनी गहराई में जाकर उन्होंने किया है ।

उपन्यासों में इतिहास तत्व और उसके प्रयोग की विवेचना करते समय उनकी सम्प्रेषणीयता को प्राय: भुला दिया जाता है । यह सोच लेना कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास तत्व पर ही अधिक ध्यान देना चाहिये, कथ्य और शिल्प पर कम अथवा इतिहास को सुरक्षित रखने मात्र से उपन्यास कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का हो जाता है, भूल है । जब तक इतिहास के साथ औपन्यासिक कलात्मक का सम्यक् नियोजन न होगा, उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास-कृति को उपलब्धि असम्भवहै । उपन्यासकार से इतिहास के प्रति किंचित झुकाव हुआ और कथ्य के प्रस्तुतीकरण में उसमें विवेक से काम लिया तो उसकी अभिव्यक्ति और रचना का स्तर निश्चय ही उच्च होगा और उसकी कृति सफलीकृत कोटि में आयेगी ।

संदर्भ सहायक ग्रन्थ सूची

1. शशि भूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा
पृ॰ 30

2. डा॰ त्रिलोकी नारायण दीक्षित - साहित्य संदेश, ऐतिहासिक
उपन्यास विशेषांक - पृ॰ 311॰

3. शशि भूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा
पृ॰ 306॰

4. वृन्दावनलाल वर्मा - अपनी कहानी - पृ॰ 255॰

5. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास
पृ॰ 515॰

6. डा॰ कृष्णलाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
पृ॰ 288॰

7. डा॰ प्रभाकर माचवे - आलोचना इतिहास विशेषांक
पृ॰ 127॰

8· डा· रामनारायण सिंह मधुर - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास - पृ· 48·

9· डा· सत्येन्द्र - उपन्यास - विवेचन - पृ· 56

10· डा· रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा पृ· 152·

11· डा· शिव कुमार मिश्र - वृन्दावनलाल वर्मा - उपन्यास और कला - पृ· 162·

12· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार - पृ· 34 - 35·

13· डा· लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ पृ· 53·

14· डा· सत्येन्द्र - हिन्दी उपन्यास विवेचन - पृ· 68

15· रघुनाथ सिंह - कुमुद - कुंजर - पृ· 39·

16· चतुरसेन शास्त्री - वैशाली की नगरवधू - पृ· 72·

17· डा· प्रभाकर माचवे - आलोचना इतिहास - अंक पृ· 128·

18· डा· हजारी प्रसाद द्विवेदी - बाण भट्ट की आत्म कथा पृ· 16·

उपसंहार

वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास - दृष्टि उपलब्धियाँ और सीमाएँ :-

हिन्दी साहित्य जगत् के प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नवीन धारा को सफलता पूर्वक प्रवाहित किया है और हिन्दी साहित्य को अमूल्य कृतियाँ प्रदान कर उसके एक बड़े अभाव की पूर्ति की है । उन्होंने अपने समस्त ऐतिहासिक उपन्यासों में चौदहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग के ऐतिहासिक काल खण्डों को ही ग्रहण किया है और मुख्यत: मध्य भारत और बुंदेलखण्ड की वीरांगनाओं एवं वीर पुरुषों को अद्भुत एवं जीवन्त रूप में चित्रित किया है जिनमें ऐतिहासिक वातावरण-निर्माण, तत्कालीन सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों सामाजिक प्रक्रियाओं एवं सामाजिक भावनाओं के उपयोग में निश्चय ही उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है । वर्मा जी का कहना है कि इतिहासकार के बीच अन्तक्रिया की अविच्छन्न प्रक्रिया से उद्भूत इतिहास, अतीत तथा वर्तमान के बीच संबंद्ध सेतु है ।

इतिहासकार इस सेतु का चक्रीय प्रकाश स्तम्भ है, जिसका प्रमुख अभिप्राय समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कराकर वर्तमान को प्रशिक्षित करना तथा सुखद एवं सुसम्पन्न भविष्य का मार्ग दर्शन कराना है। वर्मा जी का विचार है कि निःसन्देह ऐतिहासिक तथ्य इतिहास की रीढ़ होता है। तथ्यों का अधिक समावेश ही इतिहासकार का लक्ष्य एवं अभिप्राय होना चाहिये। इतिहासकार अपनी व्याख्यात्मक पद्धति से तथ्यों को बोलने के लिए बाध्य करता है। इतिहास लेखन को व्याख्या प्रधान करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का चयनशीलात्मक स्वरूप आवश्यक हो जाता है। इतिहास का अर्थ ही व्याख्या होता है। इतिहासकार समसामयिक सामाजिक रुचि के अनुरूप तथ्यों का संकलन तथा उनकी व्याख्या करता है। इतिहासकार का कर्तव्य है कि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को ऐतिहासिक तथ्य में परिणित करे तथा महत्वहीन तथ्यों को अनैतिहासिक सिद्ध कर उनका परित्याग कर दे।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कहीं भी कभी भी ऐतिहासिक सत्यों की न तो हत्या की है और न उन्हें तोड़ा-मरोड़ा ही है। उनके उपन्यासों में आए ऐतिहासिक परिस्थितियों और घटनाओं के विवरण तथा ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण की शैली यथार्थवादी है और उनके प्रगाढ़ अध्ययन का परिचायक है। उनके उपन्यासों में आए सभी प्रमुख पुरुष और नारी चरित्र आदर्शवादी है। इतिहास के पृष्ठों में

तत्कालीन जीवन की सच्ची पकड़ वर्मा जी की है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में मानव जीवन रोता-मुस्कुराता, गाता, प्रेम करता, परस्पर युद्ध संघर्ष करता मूर्तिमान हो उठा है । उनके उपन्यासों में सम्पूर्ण तत्कालीन जीवन अपनी कथा की भौगोलिक सीमाओं के सौन्दर्य एवं वातावरण तथा किंवदंतियों में बिखरे तत्वों आदि के सहारे अपनी बोली-वाणी में जीता-जागता मुखरित हो उठा है ।

वर्मा जी के अनुसार ऐतिहासिक तथ्यों की अपनी क्रमबद्धता होती है । फिर भी इतिहासकार अपनी व्याख्या से उन्हें क्रमबद्धता प्रदान करता है । इस क्रमबद्धता का आधार समसामयिक समाज की आवश्यकता होती है, जिसका निश्चय इतिहासकार करता है । इतिहासकार न तो अपने ऐतिहासिक तथ्यों का गुलाम है और न निरंकुश स्वामी । तथ्यों तथा इतिहासकार का संबंध समानता तथा आदान प्रधानात्मक होता है । तथ्य का संबंध व्याख्या और इतिहासकार का संबंध वर्तमान से होता है । वर्मा जी का कहना है कि अतीत और भविष्य के बीच एक परिकल्पनात्मक विभाजन रेखा है । वस्तुत: अतीत वर्तमान तथा भविष्य उसी कालांतराल के अभिन्न अंग होते हैं । अतीत वर्तमान तथा भविष्य में रुचि का पारस्परिक संबंध होता है । वर्तमान में इतिहासकार की रुचि अतीत की गवेषणा के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित करती है । इतिहासकार इस रुचि की परम्परा मानकर भविष्य

में सम्प्रेषित करना चाहता है । इतिहास परम्परा के साथ आरम्भ होता है और परम्परा का अर्थ होता है, अतीत की आदतों और परम्पराओं का भविष्य में संक्रमण । अतीत के विवरण को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जाता है । अतः इतिहास में भविष्य के प्रति रूचि सदैव स्थित रहती है । इतिहासकार की दृष्टि अतीत, वर्तमान तथा भविष्य पर समान रूप से रहती है ।

वर्मा जी में वातावरण निर्माण की अद्भुत क्षमता है । ऐतिहासिक वातावरण को सजीव रूप देने में उनकी समता करने योग्य कोई दूसरा उपन्यासकार नहीं । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भौगोलिक ज्ञान की पूर्णता तथा ऐतिहासिक सामग्री की सत्यता दोनों देखने को मिलती है । उन्हें अपने उपन्यासों के कथानकों से सम्बद्द स्थानों का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त है । उनका बुंदेलखंड पर्यटण विस्तृत और पूर्ण जान पड़ता है । झाँसी और उसके आस-पास की भूमि से उनका बड़ा नजदीकी परिचय है । वहाँ के पहाड़, नदी-नालों, किलो, वन-मैदानों, आकर्षक मनोहर दृश्य है । हरी-भरी तलहटियों, प्रखर, प्रवाह कल-कल निनादिनी, नदियों, अतीत वीरता के स्मारक दुर्गों, खंडहरों, भग्नावशेषों का उन्हें सम्यक् परिचय है । यह परिचय उनके उपन्यासों को वास्तविकता का पुट देने में सहायक हुआ है । वातावरण निर्माण के लिए उन्होंने जहाँ कहीं भी प्रकृति का उपयोग

किया है, उनके चित्रण में चारूनता, मौलिकता और आकर्षण सब कुछ है । वर्मा जी में इतिहास ज्ञान और विधायक दोनों का योग है । उनके ऐतिहासिक तथ्य अपने युग के प्रतिमानों द्वारा प्रभावित है ।

स्वतंत्रता आन्दोलन की अपनी योजना को वर्मा जी ने " झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई " में रखी है । उद्योग को साधन के रूप में अपनायी जाने वाली हिंसा-अहिंसा के प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण के विचार " अचल मेरा कोई " उपन्यास में किया है । स्वाधीनता के प्राप्ति के बाद सहकारिता के मार्ग पर गाँवों की आर्थिक सामाजिकता, सांस्कृतिक उन्नति की योजना की रूप रेखा " अमर बेल " और " उदय किरण " में प्रस्तुत की है । वर्मा जी ने स्पष्ट घोषणा की है कि - जीवन में सुख और प्रगति की प्राप्ति का मूल मंत्र कौशल वैभव प्रदर्शन, मिथ्याभिमान शारीरिक श्रम एवं उत्साह है ।

वर्मा जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जिन पात्रों को उभारा है उनमें अधिकांश साधारण कोटि के हैं और वे अपने चरित्र बल और परिश्रम से ऊँचे उठे हैं । व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है । बिना समाज के वह खंडित तथा अपूर्ण है । समाज का कल्याण तथा उसकी सुरक्षा के लिए व्यक्ति के स्वार्थों का बलिदान आवश्यक है । वर्मा जी ने सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में देश भक्ति सामाजिक, धार्मिक संघर्ष और लोक जीवन का चित्रण भारतीय साहित्य

में ऐतिहासिकता, उपन्यासों का प्रणयन, पराजय, असफलता और निराशा से व्याप्त राष्ट्रीय वातावरण के समानान्तर हुआ है, फलतः वर्मा जी के उपन्यासों में अतीत की गौरव कथा, विगत वैभव के चित्रण के साथ-ही-साथ प्राणों की आहुति देकर भी आत्म सम्मान एवं देश की रक्षा की भावना ही मुख्यतः चित्रित हुई है ।

वर्मा जी का दृष्टिकोण आद्यन्त सामाजिक आदर्शवादी और राष्ट्रीय रहा है ।

रमा [illegible]

है । वर्मा जी के सभी उपन्यासों का कथानक श्रृंखलाबद्ध, सुसम्बद्ध और सुनियोजित गत्यात्मक, रोचक, सजीव और उत्सुकतापूर्ण है । उन्होंने चमत्कारों के प्रलोभन में न पड़कर कथानक की स्वाभाविकता की रक्षा की है । उनके उपन्यासों में जो भी घटनाएँ वर्णित है - वे इतिहास सम्मत हों अथवा काल्पनिक-संगति इस प्रकार बिठाई गई है कि वे उस युग का यथार्थ और जीवन्त चित्र बिना किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना अथवा व्यक्ति को विकृत किये हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है । घटनाओं के चयन और उनकी योजना में उपन्यासकार ने आवश्यक सतर्कता बरती है और उन्हीं घटनाओं

को उपन्यास में स्थान दिया है जिनका नायक से संबंध किसी-न-किसी रूप में अवश्य है ।

वर्मा जी के उपन्यासों में कहीं भी निराशा का स्वर नहीं है, उनमें नैराश्य जनित मन: स्थिति उत्पन्न नहीं होती है, बल्कि उनमें आशावाद का अरूणिम सूर्य सदा दिखता है । उनके सभी उपन्यास प्राय: आदर्शमूलक है । उन्हें पढ़ने से प्रेरणा मिलती है, जीवन-संघर्ष में गतिमय होने की दृढ़ता मिलती है । वे किसी सत्य पर दार्शनिक की तरह ठहरकर विचार नहीं करते है बल्कि सहज और स्पष्ट शब्दों में अपनी बात, अपना मन्तव्य, अपना विचार प्रकट कर देते हैं । वे आदर्श का स्पष्ट दृष्टिकोण रखते हैं, पाप के चिन्तन में एक निश्चित निष्कर्ष रखते हैं । वे मर्यादावादी विचार के पोषक, समर्थक हैं । उनके उपन्यास उनके सुनिश्चित विश्वास और आदर्श के वाहक है । मानव जीवन के शाश्वत् मूल्यों के प्रति गहरी आस्था, युग-चेतना के प्रति गाढ़ अनुराग और लोक मंगल की भावना का प्रतिफल एवं संवेदनशील चित्रण उनके उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य रहा है ।

वर्मा जी ने देश-काल-समाज के नैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक तथा राजनीतिक पार्श्वों को अपनी आँखों से न केवल देखा है वरन् उनके उन्नयन तथा उत्कर्ष की समस्त सामग्रियों को आदर्शोन्मुक यथार्थ की तालिका से रंजित करने का प्रयत्न किया है । सर्वत्र उनकी यही प्रवृत्ति काम करती रही है । कदाचित ही

उनकी कोई ऐसी कलाकृति हो जिसमें व्यक्ति का सामाजिक आदर्श व्यंजित अथवा अंकित न हुआ हो । वे अपने युग की सृष्टि होने की वजह से वे न तो युग (साम्प्रदायिक युग) को भूल सके है और न युग के प्रति अपने दायित्व को । युग के अनुरूप ही उन्होंने अपने विश्वास को अपने उपन्यासों में उपस्थित किया है ।

उपन्यासों में इतिहास तत्व और उसके प्रयोग की विवेचना करते समय उनकी सम्प्रेषणीयता को प्राय: भुला दिया जाता है । यह सोच लेना कि ऐतिहासिक उपन्यासोंमें इतिहास तत्व पर ही अधिक ध्यान देना चाहिये, कथ्य और शिल्प पर कम अथवा इतिहास को सुरक्षित रखने मात्र से उपन्यास कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि का हो जाता है, भूल है । जब तक इतिहास के साथ औपन्यासिक कलात्मकता का सम्यक् नियोजन न होगा तब तक ऐतिहासिक उपन्यास कृति की उपलब्धी असम्भव है । दोनों पक्षों में से किसी एक को प्रमुखता देते हुए उपन्यास की संरचना की जाती है तो उस पर विचार तो किया जा सकता है, सम्भव है उस एकांगी दृष्टि से वह उत्कृष्ट भी हो, किन्तु जहाँ दोनों संदर्भों में युगपत् विचार करने की बात आयेगी, वहाँ वह निम्न श्रेणी की रचना सिध्द होगी । ऐतिहासिक रस के संश्लिष्ट प्रभाव की परिसमाप्ति में जीवन-मूल्यों की खोज का आग्रह स्वयं बढ़ जाता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार को प्रारम्भ से ही ऐसे धरातल को लेकर चलना पड़ता है, जहाँ उसकी रचना प्रभावहीन न लगे और

मूल्यों को स्थापित करने का व्यवस्था-क्रम भी भंग न हो । उपन्यास-कार से इतिहास के प्रति किंचित झुकाव हुआ और कथ्य के प्रस्तुतीकरण में उसमें विवेक से काम लिया तो उसकी अभिव्यक्ति और रचना का स्तर निश्चय ही उच्च होगा और उसकी कृति सफल कलात्मक कृतियों की कोटि में आयेगी ।

इतिहास-तत्व की सुरक्षा और कथ्य तथा शिल्प की चारुता इनके उपन्यासों में मिलती है । उन्होंने सजग होकर ऐतिहासिक उपन्यासकार के दायित्व को निभाने का प्रयत्न किया है । इस आग्रह में कहीं-कहीं उनका इतिहासकार उपन्यासकार की अपेक्षा प्रबल हो उठा है, जैसे - झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई " में कोई कमजोरी नहीं आने दिया । इतिहास-तत्व और शिल्पकला की दृष्टि से " गढ़ कुण्ड़ार ", " मृगनयनी ", माधवजी सिंधिया, कचनार तथा " टूटे-काँटे " वर्मा जी की अद्वितीय सफलता के परिचायक है और इन कृतियों में उनकी एक विचित्र मानसिक दृढ़ता और आस्था के दर्शन होते है । वातावरण को सजीव कल्पना के साथ कथानक का निर्माण, चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व और उनकी क्रियाशीलता का चित्रण, संघर्षों की भाषा का सौष्ठव पहली बार वर्मा जी के उपन्यासों में दृष्टिगत होता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना की क्या उपयोगिता है और कल्पना का स्वरूप ऐतिहासिक उपन्यास में कैसा होना चाहिये उसी तरह ठीक ढंग से प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी के सभी ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने चाहे वे किसी भी काल, किसी भी श्रेणी के रहे हों, ऐतिहासिक कथा वस्तु के साथ काल्पनिक प्रसंगों की योजना अनिवार्यत: की है। कुछ ने तो इनका सार्थक और प्रसंगानुकूल प्रयोग कर उपन्यास के शिल्पगत सौन्दर्य की वृध्दि की है तथा कथानक को नया अर्थ दिया है और कुछ ऐसे भी रहे हैं जिन्होंने प्रतिभा के अभाव में, इनके माध्यम से कथानक में अनावश्यक संदर्भों की वृध्दि कर दोष उत्पन्न कर दिया है। कथा और पात्रों के प्रति पाठक के मन में विश्वसनीयता उत्पन्न करने के लिए जिस सम्भाव और यथार्थ कल्पना की अपेक्षा रहती है, उसका नितान्त अभाव प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यास-कारों में मिलता है। इनकी कल्पना में न तो अतीत अनवृत्त करने की शक्ति है और न वर्तमान को अतीत से जोड़ने की। यही कारण है कि अतीत मुखरित हुआ है और न वर्तमान घटनाएँ और पात्र भी व्यक्तित्वहीन दृष्टिगत होते हैं।

भारतीय जनता का इतिहास प्रेम और वीरता की गाथाओं से समृध्द है। विशेषकर अंग्रेजों के विरुध्द उसने जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं, उनका चित्रण करने के लिए अनेक " झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई " जैसे उपन्यासों की आवश्यकता होगी। इसी आधार पर

उन्होंने झाँसी में पठानों की वीरता, सुन्दर-सुन्दर, जुही, मोतीबाई के रणकौशल, अंग्रेजी आतंक की बर्बरता, जलते हुए पुस्तकालय और नगर की लूट, घोड़े पर सवार मुँह से रास दबाये, दोनों हाथों से तलवार चलती हुई रानी लक्ष्मीबाई के भव्य साहस के अमर चित्र आँके है । वर्मा जी के पास मौलिक सामग्री की कमी नहीं । हर उपन्यास में नये दृश्य, नये चरित्र मिलते हैं । इस सामग्री की बहुलता के कारण ही शायद वर्मा जी को काफी तेजी से बहुत-से उपन्यास लिखने पड़ें । इससे कहीं-कहीं भाषा में बुन्देलखण्डी भूमि-की-सी अनगढ़ सतह आ जाती है । सुन्दर-सुन्दर जूही, मोतीबाई जैसे पात्रों से दो-चार बार मिलकर सन्तोष नहीं होता, इच्छा होती है कि कुछ ऐतिहासिक वर्णन चाहे कम कर दिया जाता पर इन पात्रों को विकसित होकर हमारे सामने आने का अधिक अवसर मिलता है ।

इतिहास की इस " द्वन्द्वात्मक " व्याख्या और चोली-चीर उतारोवाद की " मनोवैज्ञानिक " गहराई की प्रशंसा करते हुए वे नहीं अघाते । उन्हें याद रखना चाहिए कि इतिहास का निर्माण करनेवाली जनता है, संस्कृति को गढ़नेवालो भी जनता है । जब वह शिक्षित होगी, कामकाज के साथ उपन्यास पढ़ने का अवकाश भी पा सकेगी और साहित्य कुछ " सहृदय " रस-मर्मज्ञों की

सम्पत्ति न रहेगा -- तब वह उनके नायिका-भेद को उठाकर म्यूज़ियम में बन्द कर देगी और वर्मा जी के साहित्य को इस तरह अपनायेगी, जिस तरह एक स्वाधीन देश की सुखी जनता ही अपने जन कलाकारों को अपनाती है। उस दिन को लाने में स्वयं वर्मा जी की कला भी एक महत्वपूर्ण भूमिका पूरी करेगी।

ऐतिहासिक उपन्यासों में मनुष्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करने के प्रयास का प्रथम श्रेय वर्मा जी को ही है। कल्पना कृति को इतिहास के परिवेश में आवश्यक सन्दर्भों से मण्डित कर उसके सौन्दर्य की वृध्दी करें, इसी में उसकी सार्थकता है, अन्यथा उसके उपयोग का कोई अर्थ नहीं। ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए तो इतिहास एक बहाना मात्र होता है, वह तो उसके माध्यम से अतीत को अनावृत कर जीवन के शाश्वत सत्यों और मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का लक्ष्य रखता है और वही करता है। हिन्दी के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में जीवन के शाश्वत सत्यों एवं मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति की है और अतीत के सन्दर्भो से उन्हें जोड़कर एक नया अर्थ दिया है। ऐतिहासिक सन्दर्भ में मानव चरित्र के विभिन्न पात्रों के चित्रण तथा प्रेम, वीरता, दया, क्षमा, करूणा, राष्ट्रप्रेम आदि शाश्वत मानवीय भावों और जीवन-मूल्यों की खोज का प्रयत्न जिस निष्ठा से कतिपय हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने किया है, वह अन्यतम है। वृन्दावन लाल वर्मा

द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास की देन अविस्मरणीय है । वर्मा जी ने ऐतिहासिक मूल्यों का मौलिकता से निर्माण किया और नव प्रतिष्ठा की । ऐतिहासिक छवियों को नये सिरे से नई स्वतंत्र दृष्टि से विचारणीय बना दिया और ऐतिहासिक साहित्य का मापदण्ड और स्तर बहुत ऊपर उठा दिया । उदाहरणार्थ " झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई " " मृगनयनी " आदि को देखें । ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने मुख्य रूप से मध्यकालीन तथा पूर्व आधुनिक काल को उपस्थित किया और राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के क्षेत्र के ही परिचित पात्रों और घटनाओं को पर्याप्त खोज के साथ, नए रूप में उपस्थित किया । इसीलिए उनके पात्रों में नवीन स्पन्दन और स्वस्थ स्वरूप दीख पड़ता है । ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण के साथ ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता की तीव्र लहर है । उनके पात्र युद्ध किसी ऊँचे लक्ष्य को लेकर करते हैं । भावात्मक एकता के साथ करते हैं, किसी व्यक्तिगत संकीर्णता के शिकार होकर नहीं । हाँ, यह भी स्मरणीय है, वे ऐसी कृतियों में ऐतिहासिक तथ्यों को नहीं भूलते, किसी काल्पनिक लोक का सृजन नहीं करते ।

कथानक की रोचकता औपन्यासिक कला के साफल्य के निमित्त अनिवार्य तत्व है जिनका सफल उपयोग वर्मा जी ने किया है । इनकी कृतियों में जिज्ञासा और औत्सुक्य की मात्रा पूर्ण रूपेण है । यह गुण सामाजिक और ऐतिहासिक, दोनों श्रेणियों के उपन्यासों में वर्तमान है । सामाजिक उपन्यासों में इस दृष्टि से " प्रत्यागत ", " लगन ", " प्रेम की भेंट " आदि को देखा जा सकता है । निःसन्देह उनके उपन्यासों का कथानक अनेक मोड़ और पगडंडियों पर संचरित होता चलता है और विस्तृत होता है । इनके पीछे मूलरूप में पृष्ठ-भूमि में कुछ अनिवार्य दृष्टिकोण थे, प्रभावित भावनाएँ थीं । वे वाता-वरण का ध्यान रखकर दिशा का परिवर्तन स्वस्थ पथ की ओर करना चाहते थे । परिणाम हिन्दी के पाठकों ने उनके स्वागत में व्याघात उत्पन्न नहीं किया और उन्हें (पाठकों को) स्वस्थ भोज्य भी प्राप्त हुआ । स्वस्थ दिशा की ओर, औत्सुक्यपूर्ण जिज्ञासापूर्ण कथानकों के माध्यम से, जनता को अग्रस करने की दृष्टि से भी इनके औपन्यासिक कौशल को श्रेय प्रदान किया गया है ।

हिन्दी के प्रौढ़ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है जिसमें सामान्य, असामान्य, दिव्य, ऐतिहासिक, सामाजिक, ऊँच - नीच, सामन्तीय, मध्य और निम्न आदि सभी वर्गों का समावेश है । उस दृष्टि से जहाँ प्रेमचन्द ग्रामीण किसान-मजदूर, मध्यवर्ग तथा जमींदारों तक ही सीमित रह गए वहाँ

वर्मा जी को निम्न, मध्यम पात्रों का सूक्ष्मतापूर्वक मनोविश्लेषण करना पड़ा, वहाँ दूसरी ओर नायक सिंह असमान्य तथा लक्ष्मीबाई जैसे दिव्य व्यक्तित्व का चित्रण भी अनिवार्य हुआ । व्यक्तित्व प्रधान चरित्र की दृष्टि से मृगनयनी, लक्ष्मीबाई आदि को देख सकते हैं । व्यक्तित्व की दृष्टि से बहिर्मुखी भुवनविक्रम को और अन्तर्मुखी कुंजर, सरस्वती, कचनार आदि को कह सकते हैं । इस प्रकार से विविध प्रकार के पात्रों का दर्शन वर्मा जी के उपन्यासों में होता है । पात्र चित्रण में स्वाभाविकता, गतिशीलता, संभावना, सूक्ष्म मनोविश्लेषण आदि अनिवार्य तत्व हैं । जो कलाकार पात्रों के निर्माण में इन तत्वों का सफलतापूर्वक संयोजन कर पायेगा उसका चरित्र (पात्र) उतना सजीव, प्राणवान तथा रसमयता की स्थिति उत्पन्न कर सकेगा और पाठक उन पात्रों में सामीप्य बोध करेंगे । वर्मा जी के पात्र स्वाभाविक, सजीव तथा उपर्युक्त गुणों से युक्त होते हैं । मृगनयनी, माधव जी सिंधिया, कचनार, कुमुद, गौरी आदि पात्रों के पाठक अवश्य ही स्वीकार करेंगे । पात्र चित्रण की जितनी शैलियाँ है, उन सभी का प्रयोग वर्मा जी के उपन्यासों में प्राप्त हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यासकला में अनुपात और संतुलन के उचित निर्वाह के साथ सत्य, शिव और सुन्दर समाहित है । जहाँ वे सुन्दर और सत्य की आकर्षक छायावलियाँ उपस्थित कर पाते हैं,

वहीं वे शिवम् के प्रशस्त पथ का आलोक भी विकीर्ण कर देते हैं । उदाहरणार्थ " मृगनयनी " को ही लें, जहाँ उसमें सौन्दर्य पूरित, रोमांचकारी, भव्य, रम्य, क्रिया-कलापों, मानसिक आधारों का चित्रण है वहाँ शिवम् की दृढ़ उपासना और आराधना का अर्घ्य और गंध भी है । वर्मा जी के साहित्य में प्रेम मूलतत्व है जिसके आधार पर उन्होंने अपने साहित्य का आकर्षक और सत्य प्रसाद अधिष्ठित किया है । " अहिल्याबाई " " भुवन विक्रम ", " प्रेम की भेंट " आदि उपन्यास इसके लिये देखे जा सकते हैं ।

वर्मा जी के साहित्य- सृजन का युग वह युग है जब अनास्था, विरक्ति, विशृंखलता उभार पर थीं । परतंत्रता की हीन भावना स्वरूप, राष्ट्रीय भावना, मानवता के उज्ज्वल स्वरूप का कोई अस्तित्व नहीं था । प्रेम, मानवीय चेतना को एक सूत्र में पिरोने की शक्ति का ह्रासकालीन युग था । हिंसा, घृणा के प्रचार के अस्त्र शासकवर्ग, अंग्रेजों की ओर से छोड़े जा रहे थे, जो उनके स्थायित्व में योगदान दे सकें । उपन्यासकार के लिए तो इतिहास एक बहाना मात्र होता है, वह तो उसके माध्यम से अतीत को अनावृत कर जीवन के शाश्वत सत्यों और मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का लक्ष्य रखता है और वही करता है । हिन्दी के अधिकांश

ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में जीवन के शाश्वत सत्यों एवं मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति की है और अतीत के सन्दर्भों से उन्हें जोड़कर एक नया अर्थ दिया है । ऐतिहासिक संदर्भ में मानव चरित्र के विभिन्न पात्रों के चित्रण तथा प्रेम, वीरता, दया, क्षमा, करूणा, राष्ट्र प्रेम आदि शाश्वत मानवीय भावों और जीवन-मूल्यों की खोज का प्रयत्न जिस निष्ठा से हिन्दी उपन्यासकारों ने किया है, वह अन्यतम है । इस क्षेत्र में वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार है ।

परिशिष्ट

क्र॰ सं॰	आधार ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1	2	3	4
1॰	अहिल्या बाई	वृन्दावन लाल वर्मा	बारहवाँ संस्करण मयूर प्रकाशन, झाँसी, 1972
2॰	कचनार	"	नवां संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1971
3॰	गढ़ कुण्डार	"	छठवां संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1971
4॰	झाँसी की रानी	"	चौदहवां संस्करण मयूर प्रकाशन, झाँसी 1970

1	2	3	4
5.	टूटे काँटे	वृन्दावन लाल वर्मा	पाँचवा संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1972
6.	भुवन विक्रम	"	सातवा संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1970
7.	महारानी दुर्गावती	"	सातवां संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1970
8.	माधव जी सिंधिया	"	पाँचवा संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1971
9.	मुसाहिबजू	"	छठवाँ संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी - 1963
10.	मृगनयनी	"	सोलहवाँ संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी - 1968

1	2	3	4
11.	रामगढ़ की रानी	वृन्दावन लाल वर्मा	प्रथम संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी 1961
12.	विराटा की पद्मिनी	"	सातवाँ संस्करण मयूर प्रकाशन झाँसी - 1970

क्र॰सं	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
1.	अग्रवाल शीला कुमारी	हिन्दी उपन्यास कल्पना के बदलते हुए प्रतिरूप	अभिव्यक्ति प्रकाशन युनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद-1961
2.	अग्निहोत्री नारायण	हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा - 1961
3.	अवस्थी कृष्णा	वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन	पुस्तक संस्थान नेहरू नगर, कानपुर 1968.
4.	ओम प्रकाश	आधुनिक साहित्य	आलेख प्रकाशन दिल्ली - 1978
5.	कार॰इ॰एच	इतिहास क्या है	मैकमिलन पब्लिशिंग दिल्ली
6.	गणेशन एस॰एन॰	हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	राजपाल एण्ड कम्पनी, दिल्ली 1962.

1	2	3	4
7.	गुप्त गणपति चन्द्र	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1978
8.	गुप्त शान्ति स्वरूप	हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी	एम.सी.एस. कम्पनी, फव्वारा, दिल्ली 1965
9.	गैरोला वाचस्पति	भारतीय संस्कृति और कला	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ 1973
10.	गोविन्द	हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग	कल्पना प्रकाशन 7, कबाड़ी बाजार, मेरठ - 1972.
11.	गोविन्द	ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप	साहित्य वाणी, इलाहाबाद 1970

1	2	3	4
12·	चतुर्वेदी राम - स्वरूप	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	लोक भारती प्रकाशन, इलाहा-बाद 1986
13·	चतुर्वेदी महेन्द्र	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1962
14·	चुघ सत्पाल	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि	पुरुषोत्तम नगर इलाहाबाद 1968
15·	चौबे झारखंड	इतिहास दर्शन	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वार-णासी 1984
16·	चौहान शिवदान सिंह	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष	राजकमल प्रकाशन दिल्ली - 1961
17·	जावेड़कर	भारत का इतिहास	साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली - 1980

1	2	3	4
18·	जैन निर्मला	आधुनिक साहित्य मूल्य और मूल्यांकन	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली -1980
19·	जोशी जगदीश चन्द्र	प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक	विवेक प्रकाशन, लखनऊ - 1956
20·	जोशी जगदीश चन्द्र	प्रसाद के नाटकों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन	हिन्दी अकादमी जयपुर
21·	झारी कृष्ण देव	हिन्दी काव्य प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ	शारदा प्रकाशन, दिल्ली 1987
22·	झालटे दंगल	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	प्रभात प्रकाशक, दिल्ली 1986
23·	टंडन प्रताप नारायण	हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास	विवेक प्रकाशन, लखनऊ - 1967
24·	टंडन प्रातप नारायण	हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास	विवेक प्रकाशन, लखनऊ - 1961

1	2	3	4
25.	ताराचन्द्र	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास	प्रकाशन विभाग भारत सरकार, दिल्ली
26.	तिवारी नित्यानंद	आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध	वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1982
27.	तिवारी गोपीनाथ	ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार	साहित्य रत्न भंडार, आगरा 1958
28.	त्यागी सुमित्रा	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	मोतीलाल बनारसी नई दिल्ली - 1958
29.	थापर रोमिला	भारत का इतिहास	राजकमल प्रकाशन दिल्ली - 1987
30.	दत्त सोम	उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा	भारतीय प्रकाशन, दिल्ली - 1958
31.	दिनकर रामधारी	संस्कृत के चार अध्याय	राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली

1	2	3	4
32.	द्विवेदी मुकुन्द	हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदन	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद-1970
33.	देसाई पारुकांत	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली - 1984
34.	धवन कृष्ण	हिन्दी साहित्य का इतिहास परम्परा और विकास	सूर्य प्रकाशन दिल्ली 1985
35.	नगेन्द्र	विचार और विश्लेषण	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1966
36.	नगेन्द्र	विचार और अनुभूति	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1965
37.	नामवर सिंह	इतिहास और आलोचना	राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1978

1	2	3	4
38·	पटनायक देवी प्रसन्न	भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास	गीता प्रकाशन गोरखपुर - 1956
39·	पाण्डेय मेनेजर	साहित्य और इतिहास दृष्टि	पीपुल्स लिटरेरी दिल्ली 1981
40·	पाण्डेय सुधाकर	आचार्य शुक्ल प्रतिनिधि निबंध	राधकृष्ण प्रकाशन दिल्ली - 1978
41·	प्रसाद शंकर	सामाजिक उपन्यास और नारी मनो-विज्ञान	अनुपम प्रकाशन, पटना, 1978
42·	प्रसाद सियाराम शरण	वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा	साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 1960
43·	प्रसाद सियाराम शरण	हिन्दी उपन्यास का विकास और चार प्रतिनिधि	साहित्य प्रकाशन मालीवाडा, दिल्ली 1958

1	2	3	4
44·	प्रेमचन्द	प्रेमचन्द के विचार	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1984
45·	प्रेमचन्द	हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
46·	बी·एस·चिन्तामणि	ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना सत्य	विद्या भवन, वाराणसी 1959
47·	बुद्ध प्रकाश	इतिहास दर्शन	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1972
48·	बोस राजकमल	आधुनिकता और राष्ट्रीयता	नीता प्रकाशन, औरंगाबाद 1973
49·	मदन इन्द्रनाथ	आज का हिन्दी उपन्यास	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1956

1	2	3	4
50·	मदन इन्द्रनाथ	हिन्दी कहानी एक नयी दृष्टि	संभावना प्रकाशन हापुड 1978
51·	माथुर कमलेश	वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता	मल्लिक एंड कंपनी जयपुर
52·	मधुर रामनारायण	हिन्दी के ऐति-हासिक उपन्यास	साहित्य प्रकाशन रामबाग, कानपूर
53·	मिश्र रामदरश	ऐतिहासिक उपन्यास-कार वृन्दावनलाल	एस चांद एण्ड कम्पनी दिल्ली 1964
54·	मिश्रराम दरश	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1968
55·	मिश्र रामदरश	आज का हिन्दी साहित्य संवेदना	अभिनव प्रकाशन दिल्ली 1975
56·	मिश्र शिवकुमार	वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास और कला	रवि प्रकाशन, कानपुर 1956

1	2	3	4
57·	रवीन्द्रनाथ	मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास	वाणी प्रकाशन कमलानगर, दिल्ली
58·	राय गुलाब	भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	लोक भारतीयप्रकाशन इलाहाबाद
59·	लाल कृष्ण	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	हिन्दी परिषद प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग
60·	वाजपेय नददुलारे	हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी	इंडियन प्रेस इलाहाबाद
61·	वर्मा भगवती चरण	साहित्य के बारे में	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली - 1981
62·	शर्मा आनंद नारायण	हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन	प्रेमशील प्रकाशन दिल्ली
63·	शर्मा नलिन विलोचन	साहित्य का इतिहास दर्शन	कल्पना प्रकाशन मेरठ - 1960

1	2	3	4
64.	शर्मा पद्म सिंह	वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व	बंसल एण्ड कंपनी दरियागंज, दिल्ली
65.	शर्मा मक्खनलाल	ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास	प्रेमशील प्रकाशन दिल्ली
66.	शर्मा रामकुमार	वर्मा और स्काट के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	निर्माण प्रकाशन, लोनी रोड, दिल्ली - 1986
67.	शर्मा रामविलास	परम्परा का मूल्यांकन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1987.
68.	शर्मा रामविलास	प्रेमचन्द और उनका युग	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1979
69.	शुक्ल रामचन्द्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचार सभा, काशी

1	2	3	4
70•	सक्सेना उषा	हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद 1972
71•	सत्येन्द्र	मृगनयनी में कला और कृतित्व	साहित्य प्रकाशन, ग्वालियर - 1953
72•	सुभद्रा	हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग	अलंकार प्रकाशन दिल्ली
73•	सहानी भीष्म	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	राजकमल प्रकाशन दिल्ली - 1980
74•	सहाय मोहिनी	वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य	अनुपम प्रकाशन, पटना 1982
75•	सिंह विजय मोहन	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना	रचना प्रकाशन इलाहाबाद 1972

1	2	3	4
76·	सिंहल शशि भूषण	उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1960
77·	सिंहल शशि भूषण	हिन्दी उपन्यास यात्रा-गाथा	प्रेम प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली
78·	सिंहल शशि भूषण	हिन्दी उपन्यास नये क्षितिज	प्रेम प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली
79·	सिंह त्रिभुवन	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	हिन्दी प्रचारक पुस्तक माला, वारणासी
80·	हरदयाल	आधुनिक बोध और विद्रोह	प्रकाशन प्रतिष्ठान मेरठ

ENGLISH REFERENCE BOOKS :

1. A.N.Whitehead - Adventures of Ideas - Mentor Books - New York 1960.

2. A.R.Lacey - Dictionary of Philosophy - Routledge and Keganpaul London 1976.

3. A.L.Rowse - The use of history - 1948.

4. Collingwood R.G.The Idea of history - Oxford University press, London.

5. Coleradge - Biographic Literaris - London 1971.

6. Crowell Collier & Macmillan - International Encyclopaedia of Social Sciences Inc. London 1978.

7. E.M.Krickpatric Allied - Chamber's Twentieth Century Dictionary - 1984.

8. E.M.Forestor - Aspects of Novel - Edward Arnold & Co. London - 1944.

9. Gardner patric- Theories of history - New York - Free press - 1959.

10. George Lukacs - The historical Novel - 1962.

11. H.P.Rickman - Meaning of history - 1961.

12. H.Butterfield - The Historical Novel - 1974.

13. J.Field - A Guide to the best historical Novels and Tales.

14. K.P.Jaiswal - History of India

15. L.F.Rushbrook Williams - Four Lectures on the Handling materials.

16. Marwick Artur - Nature of history - Macmillion press - London.

17. Ancient India- R.K.Mukerji -1956.

18. S.S.Barlinge - Indian Philosophical Quarterly Vol.vii - Poona.

पत्र - पत्रिकाएँ

1. आलोचना - नामवर सिंह - जून 1976

2. आलोचना - (इतिहास विशेषांक) नामवर सिंह
अक्तूबर - 1982

3. आलोचना - (उपन्यास विशेषांक) नामवर सिंह - 1980

4. ऐतिहासिक उपन्यास अंक - जनवरी 1967

5. पूर्व ग्रह - 16 मई - अगस्त 1992

6. मधुमती - मई - 1990

7. मधुमती - जून - 1991

8. साप्ताहिक हिन्दुस्तान 17 - 23 जून 1979

9. सारिका - 16 सितम्बर 1979

10. साहित्य परिचय - (शिक्षा और भारतीय संस्कृति
विशेषांक) - 1977

कोश ग्रन्थ

1. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश - सं० गोविन्द चातक
2. अंग्रेजी साहित्य कोश - सं० गोविन्द चातक
3. प्रामाणिक हिन्दी कोश - रामचन्द्र वर्मा
4. बृहद हिन्दी कोश - कालिका प्रसाद
5. मानविकी पारिभाषिक कोश - सं० नगेन्द्र
6. हिन्दी विश्व कोश - श्री नगेन्द्रनाथ बसु
7. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 - सं० धीरेन्द्र वर्मा
8. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 2 - सं० धीरेन्द्र वर्मा